महावीर जयन्ती महोत्सव ब्यावर पर
श्री हरिभाऊजी मुख्यमंत्रीजी अजमेर राज्य का भाषण
(का कुछ अंश)

ब्यावर १० अप्रेल सन् १६५२ ई०

महावीर का सन्देश किसी एक देश, जाति या समाज के लिए नहीं था बल्कि वह मानव मात्र के लिए था।

मैं यद्यपि जन्म से जैन नहीं हूं पर जैनधर्म की अहिंसा को मैं बचपन से जानता हूँ और जब से मैंने उसे मन, बुद्धि व अंतःकरण से स्वीकार किया है तब से मैं भी अपने आपको जैन मानता हूं।

"विश्व में शांति की स्थापना के लिए अहिंसा एक अमोल हथियार है और जिस किसी ने भी इसका आविष्कार किया, निस्सन्देह उसने महान् उपकार किया है। जहा समाज है और एक से अधिक व्यक्तियों के होते ही समाज जरूरी है, वहां तो अहिंसा के बिना काम चल ही नहीं सकता।

"जैनधर्म की दूसरी खूबी स्यादवाद है। यह एक जीवन दृष्टि है कि एकांगी निर्णय गलत है और सब पहलुओं से सोचना ही सही दृष्टि है।"

अहिंसा का विवेचन जैन शास्त्रों में अत्यन्त सूक्ष्म मिलता है पर विवेचन एक बात है और साधना के बिना तो वह एकदम निरुपयोगी है, क्योंकि ध्येयसिद्धि के लिए विवेचन नहीं, साधना ही जरूरी होती है।

सुख साधन पुस्तकमाला (कुसुम संख्या ...)

मानवता की ओर

भाग २

सम्पादक—

प्रसिद्ध साहित्य सेवी मुन्शी मोतीलाल रांका

अर्जीनवीस ब्यावर

ज्ञानी पुरुषों ने मानवता का विकास इसी मे माना है कि छोटे बड़े के भेद को भूल कर समता को अपनावे। इसी से शांति, सुख और समाधान मिल सकता है।

प्रकाशक—

मोतीलाल रांका—मैनेजर

सुख साधन माला

मु० पो० ब्यावर (अजमेर रोड)

प्रथमवार १९०० | महावीरजयन्ती सम्वत् २४५८

卐 ॐ 卐
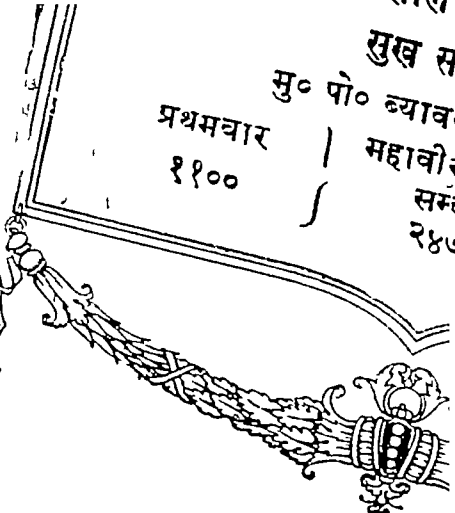
जानता है जो स्वघर को। वह पहुँच ही लेगा स्वघर को ॥
वह स्वघर तेरा तुझी में है ॥ तू स्वयं चैतन्य पावन।
कह रहे आचार्य तू है। सिद्धसम ध्रुव और पावन ॥

जो मनुष्य किसी एक चीज पर निष्ठा से काम करता है वह आखिर सब चीज करने की शक्ति प्राप्त करलेगा।

वैष्णव जन तो तेहने कहिए जो पीड पराई जाने रे'

—महात्मा गांधी

राष्ट्र की सम्पत्ति

रुपया पैसा नहीं है,किन्तु उसके व्यक्तियों के अन्दर कर्त्तव्य निष्ठा की भावना होना है प्रजतंत्र शासन की सफलता तो जनता की सचरित्रता पर निर्भर है। अच्छा शासन तब तक स्थापित नहीं हो सकता जब तक सभी युवक और प्रौढ व्यक्ति उचित रूप से न्याय पूर्वक कार्य करने रोजी कमाने का दृढ सकल्प न करलें और भ्रष्टाचार से दूर रहने की शपथ न ले लें।

—श्री राजगोपालाचार्य

मानवता किसी एक विशेष गुण का नाम नहीं है। वह मानव जीवन के सम्पूर्ण उत्तम गुणों के सार का ही नाम है। वह कोई भौतिक पदार्थ नहीं अत. इस के किसी विशेप रग रूप या निश्चित तोल नाप की व्यवस्था करना किसी के भी वस की बात नहीं पर मानवता में भी तारतम्य देखा जाता है दूसरे शब्दों में आदर्श की आदर्शता की परीक्षा की जाती है।

संतराम बी. ए सम्पादक, विश्व ज्योति

सुख साधन ग्रन्थमाला पुष्प नं० ५०

मानवता की ओर भाग

पृष्ठ संख्या १२८ मूल्य १)

सम्पादक श्रीमद् गणेशाचार्यजी महाराज के शिष्य

पं० मुनि श्री नेमीचन्द्रजी महाराज

विद्वान सम्पादक ने जीवनोपयोगी व्यवहार दर्शन पर अच्छा प्रकाश डाला है। जो मानवता की ओर मुडने की प्रेरणा देता है जिसे आचरण मे उतारने पर दुःख व क्लेश का नाम शेष नहीं रहता, साथ ही नीचे लिखे महान् विद्वानों के वर्तमान समयोपयोगी, लेखों का भी समावेश कर दिया है।
और कतिपय उदाहरण भी दे दिये हैं।

(१) श्रीमद् गणेशाचार्यजी महाराज
(२) श्री उपा. मुनिश्री अमरचन्दजी ,,
(३) श्रीमद् जैनाचार्य हस्तीमलजी ,,

प्रकाशक-

सुखसाधन ग्रन्थमाला मु. पो० ब्यावर
Beawar (जि. अजमेर)

॥ ॐ ॥

जैन धर्म का गौरव दर्शाने वाली

प्रभावना के योग्य सस्ती पुस्तकें

जैन धर्म के विषय में सम्मतिएँ भाग १ व २ हरेक का -)

हरेक -)॥

१ गौरवशाली जैन धर्म, २ स्याद्वाद की सार्थकता ३ भावना संग्रह ४ प्रार्थना सग्रह   गौरवशाली साधु और विवेकी श्रावक =)

जबुकुमार चरित ।=)   बडे २ अंको की अनुपूर्वी)॥

पंच कल्याण का चार्ट -)   पखी पत्रिका एक पैसा

क्षमापना व दीपावली पत्रिका ॥) सैंकड़ा

जीवन व्यवहारोपयोगी पुस्तकें

हरेक =)

(१) मूल सुधार अर्थात् जाति उन्नति का मूल मन्त्र

(२) पापों का पछतावा (३) आत्म नियंत्रण (४) पवित्रता के पथपर कवि अमरचन्दजी कृत (५) सतीत्व परीक्षा (६) नव निर्माण की ओर (७) वर वधू की और भावी सम्बधी की परीक्षा

हरेक का ≡)॥

(१) हम वैभवशाली प्रभावशाली कैसे बनें ? (२) व्यापार शिक्षा (३) सफलता के साधन (४) मूल्यवान मोती (उपन्यास)

मानवता की ओर भाग १ रु० १) मानवता की ओर भाग २ रु० २)

प्रकाशक—

मोतीलाल रांका

संचालक—

जैन पुस्तकमाला व सुख साधनमाला

मु० पो० ब्यावर जिला अजमेर

Beawar

卐 ॐ 卐

-: संकलनकर्त्ता का निवेदन :-

"सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ॥१॥"

अर्थात—"जगत् में सभी जीव सुखी हों, सभी निरोग हों, सभी कल्याण का दर्शन करें कोई भी दुःख न पाए।"

बन्धुओ! यह भावनाओ की कितनी ऊँची उड़ान है! मानव-जीवन में जब यह भावना सजीव रूप लेगी, जब हृदय की तन्त्रियो से विश्व मैत्री का स्वर निकलेगा, तभी समझ लेना, हम मानवता के नजदीक हैं।

यह समस्त शास्त्रो का पुराणो का, वेदो का निचोड़ है। ऐसी मानवता के प्राप्त हो जाने के बाद धर्म की प्राप्ति उतनी ही सुलभ है, जितनी कि सूर्योदय हो जाने के बाद, मार्ग साफ दीख जाना सुलभ है।

हमने इसी अभिप्राय से "मानवता की ओर" पुस्तक माला जारी की है। जिसका प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। जिसमे मानवता की ओर जाने के लिए राजमार्ग मार्गानुसारी के ३५ गुणों का उल्लेख किया है। उक्त गुणो का मानव-जीवन में अमल हो जाय तो जीवन विकास होने में कोई सदेह नहीं रह जाता। आज के समय को देखते हुए दीर्घ दर्शी जैन आचार्यों ने ये ३५ गुण चुन-चुन कर रक्खे हैं। उनकी पैनी दृष्टि ने गृहस्थ-जीवन को उन्नत बनाने, मानवता के मार्ग पर आरूढ़ होने का कितना सरल और व्यावहारिक उपाय बतलाया है!

इन ३५ गुणो के जीवन मे ओत-प्रोत हो जाने के बाद क्रमशः उक्त दश धर्मो का यदि जीवन मे पालन किया जाय, तो जीवन का सर्वाङ्गीण विकास हो सकता है। इसी अभिप्राय से इसके बाद ही जैनागमाङ्कित १० धर्मों का निरूपण किया गया

है। साथ ही मानवोचित व्यवहार करने वालों के उदाहरण भी दिये गये हैं। इस दूसरे भाग मे कई स्फुट विचार दिए गए हैं जो धर्म और जीवन की घनिष्ठता बतलाने वाले हैं। अर्थात् जीवन के हर व्यवहार में, हर मोड पर धर्म का अंश मौजूद रहना चाहिए, तभी वह जीवन पुष्पित और उन्नत हो सकेगा।

यह सब वर्णन हो चुकने के बाद, हम समझते हैं कि हमारे बन्धु मानवता की ओर मुड़ने का अवश्य प्रयत्न करेंगे। आज अधिकांश लोग मानवता को भुला बैठे हैं। उनसे हमारी यही प्रार्थना है कि वे इस पुस्तक को पढ़कर अपने जीवन को शुद्ध सत्य की ओर—मानवता की ओर मोड़ने का प्रयत्न करें। इसी मे उनका कल्याण निहित है और हमारा परिश्रम भी तभी सार्थक है, जब हमारे भूले-भटके गुमराह भाई-बन्धु इस सन्मार्ग को अपनाएँगे।

पुस्तक के सकलन करने में हमें जिन २ महानुभावों के साहित्य और श्रम की सहायता मिली है, उनके हम हृदय से कृतज्ञ है। उन महानुभावों के उपकार को भुलाया नही जा सकता इसके अतिरिक्त इस पुस्तक मे मुद्रण एवं संशोधन में जो कुछ भूलें रहीं हो उसके लिए प्रेमी पाठक हमें क्षमा प्रदान करेंगे। और कोई त्रुटि रह गई हो उसे सुझाने का प्रयत्न करेंगे ताकि अगली आवृत्ति मे सुधार दिया जाय। पुस्तक कैसी बनी है, इसका निर्णय हम पाठकों पर ही छोड़ते हैं। वे ही इसे आद्योपान्त पढ़ कर अपनी समालोचना मुझे भेजकर अनुग्रहित करें।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!

महामानव महावीर
नीवार्ण दीपावली
सम्वत् २४७८

विनीत—
मुन्शी मोतीलाल रांका अर्जीनवीस
सँकलनकर्त्ता व प्रकाशक

'मानवता की ओर' भाग दूसरा की विषय सूची

जिसके हृदय में दया का वास है, वही पुण्यवान् है
जो आप पोषी है, आप बढ़िया खाते-पीते,
पहिनते-ओढ़ते है । लेकिन पास-पड़ौस
के दुखियो की ओर दृष्टि भी नहीं
करते, उन्हे पुण्यवान कैसे
कहा जा सकता है।

सब के सहायक बनो।

भूमिका—

आज मानवता रो रही है।

विश्वमच पर रक्तपात, नरसंहार और हिंसा का जो भयावह नाटक आज खेला जा रहा है उसे देख देख कर आज क्षुब्धा मानवता आठ-आठ आँसू रो रही है। यह चारो ओर से भारी संकट मे फँस गई है। संस्कृति एवं आध्यात्मिक दृष्टियों से मानवता जिन उपकरणों को अनेक युगों से इतना महत्व प्रदान करती आई है, आज उन्हीं उत्कृष्ट तत्वों, भावनाओं, उच्च आदर्शों के गले पर अत्यन्त निर्दयतापूर्वक छुरी फेरी जा रही है। मानव की अन्तरात्मा मे एक भयङ्कर तूफान उठ रहा है। दैनिक जीवन के सुख सौंदर्य, ज्ञान इत्यादि प्रायः सभी उत्तम वस्तुएँ आज भारी सकट में फँसी हैं। आज के महा भयङ्कर प्रलयकारी तांडव ने विश्व में जो विकराल विभीषिका उत्पन्न की है उससे मानव-संस्कृति तथा आध्यात्मिकता के अवशेष रहने की क्या आशा है?

विश्व मे जब जब पाप-वृद्धि होती है, सबल अनधिकार चेष्टा द्वारा निर्बलों के अधिकार ले लेना चाहते हैं। संसार में रक्तशोषण, रागद्वेष, स्वार्थ अथवा इन्द्रियजन्य मोह से श्रेष्ठ कर्मों को विस्मृत कर अज्ञानता, महांधकार को प्राप्त हो जाता है तब तब मानवता रो उठती है। वह अत्याचार देखने की अभ्यस्त नहीं है, उसकी वेदना की प्रचण्डता से, करुण आहों से सिंहासन हिल उठते हैं, राज्य उलट-पलट जाते हैं, संसार कुपित होकर थर-थर काप उठता है। इतिहास इसका साक्षी है। प्राचीन ग्रन्थ इसी तत्त्व को पुनः २ प्रकट कर रहे हैं। यही महासत्य बारबार फिर फिर कर संसार के सन्मुख आ रहा है। मानव की प्रगति इसी तत्त्व को स्पष्ट कर रही है।

कोई राष्ट्र अपनी जनता मे ज्ञान, विज्ञान, व्यापार, कला कौशल, ललित कलाओं का विकास कितना ही क्यों न कर ले, यदि उसने उसके हृदय मे उगे "भक्ति" नामक पौधे को उपयुक्त जल, भूमि, वायु आदि आवश्यक तत्त्व प्रदान कर परिपुष्ट होने का अवसर प्रदान नहीं किया तो उसने संस्कृत का क, ख, ग, घ भी नहीं सिखाया। उन्नति के मूल अन्तः करण में परमात्मा को नेता, सर्वस्व, अपना सर्वेसर्वा मान लेना है। यदि मनुष्य हृदयस्थ आत्मा की सत्ता को जागृत करे तो पुनः प्रत्येक कार्य मे विजय प्राप्त कर सकता है। आज का मानव धर्म को विस्मृत कर बैठा है, अपने कर्त्तव्यो, अधिकारों को भूल गया है, आत्मा के सद्ज्ञान को खो बैठा है, हिंसा, लूटखसोट, मारकाट, अत्याचार का बाजार गर्म है। लोग अपनी वासनाओं के गुलाम बन गये हैं। स्वार्थ की हद हो गई है। ये बातें मानव-पतन को स्पष्ट कर रही है।

सच्ची संस्कृति 'सत्यं, शिव, सुन्दरम्' की खोज मे एकनिष्ठ होकर लगे रहने में है। जो इन्द्रियों की चञ्चल अवस्था से उठ कर ज्ञान और विवेक को अपनाता है और जिसकी भावना जिज्ञासु के समान सदा ज्ञान की खोज मे रहती है, ऐसा व्यक्ति निम्न-कोटि की मनोवृत्ति के क्षणिक आवेश मे कोई कार्य नहीं कर बैठता प्रत्युत उसके कार्य और सौन्दर्य के अभिज्ञान तथा आत्म सयम के हेतु होते है। संस्कृति की इस कसौटी पर कसने पर आधुनिक सभ्यता बिल्कुल भिन्न-सी प्रतीत होती है।

इस महाभयंकर उपद्रव से मुक्ति का केवल एक मार्ग प्रतीत होता है। वह है अपनी प्रवृत्तियों को अन्तमु ख करना। हम शान्ति, सुख, आनन्द की खोज वहां कर रहे हैं जहा उसका चिह्न तक नहीं है। मनुष्य विवेक से हीन होकर विषयो की चिन्ता में संलग्न होते हैं और उन्हीं में पूर्ण सुख समझ कर विनाश की

ओर जाते हैं। वास्तव मे यदि विचार किया जाय तो विषय तृष्णा के पीछे दौड़धूप करने वाले को अतृप्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। एक उर्दू कविने कहा है—

सबको दुनिया की हविस ख्वार लिये फिरती है।

कौन फिरता है यह मुरदार लिये फिरती है॥

राष्ट्रो, जातियो, व्यक्तियो, धर्मों मे आज जो विरोध तथा स्वार्थ दृष्टिगोचर हो रहा है वह हमारे अहंभाव के ही कारण है। दूसरे के घर को छीन कर उसे अपना घर बना लेने, उस पर अपनी प्रभुता स्थापित करने तथा एक के द्वारा दूसरे के व्यक्तित्व को मिटा देने की भयंकर प्रवृत्ति हमारा सर्वनाश कर रही है। अतः हमे एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करनी चाहिये जिसमें एक साथ सब सस्कृतियाँ रहे और पुष्पित एव फलित होती रहे। सबको पूर्णरूप से विकसित होने का समान रूप से अवसर प्राप्त हो। भ्रातृ-भाव एवं एकता की प्रेमरज्जु में ससार में रहने वाली समग्र मानवजाति आबद्ध हो जाय। एकनिष्ठ होकर सब 'सत्यं शिवं सुंदरम्' की प्राप्ति के निमित्त प्रयत्नशील हो। सभी धर्म, सभी आध्यात्मिकताये सभी आंदोलन मानव जाति के उत्थान के लिये उत्तरोत्तर अग्रसर हों। आज के क्षुब्ध संसार को एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता है, जिसमे पारस्परिक सहन-शीलता ही कानून हो। ऐसी उदार व्यवस्था में ही ऐसी सामूहिक एकता मे ही आज दिखाई देने वाली विशेष स्वार्थ, शत्रुता की भावनायें मिट सकती हैं और मानवता की रक्षा हो सकता है।

मुन्शी मोतीलालजी राका ने मानवता की सेवा भावना से प्रेरित होकर इस पुस्तक मे स्वाध्याय एव मनन की उपयोगी सामग्री सकलित की है। इसमे चिन्तन करने योग्य पर्याप्त मान-

सिक भोजन है। हम इस सात्त्विक प्रकाशन के लिए श्री रांकाजी को बधाई देते हैं और आशा करते है कि वे इसी प्रकार इस ग्रंथ माला मे अन्य ग्रन्थो का भी प्रकाशन करेंगे।

रामचरण महेन्द्र एम. ए.

प्रोफेसर—हरबर्ट कालेज, कोटा।

उपाध्याय पं० मुनिश्री अमरचन्दजी म० का अभिमत

आज के बुद्धिवाद युग में आप अपने धर्म की, अपने समाज की और अपनी संस्कृति की सेवा—एक मात्र साहित्य से ही कर सकते हैं। जितना भी आप लोकभोग्य साहित्य प्रकाशित कर सकें, उतनी ही अधिक आप सेवा कर रहे हैं। जनता में फैले अज्ञान अन्धकार को आप सत्-साहित्यरूपी दीपक से ही दूर कर सकेंगे।

'मानवता की ओर' पुस्तक देख कर मुझे परम प्रसन्नता है। सम्पादकजी ने बड़ी ही कुशलता से सामग्री का संकलन करके जनता के सम्मुख विकास शील विचार रख छोडे हैं। जन सामान्य के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपादेय सिद्ध होगी। जैनधर्म की प्राथमिक भूमिका को समझने के लिए भी प्रस्तुत पुस्तक उपयोग में ली जा सकती है।

—उपाध्याय अमर मुनि

卐 ॐ 卐

स्वर्गीय ता०/२७/६/१९५८

मुन्शी मोतीलाल जी मूँका ... राकाँ ... (राजस्थान)

मानवता की ओर

[भाग दूसरा]

महात्माओं और विद्वानों

— के —

स्फुट विचार

सत्याग्रह आश्रम के व्रत

इन व्रतों के पालन करने का गांधीजी ने सदा प्रयत्न किया।

सत्य

सत्य ही परमेश्वर है। सत्य-आग्रह, सत्य-विचार, सत्य-वाणी और सत्य-कर्म यह सब उसके अंग हैं। जहाँ सत्य है, वहाँ शुद्ध ज्ञान है। जहां शुद्ध ज्ञान है, वहां आनन्द ही हो सकता है।

इस सत्य की आराधना के लिए ही हमारी हस्ती है और इसी के लिए हमारी हर एक प्रवृत्ति होनी चाहिए। बिना सत्य के किसी भी नियम का शुद्ध पालन नहीं हो सकता। विचार मे, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही सत्य है। यदि हम इस दृष्टि से देखना सीख जावें तो हमें सहज मे ही ज्ञात हो जावेगा कि कौन प्रवृत्ति उचित है, कौन त्याज्य ?

लेकिन सत्य मिले कैसे ? भगवान् ने उसका उत्तर दिया है—अभ्यास और वैराग्य से। सत्य की ही लगन अभ्यास है;

उसके सिवा दूसरी सब चीजो के बारे मे हद दरजे की उदासीनता वैराग्य है ।

अहिंसा

सत्य ही परमेश्वर है । उसके साक्षात्कार का एक ही मार्ग, एक ही साधन अहिंसा है । बगैर अहिंसा के सत्य की खोज असम्भव है ।

सत्य का व अहिंसा का मार्ग तलवार की धार पर चलने जैसा है । जरा-सी गफलत हुई कि नीचे गिरे । क्षणक्षण की साधना से ही उसके दर्शन होते है ।

इस व्रत का पालन करने के लिए जीवधारियो को न मारना ही काफी नहीं है ।" इस व्रत का पालक घोर अन्याय करने वाले पर भी गुस्सा न करे, बल्कि उससे प्रेम करे, उसका भला चाहे और करे । लेकिन प्रेम करते हुए भी अन्यायी के अन्याय के वश मे न हो, अन्याय का विरोध करे और वैसा करने पर, वह जो कष्ट दे, उसे धैर्य्य के साथ और अन्यायी के के लिए दिल मे द्वेष रखे बिना सह ले ।

अहिंसा मे जहां किसी को न मारना तो जरूरी है ही, वहां कुविचार मात्र भी हिंसा है । उतावलापन हिंसा है । झूठ बोलना हिंसा है । द्वेष हिंसा है । किसी का बुरा चाहना हिंसा है । जिसकी दुनिया को जरूरत है, उस पर कब्जा जमाए रखना भी हिंसा है ।

अहिंसा को साधन समझें, सत्य को साध्य समझें । साधन हमारे हाथ की बात है, इसलिए अहिंसा परम धर्म है । साधन की चिन्ता रक्खेंगे, तो किसी दिन साध्य के दर्शन जरूर ही होंगे ।

ब्रह्मचर्य

बिना ब्रह्मचर्य पाले सत्य-अहिंसा-व्रत का पालन सम्भव नहीं है। अहिंसा अर्थात् सर्वव्यापी प्रेम। जहां पुरुष ने एक स्त्री को या स्त्री ने एक पुरुष को अपना प्रेम सौंप दिया, वहां उसके पास दूसरे के लिए क्या बच रहा? वह सारी सृष्टि को अपना कुटुम्ब नहीं बना सकता। इसीलिए अहिंसा-व्रत का पालन करने वाला तथा जीवन मे सेवा-व्रत को अंगीकार करने वाला विवाह नहीं करेगा।

फिर जो विवाह कर चुके हैं, क्या उन्हें सत्य की प्राप्ति कभी न होगी? उसका भी रास्ता है वह यह—विवाहित का अविवाहित की भांति हो जाना। इस स्थिति का आनन्द जिसने अनुभव किया है, वह ही इसे बता सकता है। विवाहित स्त्री-पुरुष एक दूसरे को भाई-बहन मानने लग जावें तो सारे झगडों से वे मुक्त हो जावेंगे। संसार भर की सारी स्त्रियां बहनें हैं, मातायें हैं, लडकियां हैं—यह विचार ही मनुष्य को एक दम ऊंचा ले जाने वाला, बन्धनों में से मुक्ति देने वाला होजाता है।

वीर्य का उपयोग शरीर और मन की ताकत को बढ़ाने के लिए है। जानबूझ कर भोगविलास के लिए वीर्य खोना और शरीर को निचौड़ना कितनी बडी मूर्खता है! ब्रह्मचर्य का पालन मन, वचन और कर्म तीनों से होना चाहिए। हम गीता में पढ़ते हैं कि जो शरीर को तो वश मे रखता हुआ जान पडता है, पर मनसे विकार का पोषण किया करता है, वह मूढ़ मिथ्याचारी है। मन को विकारी रहने देकर शरीर को दबाने की कोशिश करने मे हानि ही है। जहां मन होता है वहां शरीर अन्त में घसीटे बिना नहीं रहता। इसलिए शरीर को तो तुरन्त ही वश मे करके मन को वश में करने का हमें बराबर प्रयत्न करते रहना चाहिए।

विषय मात्र का विरोध ही ब्रह्मचर्य है। जो दूसरी इंद्रियो को जहां तहां भटकने देकर एक ही इंद्रिय को रोकने का प्रयत्न करता है। कान से विकारी बातें सुनना, आंख से विकार उत्पन्न करने वाली वस्तु देखना, जीभ से विकारोत्तेजक वस्तु का स्वाद लेना, हाथ से विकारों को उभारने वाली चीजो को छूना और फिर भी जननेन्द्रिय को रोकने का इरादा रखना तो आग मे हाथ डाल कर जलने से बचने के प्रयत्न के समान है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है, ब्रह्म की-सत्य की-खोज मे चर्या अर्थात् उससे सम्बन्ध रखने वाला आचार। इस मूल अर्थ मे से सर्वेन्द्रिय संयम का विशेष अर्थ निकलता है। केवल जननेन्द्रिय-संयम के अधूरे अर्थ को तो हमे भूल जाना चाहिए।

अस्वाद

मनुष्य जब तक जीभ के रसों को न जीते तब तक ब्रह्मचर्य का पालन अति कठिन है। भोजन केवल शरीर पोषण के लिए हो, स्वाद या भोग के लिए नहीं। इसलिए उसे दवा समझकर संयम-पूर्वक लेना चाहिए। जैसे किसी चीज का स्वाद बढ़ाने या वदलने के लिए नमक मिलाना, यह व्रत का भंग है। पर अमुक परिणाम में हमारे शरीर-पोषण के लिए नमक की जरूरत है, इस वजह से नमक मिलाना, यह व्रत-भंग नहीं है। इस दृष्टि से विचार करने पर अगणित वस्तुओ का अनायास ही त्याग हो जाने से मनुष्य के अनेक विकार शान्त हो जायेंगे।

भोजन के चुनाव के विषय में हमारे यहां पर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। बचपन से ही मां-बाप झूठा लाड-चाव करके अनेक प्रकार के स्वाद करा-करा कर शरीर को विगाड़ देते है और जीभ को चटोरी वना देते हैं जिससे बड़े

होने पर लोग शरीर से रोगी और स्वाद की दृष्टि से महाविकारी देखने मे आते है। इससे हम फिजूल खर्चियों मे पड़ते है, वैद्य डाक्टरो की खुशामदें करते है और शरीर तथा इन्द्रियों को वश मे रखने के बदले उसके गुलाम बनकर अपंग की भांति जीते हैं। इस व्रत का पालन करने वाला विकार उत्पन्न करने वाले मिर्च मसालों वगैरह का त्याग करे। मांसाहार, मद्यपान, तम्बाकू, भंग आदि का त्याग करें। आदर्श स्थिति तो यह है कि सूर्य रूपी महा अग्नि जिन चीजो को पकाती है उन्हीं मे से हमे अपनी खुराक चुन लेना चाहिए। इस तरह सोचने पर यह सिद्ध होता है कि मनुष्य प्राणी केवल फलाहारी है।

अस्तेय (चोरी न करना)

दूसरे की चीज़ को उसकी इजाजत के बिना लेना भी चोरी है ही, लेकिन मनुष्य अपनी कम से कम जरूरत के अलावा जो कुछ लेता है या संग्रह करता है वह भी चोरी ही है।

अस्तेयव्रत पालने वाला धीरे-धीरे अपनी जरूरतें कम करेगा। इस दुनिया की बहुत सी कंगालियत अस्तेय के भंग से पैदा हुई है।

जब हम मन ही मन किसी की चीज पाने की इच्छा करते हैं या उस पर झूठी नज़र डालते हैं तो वह चोरी है।

अपरिग्रह

बिना आवश्यकता के संग्रह करना एक तरह से चोरी का सा माल हो जाता है। इसलिए जिस खुराक या साज-सामान की जरूरत नहीं, उसका संग्रह करना इस व्रत का भंग करना है। सब अपनी अपनी खास जरूरत की ही चीजों का संग्रह करें तो किसी को तंगी न रहे और सब सन्तुष्ट रहे।

सच्चे सुधार की निशानी परिग्रह वृद्धि नही बल्कि विचार और इच्छापूर्वक परिग्रह कम करना उसकी निशानी है। ज्यो-ज्यो परिग्रह कम होता है, त्यो-त्यो सुख और सच्चा संतोष बढ़ता है, सेवा-शक्ति बढ़ती है।

अभय

जो सत्यपरायण रहना चाहे, वह न तो जात-बिरादरी से डरे, न सरकार से डरे, न चोर से डरे, न गरीबी से डरे, न बीमारी या मौत से डरे, न किसी के बुरा मानने से डरे।

दैवी सम्पद् का बयान करते हुए भगवान् ने इसका नाम सब से पहले लिया है। बिना अभय के दूसरी सम्पत्तियां नहीं मिलतीं। 'हरिनो मारग छे शूरानो' प्रभु का मार्ग वीरो का मार्ग है। उसमे (सत्यशोधक मे) हरिश्चन्द्र की तरह पायमाल होने की तैयारी होनी चाहिए। जब हम पैसे मे से, कुटुम्ब और शरीर मे से मेरेपन का खयाल निकाल देते हैं तो फिर हमे अभय सहज ही प्राप्त हो जाता है।

अस्पृश्यता-निवारण

अस्पृश्यता की रूढिमे धर्म नही बल्कि अधर्म है। अगर आत्मा एक ही, ईश्वर एक ही है, तो अछूत कोई नही है।

छुआछूत हिन्दू धर्म का अंग नही है, इतना ही नहीं बल्कि उसमे घुसी हुई सड़न है, वहम है, पाप है और उसका निवारण करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है, कर्त्तव्य है।

जो उसे(छुआछूत को)पाप मानता है,वह उसका प्रायश्चित्त करे, और ज्यादा कुछ नहीं, तो प्रायश्चित के तौर पर ही धर्म समझ कर समझदार हिंदू हरएक अछूत माने जाने वाले भाई बहन को अपनावे। प्यार से और सेवा भाव से उसे छुए, उसके दुःख दूर

करे, और उसमे जड़ जमा कर बैठे हुए दोषो को धैर्यपूर्वक दूर करने मे मदद करे।

जातिभेद से हिंदू धर्म को नुकसान पहुंचा है। उसमे पाई जानेवाली ऊँचनीच की और छुआछूत मिटाने की भावना अहिंसा-धर्म की घातक है।

शरीरश्रम

जब सभी मनुष्य शारीरिक श्रम से शरीरनिर्वाह करेंगे, तभी वे समाज के और अपने द्रोह से बच सकेंगे। जिनका शरीर काम कर सकता है और जो सयाने हो चुके हैं उन स्त्री पुरुषो को अपना रोजमर्राका सभी काम, जो खुद कर लेने लायक हो, खुद ही कर लेना चाहिये; और बिना कारण दूसरों से सेवा न लेनी चाहिये; जब बच्चो, अपाहिजो और बूढे स्त्री पुरुषो की सेवा करने का अवसर मिले, तो हरेक मनुष्य का धर्म है कि वह उनकी सेवा करे।

जो खुद मिहनत न करें, उन्हे खाने का हक ही क्या है ?

स्वदेशी

अपने आसपास रहनेवालोकी सेवामे ओत-प्रोत होजाना स्वदेशी धर्म है। जो निकटवालो की सेवा छोड़कर दूरवालों की सेवा करने को दौड़ता है, वह स्वदेशी का भंग करता है। इस नियम के अनुसार हमे यथासंभव अपने पडोसी की ही दुकान से लेन-देन रखना चाहिए। जो चीज देश मे पैदा होती हो या आसानी से हो सकती हो उसे हम परदेश से न लावे। स्वदेशी मे स्वार्थ को स्थान नही है। अपने कुटुम्ब के, कुटुम्ब को शहर के, शहर को देश के और देश को जगत् के कल्याण के लिए सौप दे। मेरे गांव मे महामारी फैली है। महामारी से पीड़ित लोगों की

सेवा मे मैं अपने आपको तथा अपने कुटुम्ब को लगादूं और हम सब उस बीमारी के शिकार होकर मर भी जावें तो ऐसा करके मैंने अपने कुटुम्ब को मिटाया नही, बल्कि उसकी सेवा की है।

ऐसा कौनसा स्वदेशी-धर्म हो सकता है, जिसे सब समझ सकें, जिसकी इस जमाने मे और इस देश मे बहुत जरूरत है, और जिसके सहज पालन से करोड़ो की रक्षा हो सकती है? जवाब मे चरखा और खादी मिले।

खादी स्वदेशी की पहली सीढ़ी है, उसकी आखिरी हद नहीं। ऐसे खादीधारी देखे गये हैं, जो दूसरी सब चीजे परदेशी बसा रहे हैं, वे स्वदेशी का पालन नहीं करते। स्वदेशी-व्रत पालने वाला जहाँ जहाँ पड़ोसी के हाथो तैयार हुआ जरूरी माल मिलेगा, वहाँ दूसरा छोड़कर वही लेगा। फिर चाहे स्वदेशी चीज पहले महंगी और घटिया ही क्यो न मिले। व्रतधारी उसे सुधरवाने की कोशिश करेगा; स्वदेशी खराब है, इसलिये उससे उकता कर परदेशी बरतना शुरू न करेगा।
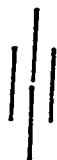
गांधीजी के जीवन से क्या-क्या सीखें ?

१—प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में ४ बजे उठना।

२—सुबह व शाम नियमपूर्वक ईश्वर-प्रार्थना करना।

३—प्रतिदिन टहलने जाना तथा व्यायाम करना।

४—शुद्ध हवा में रहना, सात्विक सादा भोजन करना, कम से कम कपड़े पहनना, प्राकृतिक जीवन बिताना, सदा प्रसन्न और हंसमुख रहना।

५—सदा सच बोलना, चोरी नहीं करना, क्रोध नहीं करना, गलती मालूम हो तो—स्वीकार कर लेना, मन और जीभ को काबू में रखना।

६—सब स्त्रियों को बहन और बड़ी को माता मानना।

७—अहिंसा का पालन करना, सब पर क्षमाभाव रखना।

८—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सबको भाई समझना।

९—भगी, चमार आदि हरिजनों को समान समझना, उनसे छूआछूत न मानना तथा उनसे भाईचारा रखना।

१०—खादी पहनना तथा अन्य वस्तुएँभी स्वदेशी बरतना। सही बात में कभी किसी से नहीं डरना।

११—मुँह से अप्रिय और कठोर शब्द नहीं बोलना।

१२—जीवन हर-प्रकार से सेवामय बनाना।

१३—समय का एक सेकिंड भी व्यर्थ न जाने देना

१४—अपने हाथों अपना काम करना

१५—नौकरों को अपने सहायक रूप में समझना, उनकी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखना।

१६—सार्वजनिक पैसे को एक पवित्र धरोहर समझना! उसका पाई २ का हिसाब रखना, फिजूल खर्च नहीं होने देना।

१७—माता-पिता तथा गुरुजनों की सेवा करना, उनकी आज्ञा का पालन करना।

१८—जब तक देश में गरीब को भी देह ढकने को पुरा कपड़ा न मिले, तब तक लाज ढकने के लिये एक लंगोटी लगाकर रहना।

१९—आदर्श पत्नी-सेवा

जिस प्रकार स्त्रियों का धर्म पति की सेवा करना है, उसी प्रकार पुरुषों का धर्म भी पत्नी की सेवा करना है, इस बात को बापू भलीभांति समझते थे। एक बार बा (गांधीजी की पत्नी) की तबीयत बहुत खराब हो गई। इन दिनों बापू ने बा की बड़ी लगन से सेवा की। सवेरे बापू खुद बा को दतौन कराते। काफ़ी भी खुद ही बनाकर पिलाते, एनिमा देते। टट्टी और पेशाब के वर्तन साफ़ कर लाते। छोटे बालक को उठाने के ढग से बापू बा को दोनों हाथों मे उठाकर बाहर ले आते और पेड़ के नीचे खटिया पर सुला देते। जैसे-जैसे धूप बदलती जाती, बा की खटिया को बदलते रहते। बापू बा की सूजन पर रोज नीम के तेल की मालिश करते। इस प्रकार बीमारी मे बापू रातदिन बा की सेवा मे लगे रहते थे। आखिर बापू की सेवा फली और बा उस बिमारी से मुक्त होकर बिलकुल स्वस्थ हो गई।

२०—गांधीजी ने थूक को बार बार साफ़ किया।

एक बार गांधीजी रेल में यात्रा कर रहे थे। पास में बैठे हुए एक यात्री ने पटरी के नीचे ही कफ़ थूक दिया और खाये हुये गन्ने के छिलके भी वहीं डाल दिये। गाधीजी ने बडी नम्रता से उसे समझाया कि इस प्रकार गाड़ी को गंदा नहीं करना चाहिए। पर वह आदमी बड़ा जिद्दी और मूर्ख था। कहने लगा बड़े आये उपदेश देने वाले। और फिर बार बार वहीं थूकने

लगा। गांधीजी यह देखकर उसके थूक को बार बार साफ करने लगे। यह देखकर दूसरे यात्रियों ने उस जिद्दी आदमी को काफी समझाया और शर्मिंदा किया। इस पर उसकी अक्ल ठिकाने आई और वह गांधीजी से क्षमा मांगने लगा और सब सफाई कर दी।

२१—गांधीजी की फूलों और वृक्षों की प्रति भावना

एक बार गांधीजी देवीपुर गांव में पहुँचे। वहाँ के लोगों ने गांधीजी के स्वागत के लिए फूलों के बड़े बड़े हार बनवा रखे थे। यह देख कर गांधीजी बोले "इन हारों के बजाय आप मुझे सूत के हार पहनाते तो मुझे बड़ी खुशी होती। क्योंकि सूत के हार बाद में कपड़े बनाने के काम में आ जाते हैं। वे फिजूल नहीं जाते। फूल तो अपने पेड़ पर ही शोभा देते हैं और सबको अपनी सुगन्धि और सुन्दरता से आनन्द पहुँचाते है। उनको व्यर्थ में सजावट के लिये या मौज शौक के लिए तोड़ना उचित ही नहीं बल्कि सूक्ष्म हिंसा है।"

यरवड़ा जेल की बात है। नीम के चार पाँच पत्तों की जरूरत थी पर काका नीम की पूरी टहनी तोड़ कर ले आये। यह देखकर बापू बोले "यह तो हिंसा है, और लोग न समझें लेकिन तुम तो आसानी से समझ सकते हो। चार पत्ते भी हमें पेड़ से क्षमा मांग कर ही तोड़ने चाहिए पर तुम तो पूरी टहनी तोड़ लाये"। इसी तरह नीम के दांतुन की बात आई तो बापू ने कहा "दातुन का ऊपर का छोर जिससे आज दातुन की है उतना काट-कर फिर उसी दातुन की दूसरे दिन के लिए नई कुंची बना लो। जब तक वह बिलकुल छोटी न रह जाय या सूख न जाय तब तक हम उसे कैसे फेंक सकते हैं।" इस तरह बापूजी आदर्श अहिंसाव्रतधारी थे। —'गांधी चित्रावली' में से साभार उद्धृत

परमात्मा की स्तुति

(स्वर्गस्थ जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा०)

परमात्मा की स्तुति करने वालों को परमात्मा के नाम-स्मरण की महिमा पूरी तरह समझ लेनी चाहिए। नाम में क्या गुण है और क्या शक्ति है, इस बात को समझकर परमात्मा का भजन किया जाय तो आत्मा में निराली ही जागृति हो जाती है।

नाम लेने का अधिकारी कौन है? अर्थात् नाम कौन ले सकता है? इस सम्बन्ध में पद्म-प्रभु की प्रार्थना में कहा है कि धीवर, भील, कसाई, गोघातक, स्त्रीघातक, बाल-घातक, वेश्या, चुगल, छिनार, जुआरी, चोर, डाकू आदि कोई कैसा भी कुकर्मी क्यों न हो, सभी को भगवान् का भजन करने का अधिकार है। परन्तु वह पापो को बढ़ाने के लिए नहीं किन्तु घटाने के लिए है। जिसे रोग न हो वह दवा क्यों ले? इसी प्रकार जिसमें पाप न हो उसे भजन करने की क्या आवश्यकता है? परन्तु जैसे दवा रोग बढ़ाने के लिए नहीं वरन् घटाने के लिये ली जाती है, इसी प्रकार भजन पाप बढ़ाने के लिये नहीं करना चाहिए— घटाने के लिये करना चाहिए। इस दृष्टि से जो परमात्मा का भजन करता है वह कैसा भी पापी क्यों न हो उसकी आत्मा पवित्र बन जाती है। आजकल प्रायः पाप बढ़ाने के लिये परमात्मा का भजन किया जाता है, अर्थात् ऊपर से अपने आपको धर्मात्मा प्रकट करने के लिए लोग भजन करते हैं और भीतर कुछ और ही रचना होती है। ऐसा भजन करने वाले का उद्धार नहीं हो सकता।

परमात्मा का भजन करना, उसके नाम को स्मरण करना, अपनी आत्मा को परमात्मा के सामने उसी तरह खड़ा करना है, जैसे ज्ञानी पुरुष अपनी आत्मा को परमात्मा के समक्ष खड़ी कर देते हैं। जिस प्रकार राजा के सामने अपराध को स्वीकार

करने से प्रायश्चित हो जाता है, उसी प्रकार परमात्मा के समक्ष अपने अपराधों को शुद्ध अन्तःकरण से प्रकट कर देने पर प्रायश्चित्त हो जाता है।

प्रार्थना का महत्त्व

(उपाध्याय पण्डित मुनि श्री अमरचन्दजी महाराज)

जैन संस्कृति प्रार्थना को महत्त्व देती है, अपने आराध्य को प्रतिपल स्मृतिपथ में रखने को कहती है, परन्तु इससे भी आगे बढ़कर कहती है कि—"अपने पुनीत पुरुषार्थ को न भूलो, जीवन के कर्त्तव्यो के प्रति बेभान न बनो। शक्ति का अनन्त स्रोत तुम्हारे अन्दर ही बह रहा है वह कहीं बाहर से नहीं आने वाला है, किसी से दिया नही जाने वाला है। प्रभु का स्मरण तो ठीक समय पर उठ खड़ा होने के लिए शोर-घड़ी है, अलार्म है। उठना तो साधक, तुझे ही पड़ेगा। यदि तेरी मन्द चेतना है तो वह प्रार्थना क्या करेगी ? प्रार्थना आदर्श ग्रहण करने के लिए प्राप्त है। उस आदर्श को यथार्थ रूप देने के लिये। इसके आगे तू है और तेरा पुरुषार्थ है।"

प्रार्थना के प्रवाह में जैन संस्कृति के उक्त आदर्श को भूल गये तो फिर वही दूसरों की तरह हमारी प्रार्थनायें भी केवल प्रभु के आगे गिड़गिड़ाना और भीख माँगना मात्र रह जायेंगी। और इस स्थिति में प्रार्थना सजीव एवं सतेज न होकर निर्जीव निस्तेज, मृत तथा कलेवर मात्र रहेगी, जो जैनधर्म को कदापि कथमपि अभीष्ट नहीं है। प्रार्थना यांत्रिक वस्तु नहीं है, वह हृदय की चीज़ है, इससे भी बढ़कर जीवन की चीज़ है। सन्त विनोबा ने कहीं कहा है—"प्रार्थना के वचनों में जो भाव हों, उनको हृदय पर अङ्कित करके उसी प्रकाश में दिन भर का जीवन व्यतीत करने का अभ्यास करना चाहिए। दुनिया अभी लोभ-

वृत्ति और भेदभाव से त्रस्त है। उसमे से मुक्त होने का बल ईश्वर की प्रार्थना से मिलेगा, ऐसी अपेक्षा है।''

जो प्रार्थना केवल वाणी पर चढ़ कर बोलती है, संसार के स्थूल पदार्थों में अटकी रहती है, जिसमें से वासनाओं की दुर्गन्ध आती है, वह प्रार्थना जैन-धर्म को मान्य नही है। यह प्रार्थना क्या, यह तो सौदाबाजी है। साधक-जीवन की मधुर सुगन्ध निष्काम भाव से अपने प्रभु के प्रति अपने को अर्पण करने में है। प्रभु को अर्पण करने का अर्थ है—'प्रभुमय जीवन बनाना।' प्रभुमय जीवन का अर्थ है, पवित्र एवं निर्मल जीवन। जो जीवन वासनाओं से रहित है, विकारो से दूर है, अपने पवित्र स्व में केन्द्रित है बाहर नही भटक रहा है, जिसके चारो ओर स्वच्छ संयम की अभेद्य लक्ष्मण रेखा खिची हुई है, जिसको अपने प्रभु को छोड़ कर अन्य किसी का ध्यान आता ही नहीं है, जिसका अन्तर चैतन्य अपने प्रभु में एकाकार हो गया है, वह है प्रभुमय जीवन।

यज्ञ का सच्चा स्वरूप

(स्वर्गस्थ जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा०)

यज्ञ वास्तव में क्या है? यज्ञ किसे कहना चाहिए? कोई २ अग्नि में घी होमने को यज्ञ कहते है। किसी ने पशुओ की बली चढ़ाना यज्ञ समझ लिया है तो कोई नर बलि को भी यज्ञ मानते हैं। तात्पर्य यह है कि लोगों ने यज्ञ के मूलभूत वास्तविक अर्थ को बदल कर उसे हिंसा मे परिणित कर दिया है। इस कारण यज्ञ के नाम पर घोर हत्याएँ हुई है और आज भी अनेक देवी-देवताओं को लक्ष्य करके लाखो पशुओ का निर्दयता के साथ वध किया जाता है। प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि यज्ञ के नाम से धरती पर रक्त की नदियां बहाई गई थीं।

लोकमान्य तिलक ने यज्ञ की घोर प्रथा का वर्णन करते हुए लिखा है चम्बल नदी का वास्तविक नाम चर्मवती है इस नदी का चर्मवती नाम पड़ने का कारण भी उन्होंने बतलाया है। एक राजा ने यज्ञ के लिये इतने पशुओं की बलि चढ़ाई कि इस नदी के किनारे उन पशुओं के चर्म का ढेर लग गया और उससे रक्त की जो धारा बही उससे नदी का पानी रक्त वर्ण हो गया। तभी से इसका नाम चर्मवती पड़ा जिसे आज कल की बोली मे 'चम्बल' कहते हैं।

इस प्रकार यज्ञ का अर्थ हिंसा में बदल गया, परन्तु उसका वास्तविक अर्थ हिंसाकारक नहीं है। यज्ञ का वास्तविक अर्थ समझने का बीडा जैन-शास्त्रों ने तो उठाया ही है परन्तु गीता आदि वैदिक सम्प्रदाय के अनेक ग्रन्थ भी हत्या वाले यज्ञ को यज्ञ नहीं कहते। गीता मे कहा है:—

> द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा, योगयज्ञास्तथाऽपरे।
> स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च, यतय सशितव्रता ॥

अर्थात्—द्रव्य, तप, योग, स्वाध्याय और ज्ञान से यज्ञ होता है। परोपकार के लिये द्रव्य आदि को लगाने रूप सात्विक दान देने से दान यज्ञ है। सात्विक तप करना तप यज्ञ है। ध्यान, धारणा समाधि आदि योग यज्ञ कहलाता है। शास्त्रों का पठन-पाठन स्वाध्याय यज्ञ है और आध्यात्मिक विचार में मग्न रहना ज्ञान यज्ञ है।

इन पाँच प्रकार के गीता-वर्णित यज्ञों में हत्या को कहाँ अवकाश है? यहाँ तो विशुद्ध आचार का ही प्रतिपादन किया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र के १२ वें अध्याय में हरिकेशी मुनि ने भी ब्राह्मणों को यज्ञ का अर्थ समझाया है।

> कह चरे भिकखु कहं जयामो पावाइ कम्माइं पणोल्लयामो।
> अक्खाहि णं संजय! जक्खपूइया! कहं सुजयट्ठं कुसला वयंति ॥

जब हरिकेशी मुनि ने ब्राह्मणों के हिंसात्मक यज्ञ को पाप रूप बताया तब उन्होंने मुनि से पूछा—हे भिक्षु ! हम लोगों को यज्ञ करना चाहिए या नहीं। अगर यज्ञ करें तो कौनसा यज्ञ करें जिससे पाप का नाश हो सके। हे संयत ! कृपा करके हमें समझाइये कि ज्ञानी पुरुषों ने किसे सुयज्ञ बतलाया है। ब्राह्मणों के प्रश्न का उत्तर देते हुए मुनि ने कहा:—

छज्जीवकाये असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।
परिग्गहं इत्थीओ माणमाय, एयं परिन्नाय चरन्ति दन्ता॥
सुसंवुडा पंचहि संवरेहिं, इह जीवियं अणवकंखमाणा।
वोसट्ठकाया सुचइत्तदेहा, महाजयं जयइ जन्नसिट्ठं॥

अर्थात्—षट् जीव-निकाय का आरम्भ न करने वाले, मृषावाद और अदत्तादान का सेवन न करने वाले, परिग्रह, स्त्री, मान, माया आदि का त्याग करने वाले, पाँच प्रकार के संवर से युक्त जीवन के प्रति निष्काम, शरीर की ममता से रहित पुरुष श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं अर्थात् उल्लिखित गुणों को अपने जीवन में व्यवहार्य बनाना ही श्रेष्ठ यज्ञ है।

इसके बाद ब्राह्मणों के एक और प्रश्न के उत्तर में मुनि ने कहा:—

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसगं।
कम्मेहा संजम जोगसन्ती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं॥

अर्थात्—तप अग्नि है। जीव अग्नि का स्थान है होमकुण्ड है। याग चटुवा-सामग्री लेकर होम करने का उपकरण है। शरीर इंधन है। सयम और योग शान्ति पाठ है। हम इस प्रकार का अग्नि होत्र करते हैं। यही अग्नि होत्र ऋषियों द्वारा प्रशासित है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ न करना, जैन-धर्म का यही सिद्धान्त नहीं वरन् यज्ञ का जो विकृत और विभत्स

रूप प्रचलित हो गया है उसका तीव्र विरोध करना जैन-धर्म का काम है। गीता और उत्तराध्ययन दोनों के उद्धरणों द्वारा यह सिद्ध है कि यज्ञ का वास्तविक रूप हिंसामय नहीं है।

महर्षि व्यास उत्तम यज्ञ करने का उपदेश देते हुए कहते हैं:—ज्ञान रूपी पाली से घिरे हुए ब्रह्मचर्य और दया रूपी जल वाले पाप रूपी कीचड़ को धो डालने वाले निर्मल तीर्थ में स्नान करके जीव रूपी कुण्ड में स्थित इन्द्रिय-दमन रूपी वायु से प्रदीप्त की हुई ध्यान रूपी अग्नि में पाप रूपी समिधा डालकर श्रेष्ठ यज्ञ करो। यही नहीं, आगे व्यासजी स्पष्ट कहते हैं:—

प्राणिघातात्तु यो धर्ममीहते मूढ-मानसः।
स वाञ्छति सुधावृष्टिं कृष्णाहिमुखकोटरात्॥

अर्थात्—जो प्राणियों की हिंसा करके धर्मोपार्जन करना चाहता है वही मूढ़ है। वह काले साँप के मुख से अमृत की वर्षा होने की असम्भव इच्छा करता है। तात्पर्य यह है कि हिंसात्मक यज्ञ से धर्म होना असम्भव है।

उपरोक्त उद्धरण स्पष्टरूप से सिद्ध करता है कि जैन सिद्धान्त अकेला हिंसात्मक यज्ञ का विरोध नहीं करता किन्तु वैदिक ऋषि भी हिसा की विभत्सता से ऊब कर उसकी निन्दा करते हैं।

क्रियाकाण्ड और सदाचार

(श्री० रघुवीरशरण दिवाकर, बी० ए० एल० एल० बी०)

बाह्य क्रियाकाण्ड मानव-जीवन की एक अपरिहार्य आवश्यक्ता है। भीतर की भावनाएँ किसी न किसी रूप में प्रकट होती ही हैं और इस प्रकटीकरण की अपनी उपयोगिता या सार्थकता है। लेकिन बाह्य क्रियाकाण्ड का एक विधान ही बना दिया जाय और अनावश्यक व ऐकान्तिक महत्व उसे दे दिया जाय तो

इसका परिणाम यह होगा कि क्रियाकाण्ड रिवाज की चीज बन जायगा, तथा उसमें सुविधा व रुचि के अनुकूल परिवर्तन या हेर फेर न होने से धीरे-धीरे वह निष्प्राण हो जायगा और वह निष्प्राण हुआ कि या सदाचार की अवहेलना हुई। बाह्य विधान के निरंकुश आधिपत्य की इस स्थिति मे शब्द भावों से, कर्मकाण्ड बुद्धि, विवेक व भावना से, बाह्य अंतरंग से अथवा शरीर आत्मा से अधिक महत्वपूर्ण बन कर जीवन के प्रस्फुटन व विकास को रोक देते हैं। जब बाह्य क्रियाएँ स्वयं साधन बन जाती हैं अथवा जब बाह्य पूजा-पाठ कीर्तन स्वाध्याय व्रत उपवास आदि कर्म स्वय पुण्य मान लिए जाते हैं तब स्वभावतः ही वास्तविक पुण्य-कार्य या सदाचार की ओर से उपेक्षा हो जाती है और व्यवहार मे उनका महत्व बहुत ही कम हो जाता है।

यह स्वाभाविक ही है कि मनुष्य के व्यक्तित्व व चरित्र की कसौटी जब कुछ बाहरी क्रियाएँ बन जाएँ, तब ढोंग, दंभ व मायाचार का बाजार खूब गरम हो। ऐसी हालत में बाहर का सफल अभिनय दुराचारी को सदाचारी के रूप मे उपास्यतया घोषित कर देता है और इस तरह एक दुरात्मा को संरक्षण ही नहीं मिलता, साथ ही दुराचार की उस की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन भी मिल जाता है। ऐसे कितने ही व्यक्ति हैं जो वास्तव मे किसी किसी कर्म काण्ड में क्या, वे जिन भावो या विचारो का प्रतिनिधित्व करते या करने का दावा करते हैं, उन में भी विश्वास नहीं रखते, पर जब वह क्रियाकाण्ड सामूहिकरूप से सम्पन्न किया जाता है तो हम उन्हे बड़े भक्तिभाव के दिखावे के साथ मंत्रोच्चारण करते हुए, साष्टांग प्रणाम करते हुए तथा गंभीर मुखाकृति से अन्य सब क्रियाएँ सम्पन्न करते हुए और उन सिद्धांतो की, जिन में उनको रत्ती भर विश्वास नहीं है, औरो मे दुहाई देते हुए पाते हैं। दिल ही दिल में जिन के अज्ञान के प्रति उनके

हृदय में दया है, उन्हीं को प्रसन्न रखने के लिए अथवा मन ही मन उनका उपहास करके अपना मनोरंजन करने के लिए अभिनय करते हैं। टकाधर्मी लोगों को भी इस तरह के अभिनय से अपनी स्वार्थ-सिद्धि का अवसर मिल जाता है।

फिर, बाह्य क्रियाकाण्ड को अनुचित महत्व देने से यह क्या कम अनर्थ होता है कि मनुष्य धर्म के नाम पर खुल्लमखुल्ला व्यापार या मतलबपरस्ती का सौदा करने लगता है और इससे सदाचार खटाई में पड़ जाता है। बेटा बीमार होता है तो ईश्वर की पूजा प्रार्थना या खुदा की इबादत की जाती है, तीर्थ-यात्रा का वचन दिया जाता है, दान देने की प्रतिज्ञा की जाती है। बच्चा होने को होता है तो भगवान् याद आते हैं और उनसे मांगा जाता है बच्चा तथा बच्चे के नवजीवन की भीख। पेट मे दर्द होता है तो चिल्लाते हैं राम राम या हाय अल्लाह। रेलें लड़ती हैं, मोटर टकराती है, हवाईजहाज गिरता है तो संकट-मोचन भगवान् याद आते हैं। कचहरी में मुकदमा होता है तब देवताओं को स्मरण किया जाता है। किसी के औलाद नहीं होती तो भगवान् से औलाद मांगी जाती है। चोर जब चोरी करता है, खुनी जब खून करता है, जुआरी जुआ खेलता है तो परमात्मा से सहायता की माग करता है, गरज यह है कि स्वार्थ और भयवश ईश्वर, खुदा या गॉड को खुश करने की धुन सब पर सवार है। कोई एक बार माथा टेकता है, कोई सुबह शाम सिर झुकाता है, कोई पांच बार सिजदा करता है। फिर, खुले खज़ाने परमात्मा को रिश्वत भी दी जाती है। कहीं गुनाह का इकरार करने से और थोड़ी-सी फीस पुजारी को दे देने से इसी जन्म में गुनाहों की माफी मिल जाती है। कहीं गंगा में डुबकी लगाने से या कोई तीर्थ यात्रा करने से अथवा कोई व्रत या उपवास करने से माफी का सर्टिफिकेट मिल जाता है। कहीं बेचारे निरपराध व मूक

पशुओं का वध या उनकी कुरबानी कर या कभी अपने बच्चे तक का कत्ल करके देवताओं को रिझाया जाता है। मतलब-परस्ती, खुदगर्जी और रिश्वतखोरी का यह नंगा नाच क्रिया-काण्ड की आड़ मे हुआ है और हो रहा है।

जब बाह्य अंतरग के आधिपत्य से निकल कर स्वतन्त्र और उच्छृंखल हो जाता है, तब अंतरंग का या भीतरी सदाचार का प्रेम दया त्याग सेवा सत्य परोपकार न्याय आदि गुणों सद्-वृत्तियों का नाम ही रह जाता है। जब पुण्य या सदाचार का सौदा बाह्य से सस्ता हो जाए तो अंतरंग से मँहगा सौदा कौन करेगा ? फिर, बाहर के सस्ते सौदे से वृथा संतोष तो मिलता ही है, एक तरह से व्यक्ति को पाप से न डरने का अभयदान बल्कि पाप करने का लाइसेन्स भी मिल जाता है और वह इस रूप में कि जब पुण्य बहुत सस्ता बिकने लगता है तब पाप करने पर तुरन्त ही सस्ते दामों में पुण्य खरीदकर पाप को पुण्य से बराबर कर देना या इसी तरह पाप को धो डालना बहुत ही सरल व सहज हो जाता है, और इससे, व्यक्त या अव्यक्त रूप से, पाप से न डरने की बल्कि पाप करने या करते रहने की प्रेरणा भीतर ही भीतर मिलने लगती है। यही कारण है कि दुराचारी लोग पूजा पाठ नमाज़ आदि में या कीर्तन सकीर्तन भजन आरती में बहुत रस लेते हुए, झूमते हुए, गाते नाचते हुए और आनन्द-विभोर होते हुए पाए जाते हैं। उनकी यह अनुरक्ति बनावटी नहीं, बल्कि वास्तविक है। वे पूजा-पाठ के जरिये पुण्य कमाकर अपने दुराचार के असर को मिटा डालना चाहते हैं। मनोवृत्ति भीतर ही भीतर ऐसा सोचती है और तदनुकूल आचरण कराती है और उसका यह कार्य इतने सूक्ष्मरूप से होता है कि शायद व्यक्ति को उसका स्पष्ट आभास भी नहीं हो पाता। सौदे के सस्ते-पन की उमंग में या भ्रम में वह यह भूल जाता है कि यह सब

पूजा पाठ कीर्तन नमाज़ व्रत उपवास जुलूस आदि सब निरर्थक हैं यदि इनसे जीवन-शुद्धि नहीं होती है।

यहाँ यह अभिप्राय नहीं है कि बाह्य क्रियाकाण्ड का कोई मूल्य नहीं है। पूजा, पाठ, कीर्तन, नमाज़, प्रेयर, सर्विस, रोज़ा, दान आदि बाह्याचार के नियम या अन्य क्रियाओं से लाभ उठाया जा सकता है, पर तभी जब कि इन्हे साधन मात्र माना जाय। यदि, इन्हें ही साध्य मान लिया जाय तब यह उनका दुरुपयोग ही है और तभी ये बेकार हैं बल्कि भारस्वरूप व हानिकारक हैं। साधन साध्य की साधना में सहायक बने, यही उसका औचित्य है, पर यदि वह साध्य को पदच्युत करके स्वयं उसके आसन पर बैठ जाए तब परिणाम यही होगा कि साध्य ओझल हो जायगा, साधक भटक जायगा, और साधना व्यर्थ जायगी। जब साधन साध्य की साधना में सहायक होने योग्य न रहे तब साधन बदलना चाहिए और नए साधन काम में लेना चाहिए।

क्रियाकाण्ड साधन ही बन कर रहे, तब क्या सदाचारी, क्या दुराचारी, दोनों का उससे लाभ है। सदाचारी की सदाचार भावना और भी बलवती व दृढ़ बनेगी औ दुराचारी का सुधार होगा।

भीतर ही भीतर दुराचार को बल मिलने जैसी बात तो तब टिक ही कैसे सकती है ? फिर, ऐसी स्थिति में साधन में जो समयोचित परिवर्तन सहज हो सकेगा, उससे भीतर की भावना का गला न घुटेगा, वह चिर सजीव बनी रहेगी और सदाचार का स्रोत सदा ही उसमें से बहता रहेगा।

जरूरी है कि हम यह साफ़-साफ़ समझ लें कि जो क्रियाकाण्डी है, वह सदाचारी भी हो, यह जरूरी नहीं है। क्रियाकाण्ड के आधार पर व्यक्तित्व के विषय में फैसला देना एक बड़ी भूल

है। कोई रोज मंदिर में जाता है, घंटो पूजा-पाठ करता है, व्रत-उपवास करता है तो इससे ही हरगिज यह न समझना चाहिए कि वह धर्मात्मा या सदाचारी है। देखना यह चाहिए कि वह चोरी तो नहीं करता है, बेईमानी तो नहीं करता है, वह झूठा या हिंसक तो नहीं है, वह ब्लैकमारकेटियर या घूसखोर तो नही है, वह महाक्रोधी व कषायी तो नहीं है, वह लोभी लालची व दुःस्वार्थी तो नहीं है ? हमें यह समझ लेना है कि क्रियाकाण्ड सदाचार का साधन हो सकता है, पर वह स्वयं सदाचार नहीं है। तभी हम सच्चे अर्थों में क्रियाकाण्ड को उसका मर्यादित उचित मूल्य दे सकेंगे और तभी हम उसे सदाचार पर आच्छादित होने से रोक कर सदाचार की रक्षा कर सकेंगे।

(वीर) ललितपुर से

पाप-धोवन

(अहिंसा-दर्शन में से)

हमारे पड़ौसी वैदिक साहित्य में, पुराणों में एक रूपक आया है। जब महाभारत युद्ध खत्म हुआ, अठारह अक्षौहिणी सेना का सहार हुआ, इन्सान का खुलकर कत्लेआम हुआ और भाई ने भाई की गर्दन पर तलवार चलाई, तब उस भीषण युद्ध के बाद युधिष्ठिर के मन में आया कि हमने बहुत गुनाह किये हैं। इतने पाप कैसे धुलेंगे ? उनकी आत्मा में व्यथा होने लगी। सोचने लगे—क्या करूँ, क्या न करूँ ? युधिष्ठिर सात्विक मन वाले थे। काम तो कर गुजरे, पर पश्चात्ताप उन्हें परेशान करने लगा। तब उन्होने कृष्ण से कहा—हमने बहुत पाप किये हैं। उन्हे धो डालने के लिए ६८ तीर्थों में स्नान करना आवश्यक है। मैं अपने पापों को धोने के लिए तीर्थों में जाना चाहता हूँ। आपकी क्या राय है ?

कृष्ण ने सोचा—युधिष्ठिर स्थूल बन रहे हैं। मरहम कहाँ लगाना है और लगाना कहाँ चाहते है ? मैल कहाँ है और धोने कहाँ जा रहे हैं ? अभी सूक्ष्म-दर्शन की बात कहूँगा तो इनके मन की समस्या हल नहीं होगी। और इनका मन कभी नहीं बदलेगा। और मन न बदला तो किसी बोलते को बन्द कर देने का फल क्या ? किसी को चुप कर देना और बात है और मन को बदल देना और बात है।

तो कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—धोना ही चाहिए पापों को तुम्हारे जैसे नहीं धोएँगे, तो कौन धोएगा ?

युधिष्ठिर—अच्छा, महाराज ! आज्ञा हो। जाता हूँ।

कृष्ण बोले—ठीक है। तुम तो जा ही रहे हो, मगर हम तो दल-दल में फँसे हैं। हम कैसे जाएँ ? किन्तु हमारी यह प्यारी तूँबी है। इसे ही लेते जाओ। इसे भी स्नान कराते लाना।

युधिष्ठिर को कृष्ण का उपहार मिला स्नान कराने के लिए तो मानो कृष्ण ही मिल गये। बोले—महाराज, इसे जरूर स्नान कराएँगे और सब से पहले कराएँगे।

कृष्ण ने कहा—देखो भूल मत जाना।

युधिष्ठिर बोले—महाराज, यह तूँबी, तूँबी नहीं है। यह तो आप ही है। अत इसे सब से पहले और सभी तीर्थों में जरूर स्नान कराएँगे।

बेचारे युधिष्ठिर सब तीर्थ करने गये और भटक-भटक कर स्नान करके आ गये। कृष्ण का दरबार लगा था। कृष्ण सिंहासन पर विराजमान थे। तब सारी सभा के बीच युधिष्ठिर आदि आकर बैठ गये।

कृष्ण—स्नान कर आए ?

युधिष्ठिर—हाँ, महाराज, सब गंगा यमुना आदि तीर्थों में स्नान कर आए।

कृष्ण—पाप धो आये ? कहीं लगा तो नहीं रहा ?

युधि०—आपकी कृपा से सब धो डाले। और गए तो इसलिए ही थे, फिर बचा कर क्यों लाते ?

कृष्ण–ठीक। हमारी तूँबी को भी स्नान कराया या नहीं ?

युधि०—महाराज, तूँबी को कैसे न कराते ? सब तीर्थों में उसे पहले स्नान कराया और बाद में हमने किया।

अब कृष्ण ने अपनी तूँबी हाथ में लेकर कहा—हमारी तूँबी ६८ तीर्थों में स्नान करके आई है। अब यह पवित्र हो गई है। तुम सभी सभासद् तीर्थ स्नान करने नहीं गए हो तो इसे पीस कर चूर्ण बना लो। थोड़ा-थोड़ा चूर्ण सभी लोग खा लो। तुम सब भी पवित्र हो जाओगे।

चूर्ण तैयार हो गया और सब को थोड़ा-थोड़ा दे दिया गया। कृष्ण महाराज की आज्ञा थी सो सभी ने थोड़ा थोड़ा अपने मुँह में डाला। पर वह तो कड़वा जहर था। सब के रंग रूप बदल गए। मुख विषण्ण, नाक–भौंह बुरी तरह तन कर रह गए। बहुतों को उलटी भी हो गई। कोई बाहर जाकर थू-थू करके थूक आए।

सभा की यह रंगत बदली देखकर कृष्ण ने कहा—यह क्या कर रहे हो ? तूंबी इतनी पवित्र होकर आई और तुम इसका अपमान कर रहे हो ? इसे तो बड़े प्रेम से, गहरी श्रद्धा से ग्रहण करना चाहिए था।

सब ने कहा—महाराज, बात तो ठीक है मगर कड़वी बहुत है। निगली ही नहीं जाती।

कृष्ण बोले—तुम झूठ बोलते हो। इसका कड़वापन तो गंगा मैया में ही निकल गया। फिर भी यह कड़वी कैसे रह गई ? क्यों युधिष्ठिर, तुमने कहा न कि इसे तीर्थों में स्नान करा दिया है ? फिर यह कड़वी कैसे रह गई ?

युधिष्ठिर सोच-विचार में पड गए। मन ही मन कहने लगे यह तो इतने बडे दार्शनिक और विचारक हैं, फिर वह बोले—'महाराज, इसको कई बार डुबकियाँ लगवाई हैं। कड़वापन के लिए तो बात यह है कि वह इसके बाहर नहीं लगा है। वह तो भीतर है। रगरग में समाया है। वह कैसे दूर हो सकता है?

कृष्ण—अच्छा यह बात है! कड़वापन बाहर नहीं था, इसके भीतर था!

युधि०—जी हाँ महाराज, वह इसके भीतर था और पानी भीतर नहीं जा सकता था। वह बाहर ही रहा।

कृष्ण—युधिष्ठिर, यह तो बताओ कि तुम्हे पाप भीतर लगा था? या बाहर ही बाहर लगा था? पाप शरीर के बाहर लगता है या आत्मा में लगता है? और गगा में किसको स्नान कराया—शरीर को या आत्मा को? तूंबी का कड़वापन बाहर से स्नान कराने पर नहीं गया, क्योंकि वह अन्दर था, तो तुम्हारी वासनाओं का, बुराइयों का मैल आत्मा में लगा था। जब आत्मा में लगा था तो क्या तुमने आत्मा को बाहर निकाल कर तीर्थ जल में धोया है?

युधिष्ठिर— आत्मा को कैसे धोते? हम तो शरीर को धो आए है।

कृष्ण—युधिष्ठिर, देखो, जहाँ तुम्हें स्नान करना था, वहाँ नहीं किया। शरीर के स्नान के लिए क्यों भटकते फिरे? वह तो यहाँ भी कर सकते थे। कहा है —

> आत्मा-नदी संयम-तोयपूर्णा, सत्यावहा शील-तटा दयोर्मि ।
> तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र ! न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा ॥

यह आत्मा नदी है इसमें संयम का जल भरा है। दया की तरंगें उठ रही है सत्य का प्रवाह बह रहा है। इसके ब्रह्मचर्य

रूपी तट बडे मजबूत हैं। इसमें तुम्हें स्नान करना चाहिए। अहिंसा और सत्य की गगा में स्नान करने से ही आत्मा की शुद्धि होती है। शरीर पर पानी ढार लेने से शरीर की सफाई हो सकती है, पर आत्मा स्वच्छ नहीं हो सकती।

जो बात वहाँ पाण्डुपुत्र के लिए कही गई है, वह सभी साधकों के लिए समान है। इसे हल करना चाहिए। पर हल कहाँ करना चाहते हो? क्या गली के नुकड पर बैठ कर हल करना है? या जगलों में भटक कर? नहीं, वह हल तो जीवन के अन्दर ही मिल सकता हैं। शुद्धि की साधना भी अन्दर ही है और शुद्धि भी अन्दर ही होती है। सब से बडा देवता अन्दर बैठा है। दुनिया भर के देवता कहीं पर हों, किन्तु सबसे बडा आत्म-देवता अन्दर ही है। इसी देवता की उपासना में तल्लीन होकर, इसके चरणों मे लोट कर जब तक पाप नहीं धोओगे, तब तक बाहर के देवताओं से कुछ भी नहीं होना है।

पाप धोने का सही मार्ग

प्रतिक्रमण: मिच्छामि दुक्कडं

'मिच्छामि दुक्कडं' जैन संस्कृति की बहुत महत्त्वपूर्ण देन है। जैन-धर्म का समस्त साधना साहित्य मिच्छामि दुक्कडं से भरा हुआ है। साधक अपनी भूल के लिए मिच्छामि दुक्कड़ देता है और पाप-मल को धोकर पवित्र बन जाता है। भूल हो जाने के बाद, यदि साधक मिच्छामि दुक्कड़ं दे लेता है, तो वह आराधक कहा जाता है। और यदि अभिमानवश अपनी भूल नहीं स्वीकार करता एव मिच्छामि दुक्कड़ नहीं करता, तो वह धर्म का विराधक रहता है, आराधक नहीं।

मन में किसी के प्रति द्वेष आए तो मिच्छामि दुक्कड़ं कहना चाहिए। लोभ या छल की दुर्भावना आए तो मिच्छामि दुक्कड़ कहना चाहिए। विचार में कालिमा हो, वाणी में मलिनता हो, आचरण में कलुषता हो, अर्थात् खाने में, पीने में, जाने में, आने में, बैठने में, उठने में, सोने में, बोलने में, सोचने में, कहीं भी भूल हो तो जन-धर्म का साधक मिच्छामि दुक्कड़ का आश्रय लेता है उसके यहाँ "मिच्छामि दुक्कड़" कहना, प्रतिक्रमण रूप प्रायश्चित है। यह प्रायश्चित साधना को पवित्र, निर्मल, स्वच्छ तथा शुद्ध बनाता है।

पाठक विचार करते होंगे कि क्या मिच्छामि दुक्कड़ कहने से ही सब पाप धुल जाते हैं? यह क्या कोई छूमन्तर है? जो मिच्छामि दुक्कड़ं कहा और सब पाप हवा हो गए। समाधान है कि केवल कथन मात्र से ही पाप दूर हो जाते हों, यह बात नहीं है। शब्द में स्वय कोई पवित्र अथवा अपवित्र करने की शक्ति नहीं है। वह जड है, क्या किसी को पवित्र बनाएगा। परन्तु शब्द के पीछे रहा हुआ मन का भाव ही सब से बड़ी शक्ति है। वाणी को मन का प्रतीक माना गया है। अतः 'मिच्छामि दुक्कड़' महावाक्य के पीछे जो आन्तरिक पश्चात्ताप का भाव रहा हुआ होता है, उसी में शक्ति है और वह बहुत बड़ी शक्ति है। पश्चात्ताप का दिव्य निर्झर आत्मा पर लगे पाप मल को बहाकर साफ कर देता है। यदि साधक परपरागत निष्प्राण रूढ़ि के फेर में न पड़ कर, सच्चे मन से पापाचार के प्रति घृणा व्यक्त करे, पश्चात्ताप करे, तो वह पाप कालिमा को सहज ही धोकर साफ कर सकता है। आखिर अपराध के लिए दिया जाने वाला तपश्चरण या अन्य किसी तरह का दण्ड भी तो मूल में पश्चात्ताप ही है। यदि मन में पश्चात्ताप न हो, और कठोर से कठोर प्रायश्चित बाहर में ग्रहण कर भी लिया जाय,

तो क्या आत्म-शुद्धि हो सकती है? हर्गिज नहीं। दण्ड का उद्देश्य देह दण्ड नहीं है, अपितु मन का दण्ड है। और मन का दण्ड क्या है, अपनी भूल स्वीकार कर लेना, पश्चात्ताप कर लेना। यही कारण है कि जैन या अन्य भारतीय साहित्य में साधना के क्षेत्र में पाप के लिए प्रायश्चित का विधान किया है, दण्ड का नहीं। दण्ड प्राय: बाहर अटक कर रह जाता है, अंतरंग में प्रवेश नहीं कर पाता, पश्चात्ताप का झरना नहीं बहाता। दण्ड मे दण्डता की ओर से बलात्कार की प्रधानता होती है। और प्रायश्चित साधक की स्वयं अपनी तैयारी है। वह अन्तर्हृदय में अपने स्वयं के पाप को शोधन करने के लिए उल्लास है। अत: वह अपराधी को पश्चात्ताप के द्वारा भावुक बनाता है, विनीत बनाता है, सरल एवं निष्कपट बनाता है, दण्ड पाने वाले के समान धृष्ट नहीं। हाँ, तो मिच्छामि दुक्कड़ं भी एक प्रायश्चित है। इसके मूल में पश्चात्ताप की भावना है, यदि वह सच्चे मन से हो तो?

ऊपर के लेखन मे बार-बार सच्चे मन और पश्चातताप की भावना का उल्लेख किया गया है। उसका कारण यह है कि आजकल जैनों का 'मिच्छामि दुक्कड' काफी बदनाम हो चुका है। आज के साधकों को साधना के लिए, आत्म शुद्धि के लिए तैयारी तो होती ही नहीं है। प्रतिक्रमण का मूल आशय समझा तो जाता नहीं है। अथवा समझ कर भी नैतिक दुर्बलता के कारण उस विकास तक नहीं पहुंचा जाता है। अत: वह लोक रुढ़ि के कारण प्रतिक्रमण तो करता है, मिच्छामि दुक्कड भी देता है, परंतु फिर उसी पाप को करता रहता है, उससे निवृत नहीं होता है। पाप करना, और मिच्छामि दुक्कडं देना, फिर पाप करना और फिर मिच्छामि दुक्कड देना, यह सिलसिला जीवन

के अंत तक चलता रहता है, परंतु इससे आत्म शुद्धि के पथ पर जरा भी प्रगति नहीं हो पाती।

जैन धर्म इस प्रकार की बाह्य साधना को द्रव्यसाधना कहता है। वह केवल वाणी से, 'मिच्छामि दुक्कडं' कहना, और फिर उस पाप को करते रहना, ठीक नहीं समझता है। मन के मैल को साफ किए बिना और पुनः उस पाप को नहीं करने का दृढ़ निश्चय किए बिना, खाली ऊपर ऊपर से 'मिच्छामि दुक्कडं' कुछ अर्थ नहीं रखता है। एक और दूसरों का दिल दुखाने का काम करते रहें, तो यह साधना का मजाक नहीं तो और क्या है ? यह माया है, साधना नहीं। इस प्रकार की 'मिच्छामि दुक्कड' पर जैन धर्म ने कठोर आलोचना की है। इसके लिए आवश्यक चूर्णि में आचार्य जिनदास कुम्हार के पात्र फोड़ने वाले शिष्य का उदाहरण देते हैं।

एक बार एक आचार्य किसी गांव में पहुँचे और कुम्हार के पड़ौस में ठहरे। आचार्य का एक छोटा शिष्य बड़ी चंचल प्रकृति का खिलाड़ी व्यक्ति था। कुम्हार ज्योंही चाक पर से पात्र उतार कर भूमि पर रक्खे, और वह शिष्य कंकर का निशाना मार कर उसे तोड़ दे। कुम्हार ने शिकायत की तो मिच्छामि दुक्कडं कहने लगा परंतु वह रुका नहीं, बार बार मिच्छामि दुक्कडं देता रहा, और पात्र तोड़ता रहा। आखीर कुम्हार को आवेश आ गया, उसने कंकर उठाकर क्षुल्लक के कान पर रख ज्योंही जोर से दबाया तो वह पीड़ा से तिलमिला उठा। उसने कहा, अरे यह क्या कर रहा है। कुम्हार ने कहा—"मिच्छामि दुक्कड़। दबाता जाता और मिच्छामि दुक्कड कहता जाता, अन्ततः क्षुल्लक को अपने मिच्छामि दुक्कड़ की भूल स्वीकार करनी पड़ी।

जब तक पश्चात्ताप न हो, तब तक केवल वाणी की 'मिच्छामि दुक्कड' कुम्हार की मिच्छामि दुक्कड़ है। यह

मिच्छामि दुक्कडं आत्मा को शुद्ध तो क्या, प्रत्युत और अधिक अशुद्ध बना देती है। यह मार्ग पाप के प्रतिकार का नहीं, अपितु पाप के प्रचार का है। देखिए, आचार्य भद्रबाहु, इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं:—

> जइ य पडिक्कमियव्व, अवस्स काऊण पावय कम्मं।
> तं चेव न कायव्वं, तो होई पए पडिक्कतो॥

पाप कर्म करने के पश्चात् जब प्रतिक्रमण अवश्य करणीय है, तब सरल मार्ग तो यह है कि वह पाप कर्म किया ही न जाय। आध्यात्मिक दृष्टि से वस्तुतः यही सच्चा प्रतिक्रमण है।

"आवश्यक से लौकिक जीवन की शुद्धि"

यह ठीक है कि आवश्यक क्रिया लोकोत्तर साधना है। वह हमारे आध्यात्मिक क्षेत्र की चीज है। उसके द्वारा हम आत्मा से परमात्मा के पद की ओर अग्रसर होते हैं। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से भी आवश्यक की कुछ कम महत्ता नहीं है। यह हमारे साधारण मानव-जीवन मे कदम कदम पर सहायक होने वाली साधना है।

अन्य प्राणियों के जीवन की अपेक्षा मानव-जीवन की महत्ता और श्रेष्ठता जिन तत्त्वों पर अवलम्बित है, वे तत्त्व लोक भाषा मे इस प्रकार हैं:—

(१) समभाव अर्थात् शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और चरित्र का सम्मिश्रण।

(२) जीवन को विशुद्ध बनाने के लिए सर्वोत्कृष्ट जीवन महापुरुषों का आदर्श।

(३) गुणवानो का बहुमान एव विनय करना।

(४) कर्त्तव्य की स्मृति तथा कर्त्तव्य पालन में हो जाने वाली भूलों का निष्कपट भाव से संशोधन करना।

(५) ध्यान का अभ्यास करके प्रत्येक वस्तु के स्वरूप को यथार्थ रीति से समझने के लिए विवेक शक्ति का विकास करना।

(६) त्यागवृत्ति द्वारा सन्तोष तथा सहनशीलता को बढ़ाना। भोग ही जीवन का उद्देश्य नहीं है, त्यागमय उदारता ही मानव की महत्ता बढ़ाती है। जितना त्याग उतनी ही शान्ति।

उपर्युक्त तत्त्वों के आधार पर ही आवश्यक साधना का महल खड़ा है। यदि मनुष्य ठीक-ठीक रूप से आवश्यक साधना को अपनाते रहे तो फिर कभी भी उनका नैतिक जीवन पतित नहीं हो सकता, उनकी प्रतिष्ठा भंग नहीं हो सकती, विकट से विकट प्रसंग पर भी वे अपना लक्ष्य नहीं भूल सकते।

मानव-स्वास्थ्य की आधार शिला मुख्यतया मानसिक प्रसन्नता पर है। यद्यपि दुनियाँ में अन्य भी अनेक ऐसे साधन हैं, जिनके द्वारा कुछ न कुछ मानसिक प्रसन्नता का स्रोत पूर्वोक्त तत्त्वों के आधार पर निर्मित आवश्यक ही है। बाह्य जड पदार्थों पर आश्रित प्रसन्नता क्षणिक होती है। असली स्थायी प्रसन्नता अपने अन्दर ही है, और वह अन्दर की साधना के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

अब रहा मनुष्य का कौटुम्बिक अर्थात् पारिवारिक सुख। कुटुम्ब को सुखी बनाने के लिए मनुष्य को नीति प्रधान जीवन बनाना आवश्यक है। इसलिए छोटे-बडे सब एक दूसरे के प्रति यथोचित विनय, आज्ञा-पालन, नियम-शीलता, अपनी भूलों को स्वीकार करना एवं अप्रमत्त रहना जरुरी है। ये सब गुण आवश्यक साधना के द्वारा सहज ही में प्राप्त किये जा सकते हैं।

सामाजिक दृष्टि से भी आवश्यक क्रिया उपादेय है। समाज को सुव्यवस्थित रखने के लिये विचारशीलता, प्रामा-

णिकता, दीर्घदर्शिता और गम्भीरता आदि गुणों का जीवन में रहना आवश्यक है। अस्तु, क्या शास्त्रीय और क्या व्यावहारिक दोनो दृष्टियों से आवश्यक क्रिया का यथोचित अनुष्ठान करना, अतीव लाभप्रद है।

सत्ता और प्रलोभन

(किशोरलाल घ० मशरूवाला)

"मनुष्य को अगर सत्ता और प्रतिष्ठा के लाभ ही मिलते हों, तो भी वह उसके प्रलोभन और चरित्र की शिथिलता के लिए काफी होते हैं। फिर यदि इनके साथ उसे कई तरह के आर्थिक लाभ और सुख-सुविधाएँ भी मिलें, तब तो कहना ही क्या? जाँच करने पर हम देखेंगे कि हमारी हर चुनी हुई सभा के सभासद होने से या ऊँची नौकरी पाने से हमें कई किस्म के आर्थिक लाभ और सुख सुविधाएँ मिलती हैं। किसी भी जाहिर कमेटी का सभासद होने वाले को या बड़े सरकारी अधिकारी को न तो गाँठ से पैसे खरचने पड़ते हैं, न असुविधाएँ भोगनी पड़ती हैं। सौ में से एक दो आदमी ऐसे होगे जिनकी निजी कमाई पहले से कुछ घट जाती होगी, मगर ज्यादातर लोगों के लिए तो यह फायदेमन्द रोजगार ही बनता है। ऐसी हालत में अगर सारी सार्वजनिक संस्थायें गुटबन्दी के अखाडे बनें और शासन रिश्वत-खोरी और सिफारिशी लोगों के हाथ मे चला जाय, तो इसमें आश्चर्य किस बात का?"

हम भी तो जेल गये हैं !

(ले० श्री "मनहर")

(१)

ये आज मिनिस्टर जितने, दिखते है छोटे-मोटे ।
कुछ इनमें से हैं खोटे, कुछ बे पेंद के लोटे ॥
पर जा-जाकर ये जेले—शासक औ' शेर हुये हैं ।
हम भी तो जेल गये हैं ॥

(२)

जो जमींदार थे कल तक, जनता को रहे सताते ।
वोटिंग में रुपये देकर, जन प्रति निधि कहलाते ॥
शोषक से बनते शासक—इनके नाम नये हैं ॥
हम भी तो जेल गये हैं ॥

(३)

ये गये एक या दो बार, हम तो बार जेल गये हैं ।
जेलर के मोटे डंडे—भी हंस हंस झेल गये हैं ॥
ये 'ए' क्लास के बंदी—हम 'सी' में रखे गये हैं ।
हम भी तो जेल गये हैं ॥

(४)

आजादी के लाने को, हमने भी डाके डाले ।
सिल्कन को दूर हटाकर—खादी के सूट संभाले ॥
सर से पैरों तक खादी, खादी से रंगे गये हैं ।
हम भी तो जेल गये हैं ॥

(५)

ये मंत्री खाते रिस्वत, सौ दो सौ नहीं हजारों ।
कोटो का कूपन देकर—लेते नोट हजारों ॥
हम छूते एक न पैसा—लाखों का दान दिये हैं ।
हम भी तो जेल गये हैं ॥

(६)

हम तपे तपाये नेता, त्यागी हैं, परहितकारी।
अब की हम को चुन देना—तकलीफ भारी॥
जनता की सेवा खातीर, हम भी तैयार हुये हैं।
हम भी जेल गये हैं॥

(७)

जनता को कपड़ा खाना, हम पूरा-पूरा देंगे।
बेकार घूमने जितने—सबको सुख से रक्खेंगे,
जनता के लिये खटेंगे—जनता के लिये जिये हैं।
हम भी तो जेल गये हैं॥

(८)

मत भूल कभी तुम जाना, हम सा नेता न मिलेगा।
हमको चुनने पर सब के-किस्मत का फूल खिलेगा॥
हम तुमसे वादा करते—हम लीडर नहीं नये हैं।
हम भी तो जेल गये हैं॥

टोप और टोपी

(श्री मोहनलाल महतो वियोगी पटना 'हुँकार' से)

यह टोपी त्याग, तपस्या, बलिदान सेवा और महानता की असल धवल निशानी बन गई। टोप को देखकर मन में जिस तरह झुंझलाहट, भय और घृणा का सचार होता था, उसी तरह 'गाँधी टोपी' देखकर प्रेम, अपनापन, निर्भरता और उच्च-भावना की शाँत स्निग्ध हलचल रगरग मे पैदा हो जाती थी। गाँधी-टोपी हृदय की स्वच्छता और पवित्रता की शानदार निशानी मानी गई और टोप ने तलवार के सामने नहीं, गणों के सामने घुटने टेक दिये। टोपी रह गई, टोप भाग खड़ा हुआ।

दिल्ली के गवर्नमेंट हाउस से लेकर 'कन्ट्रोल आफिस' तक सर्वत्र टोपी ही टोपी नजर आने लगी! टोप तो कभी-कभी 'रोमन कैथोलिक' गिर्जे के आस-पास ही हम देखने लगे, वह भी रवि-वार को ही, रोज-रोज नहीं। समझा आपने? टोप जोरजुल्म का प्रतिनिधित्व करता था और टोपी जनता की पवित्रतम और अत्यन्त ऊँची भावनाओं की निशानी थी। त्याग और तपस्या के प्रभाव से तेजोमयी गाँधी-टोपी के सामने टोप की हस्ती ही क्या थी!

इसके बाद एक अँगड़ाई लेकर युग ने पलटा खाया और वह भी बहुत तेजी से। एक घटना का वर्णन करूँगा। मैं पटना जा रहा था, धुली हुई और इस्त्री की हुई ऐसी चमकदार टोपी मेरे सिर पर थी कि उसकी चमक से मेरी स्त्री तक को यह स्वी-कार कर लेना पड़ा कि—"इस पचास साल की उम्र में भी मैं दूल्हे की तरह फबता हूँ।"

अब गाड़ी की कहानी सुनिये। मेरे सामने के बर्थ पर दो-तीन छटे हुए रसिया बैठे थे या दिलजले थे, कह नहीं सकता। हाँ, तो मुँहफट अवश्य थे।

जैसे ही मैं पूरी ऊचाई में तना हुआ और ऐंठा हुआ उस डब्बे में घुसा वैसे ही एक आवाज कान में आई—

'बाप रे बाप! ऐसी भयकर टोपी!'

यह 'बाप रे बाप' बाण की तरह मेरे कलेजे को छेदकर उस पार निकल गया। फिर किसी ने दबी जुबान से कहा—

'इन टोपी वालों ने देश को कौडी का तीन बना दिया।'

दूसरी आवाज भी आई—भगवान् को एक बार फिर इन्हीं लोगो से धरती की रक्षा करने के लिए अवतार ग्रहण करना पड़ेगा।

तीसरी आवाज आई—

जै जै जै हनुमान गुसाईं । कृपा करो गुरुदेव की नाईं ॥
भूत, पिशाच निकट नहीं आवै । महावीर जब नाम सुनावै ॥

'हनुमान चालीसा' का पाठ सुनकर मैं बर्थ पर बैठ गया। मैं कलि-काल को धिक्कारने लगा। यदि सत्ययुग होता, तो मैं शाप देकर इन नालायकों को खाक में मिला देता, किन्तु अब द्विजों मे यह ताक़त ही कहाँ रही ?

मै सोचने लगा—गाँधी-टोपी की यह दशा कैसे हो गई ? टोप तो जलियाँ वाले बाग के मासूमो के खून से तरबतर होकर भी अपनी शान की ऊँचाई से नीचे नहीं गिरा और बापू की कठोर तपस्या का फल प्राप्त करके भी यह गाँधी-टोपी इतना घिनौना बन गई। ? ऐ—दोष किसका है ? इसी समय टी० टी० आई० का शुभागमन हुआ। आज कपार्टमेन्ट में घुसते ही उनकी निगाह मेरी टोपी पर पड़ी, जो 'जाह्नवीफेनलेखेव' चमक रही थी। वे सीधे मेरे पास आये और अपनी गंधी हथेली फैला कर खड़े हो गये। मैने देखा है, गाँधी-टोपी देखते ही टी० टी० आई० यह मान लेते हैं कि 'ऐसी टोपी वाले बिना टिकट के ही प्रायः यात्रा करते हैं। पहले इनसे ही टिकट की माँग करना उचित है।' बात समझ मे आ गई। कई बार मैंने देखा है कि गाँधी-टोपी वाले टिकट माँगने पर कह देते हैं—'अगले स्टेशन पर आइएगा।'

यह निमन्त्रण प्रेमालाप करने के लिए नही दिया जाता, यह तो जाहिर ही है। टी० टी० आई० से प्रेमालाप करने से लाभ !

मैं आज भी देखता हूँ, सरकारी ओफिसर टोप का पिंड नहीं छोड़ते। अदालत के सभी हाकिम टोप लगाकर ही शान से आते हैं और बड़े-बडे अधिकारियों का भी यही हाल है। ऐसा क्यों होता है ? जनता और ओफिसर यह अच्छी तरह समझते

हैं कि गाँधी टोपी बहुत जल्दी मैली हो जाती है। धोबी पैसे अधिक लेते हैं। एक टोप दो-चार साल तक काम देता है—मैं ऐसा ही समझता हूँ, शायद इसके भीतर कुछ रहस्य भी हो, जिसका मुझे अभी तक ज्ञान नहीं है।

मैंने एक उच्च अधिकारी से पूछा—'आप अचकन, पाजामा और गाँधी टोपी से अलकृत होकर स्वतन्त्र देश के न्यायासन पर क्यों नहीं विराजते ?'

उन्होंने कहा—'यदि न्यायासन की प्रतिष्ठा और शान को कायम रखना है तो मुझे ऐसी राय मत दीजिए। मैं गाँधी-टोपी का आदर करता हूँ, किन्तु 'उन्होंने' इसे कहीं का भी नहीं रहने दिया, जो इसी के बल पर आज देश को बन्दर-नाच नचाया करते हैं। एक 'नीरो' ने तो बर्बरता के इतिहास मे चार चाँद लगा दिये और आपके देश में 'नीरो' को भी लज्जित करने वाले कितने हैं, उनकी गणना इसी टोपी के आधार पर होनी चाहिये।'

मेरी बोलती बन्द हो गई!

टोप आज भी अपने पूर्व गौरव की उच्च चूड़ा पर चमक रहा है, किन्तु बापू के नाम पर अपना परिचय देने वाली इस गाँधी-टोपी का तार तार बिखर गया!

मैंने एक दिन अपने कपड़ों का बक्स खोला! देखा कि दो-तीन दर्जन गाँधी-टोपियाँ, धुली-धुलाई पड़ी हैं। सोच रहा हूँ, इन्हे बेचकर एक दिन मित्रों के साथ 'सरगम' देख आऊँ। इस फिल्म की बडी तारीफ मैंने सुनी है। जो देखता है, वही थिरक उठता है। यदि ऐसा मैं करूँ, तो मुझे विश्वास है कि मेरी निन्दा कोई नहीं करेगा। मैं शीघ्र ही कबाड़ी-बाजार की ओर जाऊँगा, जहाँ पुराने कपडे खरीदे और वेचे जाते हैं। कुछ साथी खोज रहा हूँ।

युद्ध और मानवता

"जैन गृहस्थ और अहिंसा"

(श्री उपाध्याय अमरचन्दजी म० के 'अहिंसा-दर्शन' में से)

श्रावक इनमें से सिर्फ संकल्पी हिंसा का त्याग करता है। मारने की भावना से जो निरपराध की हिंसा की जाती है, उसी का वह त्याग कर पाता है। वह आरम्भी हिंसा का सर्वथा त्याग नहीं कर सकता, क्योंकि उसे उदर-पूर्ति आदि के लिये आरम्भ करना पड़ता है और उसमें हिंसा होना अनिवार्य है। यही बात उद्योगी हिंसा के सम्बन्ध में भी है। आखिरकार कमाने के लिये जो धन्धे हैं और उन्हे जब किया जायगा तो हिंसा हो ही जायगी। इस कारण श्रावक उसका भी त्यागी नहीं होता। रही विरोधी हिंसा सो श्रावक उसका भी त्यागी नहीं होता। आखिर उसे अपने शत्रुओं से अपना, अपने परिवार की, अपने देश की, जिसकी रक्षा का उत्तरदायित्व उस पर है, यथावसर रक्षा करनी होती है।

तात्पर्य यह है कि स्थूल हिंसा का त्याग करते समय श्रावक संकल्पी हिंसा का त्याग करेगा। अर्थात् वह बिना प्रयोजन खून से हाथ नहीं भरेगा—मारने के लिये ही किसी को नहीं मारेगा, धर्म के नाम पर हिंसा नहीं करेगा, और भी इसी प्रकार की हिंसा नहीं करेगा।

रस्किन ने, जो पश्चिम का एक बड़ा दार्शनिक था, उपदेशक, वकील आदि हरेक धन्धे की आलोचना की है। उसकी पुस्तक का 'सर्वोदय' नाम से महात्मा गाँधी ने अनुवाद किया है। उसमें रस्किन कहता है—सिपाही का आदर्श यह है कि वह स्वयं किसी को मारने नहीं जाता, किन्तु देश की रक्षा के लिए जब खड़ा होता है तब उससे कत्ल भी हो जाता है और खुद भी कत्ल हो जाता है।

अभिप्राय यह है कि कत्ल करना उसकी मुख्य दृष्टि नहीं है, बल्कि उसका प्रधान लक्ष्य रक्षा करना है। और रक्षा करते-करते सम्भव है वह दूसरे को मार दे या खुद भी मर जाय।

कुछ लोग कहते है कि जैन-धर्म की अहिंसा पंगु है, और उसने देश को गुलाम बना दिया और देश में बिगाड किया। इस प्रकार सारी बुराइयों का उत्तरदायित्व जैन-धर्म पर डाला जाता है। मगर जैन-धर्म में प्रतिपादित अहिंसा के वर्गीकरण को उसकी विभिन्न श्रेणियों और भूमिकाओं को अगर गहराई के साथ सोचा जाए तो उन्हें ऐसा कहने का मौका नहीं मिलेगा। दुर्भाग्य से दूसरो ने तो क्या स्वयं जैनो ने भी जैन-धर्म की अहिंसा को समझने मे भूल की है उसे समझने का पूरी तरह प्रयत्न नहीं किया है। क्योंकि समझा नहीं है, तभी तो यह गड़बड़ पैदा हुई है।

रामचन्द्रजी की पत्नी सीता चुरा ली गई। रावण उस पर अत्याचार कर रहा था। सतीत्व को भंग करने की तैयारी हो रही थी। तब राम ने लंका पर आक्रमण करने के लिए सेना तैयार की और युद्ध आरम्भ करने से पहले अगद आदि के द्वारा समझौते का सन्देश भेजा। रावण समझौता करने को तैयार नहीं हुआ। सीता को लौटाना उसने स्वीकार नहीं किया। ऐसी परिस्थिति मे राम जैन धर्म से पूछें कि मैं क्या करूँ? एक तरफ सीता की रक्षा का प्रश्न है, गुण्डे के आक्रमण पर प्रत्याक्रमण का प्रश्न है, अन्याय, अत्याचार और बलात्कार के प्रतीकार का प्रश्न है और दूसरी तरफ युद्ध का प्रश्न है। आप समझते हैं कि युद्ध तो युद्ध ही है और युद्ध होगा तो हजारों माताएँ पुत्रहीना हो जाएँगी, हजारों पत्नियाँ अपने पति गवाँ बैठेंगी, और हजारों पुत्र, पिताओं से हाथ धो बैठेंगे। हजारो घरो के दीपक बुझ जाएँगे, देश के कौने-कौने में रोना-धोना मच जाएगा। और इस

प्रकार कुछ के लिये तो सारी जिन्दगी के लिये रोना शुरु हो जाएगा। हाँ, तो ऐसी स्थिति में राम को क्या करना चाहिए ? यही प्रश्न जैन-धर्म को हल करना है। इसी दुविधा का समाधान जैन-धर्म को तलाश करना है।

हमारे कुछ साथी कहते हैं कि ऐसे मौके पर मौन रहो। किन्तु राम कहते हैं—मैं दुविधा मे हूँ और निर्णय करना चाहता हूँ कि क्या करूँ ? और जिससे वे पूछते हैं, व्यवस्था माँगते हैं, वही मौन पकड़ ले तो मैं पूछता हूँ आपसे कि मौन पकड़ कर क्या किसी समाज की उलझी हुई समस्याओं का हल निकाला जा सकता है। और ऐसे विकट और नाजुक प्रसंग पर जो धर्म मौन पकड़ लेता हो वह क्या जीवनव्यापी धर्म कहला सकता है ? क्या वह मौन उसकी दुर्बलता का द्योतक नहीं होगा। उस मौन से उसकी क्षमता में बट्टा नहीं लगाता। क्या वह उस धर्म का लंगड़ापन सिद्ध नही करेगा ? ऐसे अवसर पर व्यक्ति को उसका कर्त्तव्य सुझाने के लिए क्या किसी और धर्म की शरण में जाना चाहिए ? अगर जैन-धर्म जीवनव्यापी धर्म है, दुर्बल नहीं है, क्षमताशाली है, लगड़ा नहीं है और उसकी शरण में आने पर किसी दूसरे धर्म से भीख माँगने की आवश्यकता नहीं रहती तो वह मौन नहीं रहेगा। वह उचित कर्त्तव्य की सूचना देगा। और जहाँ तक मैंने जैन-धर्म को समझा है, वह सूचना अवश्य देता है।

तो जैन-धर्म क्या सूचना देता है ? एक तरफ घोर हिंसा है और दूसरी तरफ मात्र एक सीता की रक्षा है। रामचन्द्र सोचते हैं—मुझे क्या करना चाहिए। जो लोग यह समझते हैं कि जहाँ ज्यादा जीव मरते है, वहाँ ज्यादा हिंसा होती है उनके विचार से तो रामचन्द्र को चुप होकर किसी कौने में बैठ रह जाना चाहिये। क्योंकि युद्ध में बहुत जीवों की हिंसा होगी और

वे जीव भी एकेन्द्रिय नहीं, पंचेन्द्रिय होंगे और उनमें भी फिर मनुष्य। किन्तु जैन-धर्म ऐसा नहीं कहता। जैन-धर्म तो यह कहता है कि तुम सीता को बचाने के लिए जा रहे हो तो वहाँ एक सीता का ही प्रश्न नहीं है, बल्कि हजारों सीताओं का सवाल है। आज एक गुण्डा किसी सती पर अत्याचार करता है तो वह वास्तव में एक का ही प्रश्न नहीं है, किन्तु उनके पीछे हजारों-लाखों गुण्डों के अत्याचार का प्रश्न है। आज एक गुण्डे के अत्याचार को सिर झुकाकर सहन कर लिया जायगा तो कल सैंकड़ों और परसों हजारों गुण्डे सिर उठाएँगे और संसार में किसी सती की इज्जत-आबरू सही सलामत नहीं रह सकेगी। दुनिया में अत्याचार, अनाचार और बलात्कार का ऐसा दौरा शुरु हो जायगा कि जिसकी कोई हद ही नहीं होगी। फिर धर्म को स्थान कहाँ रह जायगा ?

अतएव राम के सामने एक सीता का प्रश्न नहीं था, हजारों माताओं का प्रश्न था। राम को अपने भोग-विलास के लिए एक नारी की आवश्यकता हो और उसके लिए हजारों के गले कटवाने पर उतारु हो रहे हों, सो बात नहीं है। इस स्थिति के लिये तो जैन-धर्म किसी भी तरह की स्वीकृति नहीं दे सकता। वासना की पूर्ति के लिए एक नारी की जीवित मूर्ति चाहिये तो हजारों मिल सकती है, फिर क्यों व्यर्थ ही आग्रहवश संहार के पथ पर अग्रसर हो रहे हो। राम के लिये यह प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। जैन रामायण मे वर्णन आता है कि रावण ने राम के पास संदेशा भेजा था कि एक सीता को रहने दो, मैं उस एक के बदले में कई हजार सुन्दर कुमारिकाएँ तुम्हारे लिए भेज दूंगा। तुम आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करो। मै आनन्द की सब सामग्री भी तुम्हें दे दूंगा। राज्य चाहिए तो राज्य भी दे दूंगा, मगर सीता को छोड़ दो। किन्तु उस समय राम के सामने भोग-

विलास का प्रश्न ही नहीं था। वे इस दृष्टि से सीता को पाने का प्रयत्न नहीं कर रहे थे। वे अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे थे। वे अत्याचार का प्रतिकार करने के लिए कटिबद्ध हुए थे। एक पत्नी और एक नारी के अपमान की रक्षा के लिए उन्होंने प्रण किया था कि प्राण देकर भी उसकी रक्षा करना है। यदि राम इस कर्त्तव्य का पालन करने के लिये चलते हैं तो यह गृहस्थ-जीवन की मर्यादा का पालन है। और उक्त मर्यादा का पालन करते समय, जैन-धर्म, हिंसा या अहिंसा की दुहाई देकर किसी का हाथ नहीं पकड़ता, मौन नहीं साधता।

राम ने रावण के साथ युद्ध किया, मगर युद्ध करना उनका उद्देश्य नहीं था। सीता को प्राप्त करना उनका उद्देश्य था। वे अपने कर्त्तव्य की प्रेरणा की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। ऐसी स्थिति में युद्ध का उत्तरदायित्व राम पर पड़ा या रावण पर। रावण स्वयं अत्याचार करने को तैयार होता है और उसके सामने माताओं और बहिनों की जिन्दगी का कोई मूल्य नहीं है। उधर राम कहते हैं—मुझे कुछ नहीं चाहिए। न पृथ्वी, न सुन्दर ललनाएँ और न तेरी सोने की लंका का एक भी माशा सोना चाहिए। मुझे मेरी सीता लौटा दे। जब यह बात नहीं हुई तो युद्ध होता है। स्पष्ट है कि राम ने अत्याचार से सती और सतीत्व की रक्षा के लिए युद्ध किया था। तो जैन-धर्म कर्त्तव्य से-युद्ध से रामचन्द्र को नहीं रोकता है। अहिंसावादी जैन-धर्म अत्याचारी को न्यायोचित्त दण्ड देने का अधिकार, गृहस्थ को देता है। अभिप्राय यह है कि जो अन्यायी हो, अत्याचारी हो, विरोधी हो, केवल मानसिक विरोधी नहीं, वास्तविक विरोधी हो, समाज का द्रोही हो उसे यथोचित्त दण्ड देने का अधिकार श्रावक रखता है। पर वह वहाँ राग-द्वेष की भावना नहीं, अपितु कर्त्तव्य भावना रखता है। यदि वह सोचता है कि

शत्रु का भी कल्याण हो, संघ और समाज का भी भला हो तो वहाँ भी, उस अंश में अहिंसा की सुगन्ध आती है। शत्रु पर हित बुद्धि रखते हुए उसे होश में लाने के लिए दण्ड दिया जा सकता है। यह कोई अटपटी बात नहीं है। यह तो अहिंसक साधक की सुन्दर जीवन कला है।

मुझे उत्तरप्रदेश और पंजाब में घूमना पड़ा है। वहाँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वालों की चर्चाएँ ज्यादा होती है। कृष्ण को युद्ध का देवता माना जाता है। अर्थात् कृष्ण ने युद्ध का बिगुल बजा दिया और संहार हो गया। अतः हमें जीवन के लिये कृष्ण का ही आचार लेना है, ऐसा कहते हुए सुनाते हैं। और अनेक बार इस प्रसंग को लेकर जैन धर्म और उसकी अहिंसा पर बहुत भद्दी छींटा-कसी भी की जाती है। जब मेरा उनसे वास्ता पड़ा तो मैंने कहा—आपने कृष्ण के मार्ग को ठीक-ठीक नहीं समझा है और उनसे कुछ नहीं सीखा है। कृष्ण का मार्ग तो जैन-धर्म का ही एक आंशिक रूप है। आप जब कृष्ण के जीवन पर चलते हैं, तो जैन-धर्म पर चलते हैं और जब जैन-धर्म पर चलते हैं तो कृष्ण के मार्ग पर चलते हैं। महाभारत युद्ध होने से पहले जब पाँचों पाण्डव द्वारिका में आ जाते हैं तो दुर्योधन आदि को समझाने के लिये पहले पुरोहित भेजा जाता है। और जब उससे कामयाबी नहीं होती है तो उसके बाद कृष्ण स्वयं शान्तिदूत का कार्य करने को तैयार होते हैं। कृष्ण क्या साधारण व्यक्ति हैं? वे उस युग के, उस कर्म-क्षेत्र में सब से बड़े कर्मयोगी थे और सब से बड़े सम्राट् थे। वे स्वयं दूत बन कर दुर्योधन की सभा में जाते हैं।

आपसे काम पड़ जाय तो कहेंगे—हमें क्या पड़ी है? हम क्यों अपनी नाक छोटी करवाएँ? यों साधारण आदमी की नाक पर भी सिकुड़न आ जाती है।

मगर कृष्ण ने अपनी मान-मर्यादा की कोई परवाह नहीं की, अपनी प्रतिष्ठा का कुछ भी विचार नहीं किया और दूत बनकर दुर्योधन के पास चले। दुर्योधन की सभा में पहुँच कर उन्होंने जो भाषण दिया वह संसार के भाषणो में अपना महत्त्व रखता है। जब मैंने महाभारत में वह भाषण पढ़ा तो मै गद्गद् हो गया। उन्होंने कहा—"मैं खून का दरिया नहीं बहाना चाहता। खून का दरिया बहाते हुए जो नजारा दिखाई देता है वह मैं नहीं देखना चाहता। मैं नहीं चाहता कि नौजवानों की ताकत खत्म हो जाय। बड़ो-बुढों की इज्जत खत्म हो जाय और हजारों-लाखों माताओं-बहिनों को रोना पड़े। दुर्योधन! अन्याय कर रहे हो, अत्याचार पर उतारु हो रहे हो। यह मार्ग ठीक नहीं है। राज्य पर पाण्डवों का अधिकार है। अगर तुम उनका राज्य उन्हे नहीं लौटा सकते तो पाँच गाँव ही उन्हें दे दो। मैं पाण्डवों को समझा दूंगा। और उन्हें इतने में ही सन्तुष्ट कर दूँगा।"

जो कृष्ण दुर्योधन के सामने इस प्रकार झोली फैलाकर खड़े होते हैं, वे हिंसा के देवता हैं या अहिंसा के? उन्होने हिंसा को टालने का कितना प्रयत्न किया? और जो आगे आने वाली हिंसा है उसके पीछे हृदय में कितनी अहिंसा छिपी है? पाँच गाँव का समझौता कितना बलिदान पूर्वक किया जाता है, यह जरा गहराई में उतर कर देखिये।

तात्पर्य यह है कि कृष्ण हिंसा के राक्षस नहीं, अहिंसा के देवता थे। किन्तु जब उनकी नहीं चली और कोई समझौता नहीं हो सका तो मजबूरन लड़ाई लडनी पड़ी। वह लड़ाई रस लेने के लिए नहीं लडी गई। अन्याय और अत्याचार को रोकने का जब कोई दूसरा मार्ग नहीं रह गया तब युद्ध का मार्ग अपनाया गया। और इस स्थिति में हम कृष्ण को अहिंसा की दृष्टि से देवता और दुर्योधन को हिंसा की दृष्टि से राक्षस देखते हैं।

इन सब बातों पर विचार करेंगे तो प्रतीत होगा कि केवल अनुग्रह ही अहिंसा नहीं है, अहिंसा का दायरा इतना छोटा नहीं कि कष्ट न पहुँचाना और साता पहुँचाना ही अहिंसा हो, बल्कि अत्याचार को रोकने का प्रश्न उपस्थित होने पर, एक अंश में, निग्रह भी अहिंसा का रूप धारण कर लेता है। जैन-धर्म अनेकान्तवादी है और उसे इसी दृष्टि से देखेंगे तभी उसका सही रूप दिखाई देगा और हमारी भावना का समाधान होगा।

दुकानदारी, मकानदारी, ईमानदारी

(ले०—दादा धर्माधिकारीजी)

अभी परसों एक बोल पट (टॉकी) देखने गया। उस में एक दुकानदार के मुनीम का पात्र है। दुकानदार का बेटा जब मुनीम से कहता है कि दुकानदारी में भी ईमानदारी निबहानी चाहिये तो मुनीमजी जवाब देते हैं कि "दुकानदारी और ईमानदारी से एक दूसरे का कोई सम्बन्ध नहीं है। दुकान दारी इस दुनिया की कमाई के लिये है। इन दोनों को मिला देने से नाहक उलझन पैदा होती है।"

मौजूदा समाज की प्रमुख संस्था

मुनीमजी की दलील सुनकर लोग हँस पड़े। उन्हें यह दलील बिलकुल लचर और हास्यास्पद मालूम हुई लेकिन क्या दुकानदारी में कुशल कहलाने वाले व्यक्तियों को अकसर इसी असूल पर चलते हम नहीं देखते? मौजूदा समाज रचना की सब से महत्त्व की केन्द्रीय संस्था बाजार है। जो लोग यह समझते हैं कि बिना झूठ और चाल-बाजी के बाजार नहीं चल सकता, उनकी बात जाने दीजिए लेकिन जो लोग सचमुच बाजार

में सरलता से काम लेना चाहते हैं वे भी सौदे की नीति से नहीं बच सकते। सौदे की नीति बाजार की आत्मा है। सौदे का सूत्र है। 'कम से कम दें, अधिक से अधिक लें।' जो कम से कम देता है और ज्यादा से ज्यादा लेता है, उसे लोग होशियार और कामयाब समझते हैं। बाजार में उसकी कदर ज्यादा होती है।

सौदे की मनोवृत्ति

जिस समाज रचना की प्रमुख संस्था बाजार हो, उस समाज के हर जीवन-क्षेत्र में सौदे की वृत्ति दाखिल हो जाती है। वैद्य या डॉक्टर की कोशिश सस्ती से सस्ती और कम से कम दवा देकर अधिक से अधिक पैसा कमाने की होगी। वकील, मास्टर और दूसरे बुद्धिजीवी वर्गों की चेष्टा कम से कम श्रम। कम से कम समय खर्च करके उसके बदले में अधिक से अधिक पारिश्रमिक पाने की होगी। साहित्यकार, कलाकार, कारीगर और श्रमजीवी कम से कम सेवा के बदले अधिक से अधिक वेतन चाहेंगे। कम से कम मेहनत और अधिक से अधिक वेतन सब के जीवन का मुख्य नियम होगा।

असली कमाई

सौदे के इस नियम का नाम विनोबा ने अपनी अनूठी सिकत से "बाजार धर्म" रखा है। यही दुकानदारी है। दुकानदारी की इस नीति से मनुष्य पैसों का ढ़ेर भले ही लगा लें लेकिन वह आदमियों का संग्रह नहीं कर सकता। वह पैसा बटोरता है और आदमियो से दूर २ होता जाता है। वह समझता है कि इस दुनिया में वह बहुत कुछ कमा रहा है, लेकिन दर असल वह आदमियों में से उठ रहा है। न इस दुनिया के लिए कुछ कमा रहा है और न उस दुनिया के लिए।

मकान का नियम

मनुष्य और मनुष्य के बीच भाई-चारा या स्नेह का संबंध कायम करने का नियम इससे ठीक उलटा है। स्नेह कहता है "अधिक से अधिक दे और कम से कम ले।" बल्कि यों कह लीजिए कि देने और देते रहने में ही, स्नेह अपने को चरितार्थ समझता रहता है। यह नियम हम मकान में पाते हैं। कुटुम्ब में हर व्यक्ति अधिक से अधिक श्रम करता है और अपनी जरूरत से भी कम लेने की कोशिश करता है। इसलिये परिवार में जो व्यक्ति श्रम या सेवा के लिए असमर्थ होते हैं उन्हें भी दूसरों के बराबर बल्कि कभी-कभी दूसरों से ज्यादा उपभोग के साधन मिलते हैं। बच्चे, बुढ़े और बीमार विशेष सुविधाओं के हकदार समझे जाते हे। माँ अधिक से अधिक मिहनत करती है और बदले में कम से कम प्रतिग्रह लेती है। यह कुल धर्म है। बाजार धर्म दुकानदारी का धर्म है और कुल-धर्म मकानदारी का धर्म है। जब तक दुकानदारी का स्थान मकानदारी की वृत्ति नहीं लेगी, तब तक हमारा समाज, हमारी दुकान रहेगी मकान नहीं ?

मकानदारी का विस्तार

दो मकानदार जब एक दूसरे के अगल-बगल में रहते है तो वे अपने २ घर में जो नीती वर्तते हैं वही नीती एक–दूसरे के साथ बरतते हैं। इस प्रकार कौट्म्बकला का विकास आतंर कौट्म्बेकता में हो जाता है। इसे पड़ोसी धर्म कहते है। पड़ोसी वह है, जो अपने पास रहने वाले की सेवा करता है, लेकिन उसके बदले में कुछ नहीं चाहता। इस वृत्ति से हमारा सारा समाज हमारा मकान बन सकता है। वर्तमान अर्थव्यवस्था ने हमारे समाज कुटंब को दुकान में परिणीत कर दिया है। कोई कुछ भी कहे बाजार-वृत्ति के बदले कुलीनता का विकास करना चाहते हैं

तो दुकानदारी मे ईमानदारी मिलाकर दुकान को मकान में बदल देने की निरंतर कोशीश हमें करनी होगी। सौदे के सिद्धान्त की जगह समर्पण का सिद्धान्त ही ग्राह्य मानना होगा।

एक पत्र-प्रश्न

मुनिम जी के जिस वाद्य का जिक्र उपर आया है; उसमें उन्होंने यह भी कहा है कि ईमानदारी उसे दुनिया की कमाई के लिये है। इस में से एक महत्त्व का सवाल पैदा होता है। जब तक इस दुनिया मे परलोक में विश्वास है। तभी तक इस लोक की तरह परलोक के लिये भी कुछ करने की जरुरत मालूम होगी। पाप पुण्य की भावना का रक्षण होगा परलोक में सुख प्राप्त करने की उम्मेद से लोग पुण्य करेंगे और परलोक में कष्ट पाने के डर से पापकर्म से बचेंगे। लेकिन जहाँ पर लोक का डर नष्ट हुआ कि लोग पाप पुण्य की जरा भी परवाह नहीं करेगें न उन्हें स्वर्ग की आशा होगी। तब मनुष्य को सदाचार की प्रेरणा कैसे हो ? उपर्युक्त बोल पर में बार मे धड़ल्ले के साथ बेईमानी और दगाबाजी करने वाले मुनिम जी भी परलोक के लिये कोई न कोई पुण्य पाप करने में विश्वास करते हैं।

सभ्य पुरुषों की चोरी के विभिन्न रूप

(ले०—श्री० हनूमानप्रसाद जी पोद्दार, सम्पादक 'कल्याण')

दूसरे के स्वत्व (हक) को ग्रहण करना चोरी कहलाती है। चोरी अनेक प्रकार से होती है, कि वस्तु को उठा लेना, वाणी से छिपाना, बोल कर चोरी करवाना, मन से पराई वस्तु को ताकना आदि सब चोरी के ही रूप हैं। स्थूल चोरी का स्वरूप तो किसी की चीज उसकी बिना जानकारी के ले लेना ही

है। ऐसे चोरों के लिये दण्ड का विधान भी है। परन्तु सभ्यता की आड़मे, कानून से बच कर आज कल कितनी अधिक चोरियाँ होती हैं, यदि उनका हिसाब देखा जाय तो पता लगता है कि शायद समाज की प्रगति चोरी की ओर बड़े वेग से बढ रही है। जितने ही अधिक कानून बनते हैं, उतनी ही चोरी की नयी-नयी क्रियाओ का आविष्कार होता है। आज बड़े बड़े राष्ट्र एक दूसरे का स्वत्वापहरण करने के लिए पक्के चोर की भाँति अपनी अपनी कुशलता को काम मे ला रहे हैं। सभ्यता से ढकी हुई चोरियां बड़ी भयानक होती है और उन्ही की संख्या आज कल बढ़ रही हैं अंग्रेजो के शासनाधीन होने के बाद जहाँ भारतवर्ष में स्थूल डकैतियो की सख्या घटी है, वहाँ सभ्यता की आड़ में होने वाली चतुराई की डकैतियाँ और चोरियाँ उतनी ही बढ़ी हैं। पहिले के जमाने मे चोरों का एक भिन्न समुदाय होता था, जो घृणा की दृष्टि से देखा जाता था, परन्तु इस समय संक्रात्मक बीमारी की तरह प्रायः सारा समाज इस दोष से आक्रान्त हो चला है। छोटे-छोटे गाँवो में भी चतुराई की चोरियाँ प्रारम्भ हो गई हैं। यह बहुत बुरे लक्षण हैं। आज बड़े-बड़े लोगो में इसका प्रवेश देखने में आता है। मामूली चोरियाँ पकड़ी जाती हैं, चोरों को दण्ड भी मिलता है, परन्तु ये बारीक चोरियाँ प्रायः पकड़ी नहीं जाती, ये चोरियाँ तो चतुराई और होशियारी के नाम से पुकारी जाती हैं। समाज ऐसे चोरों को धिक्कार नहीं देता बल्कि जो जितनी अधिक आसानी से दूसरे का हक हड़प कर सकता है, वह उतना ही अधिक चतुर और बुद्धिमान समझा जाता है। न्यायालय तक ऐसे चोरों को प्रथम तो जाना ही नहीं पड़ता, यदि किसी पाप के खुल जाने पर उसे कहीं अदालत तक जाने की नौबत आती है तो वहाँ धन के बल और कानूनी दाव पेचों से उसका छूट जाना प्राय. सहज समझा जाता है।

व्यापारियों में तो ऐसी चोरी का नाम 'रस-कस' है। दूसरे विभागों मे यह 'ऊपर की पैदा' या 'चतुराई की उपज' कहलाती है। इन पंक्तियों का लेखक स्वयं व्यापार करता था, इसलिये उसे व्यापारियों की चोरी का विशेष अनुभव है, अतएव यहाँ पर व्यापारियों की इस 'रस-कस' रूपी चोरी के तरीको की संक्षिप्त सूची उपस्थित की जाती है।

१—अपनी स्थिति का झूठा रोब जमा कर लोगो को धोखा देना।

२—घटिया माल को बढ़िया बतला कर बेचना।

३—नमूना एक दिखला कर माल दूसरा देना। बढ़िया नमूना बतला कर माल घटिया देना।

४—घटिया माल का भाव करके बेचने वाले से छिपा कर चालाकी से बढ़िया ले लेना या बढ़िया का भाव करके खरीददार को घटिया देना।

५—खरीददार को चालाकी से वजन में कम तौलना और बेचने वाले से चालाकी करके अधिक तुलवाना।

६—इसी तरह नाप में कम देना अधिक लेना।

७—एक चीज को दूसरी बतला कर बेचना।

८—आढ़त दलाली मे चालाकी से छिपा कर कम देना या अधिक लेना। गोदाम भाड़ा खर्चा झूठा व ज्यादा लगाना।

९—आढ़तिये के लिये खरीदे हुये या बेचे हुए माल का भाव कुछ बढ़ाकर या घटाकर उसे लिखना।

१०—झूँठा बीजक बनाना या जहाँ मुनाफे की बोली पर माल बेचा जाता है वहाँ आढ़तिये को लिख कर झूठा बीजक बनवा कर मँगाना।

११—व्यापारी संस्थाओं के माने हुए नियमों को चालाकी से भँग करना।

१२—सस्ता समझ कर चोरी के माल को खरीदना।

१३—अपवित्र को पवित्र कह कर या एक चीज में दूसरी चीज मिला कर बेचना।

१४—दूसरों का उदाहरण देकर चालाकी से ग्राहक को धोखे में डालना।

१५—जबान पलट जाना या छिपा कर उसका दूसरा रूप बतलाना।

१६—झूठे समाचार गढ़ कर लोगों को धोखे में डालना।

१७—तेजी मन्दी के तारों को छिपा कर सस्ते में माल ले लेना या महँगे में बेच देना।

१८—रुपये कम देकर अधिक के लिये रसीद लिखवाना।

१९—किसानों को फुसला कर और धमका कर दस्तावेज करवा लेना।

२०—चालाकी से दूसरे को मूर्ख बनाकर बात बदल देना।

सूची तो बहुत बड़ी बन सकती है, यह तो कुछ प्रधान-प्रधान बातें हैं। ये चोरियाँ दिन-दहाडे बाजारों मे बैठ-बैठ कर 'रस-कस' के नाम पर की जाती हैं। कई लोग तो व्यापार में इस प्रकार की कुछ चालाकियों का रहना आवश्यक मानते हैं। उनकी समझ में इनके अभाव से व्यापार में सफलता प्राप्त करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। जो बेचारे धर्म-भय से इन कामों को नहीं कर सकते वे व्यापारी जगत में अयोग्य और अनभिज्ञ समझे जाते हैं। कितना भयानक पतन है। बड़े दुःख का विषय है कि यदि हमारे यहाँ एक नौकर तरकारी खरीद कर लाने में दो पैसे की चोरी कर लेता है तो उसे हम पुलिस के हवाले करना चाहते हैं, परन्तु हम स्वयं दिन भर एक के बाद दूसरी चोरी की लगातार आवृत्ति करते रहते हैं जिनका कोई हिसाब नहीं।

बाजार में बैठ कर लम्बी चौड़ी बातें करना और नाम के लिये विपुल धन राशि में से थोड़ा सा धन दान कर देना ही धर्म का लक्षण नहीं है। जहाँ तक ये चोरी की आदतें नहीं छूटती वहाँ तक हम परमात्मा से बड़ी दूर हैं। चोरी से लाखों की सम्पत्ति का संग्रह कर उसमें से थोड़ा सा हिस्सा धर्म खाते का जमा कर लेने या किसी को दे देने से पाप से छुटकारा नहीं मिल सकता है। एक मारवाड़ी कवि ने कहा है—

एरण की चोरी करै, करै सुई को दान।
चढ चोवारे देखण लाग्यो, कद आसी विमान॥

बहुत से लोहे से बने हुए धन की चोरी करके बदले में जरासे लोहे की एक सूई का दान कर के जो ऊपर चढ़ कर अपने लिये स्वर्ग के विमान की प्रतिक्षा करता है वह जैसा हास्यास्पद है वैसा ही वह है जो दिनभर चोरी करके बदले में जरासा धन देकर पापो से मुक्त होने की आशा करता है।

व्यापारी समाज को चाहिये कि अपनी छाती पर हाथ धर कर अपनी चोरियो को देखे और उन्हें छोड़ने का प्रयत्न करे।

व्यापारी-समाज की तरह अन्यान्य समाजों में भी खूब चोरियाँ होती हैं। पुलिस-विभाग के एक अवसर प्राप्त सज्जन ने मुझसे कहा था कि जब कोई नया आदमी इस विभाग में भर्ती होता है तब वह पहिले से ही इस बात को सोच लेता है कि मेरा बीस रुपये का वेतन है तो दश रुपये ऊपर के होंगे। रुपया रोज पड़ जायगा। इस 'ऊपर के' का अर्थ घूंस या चोरी ही है। रेलवे कर्मचारीयों के साथ मिल कर बड़े बड़े व्यापारी और सभ्यताभिमानी लोग भाडा चुकाने मे चोरी करते हैं, और इस को चतुराई समझते हैं। बड़े बडे मिल मालिक लोग सवाई डयोढी कांजी देकर कपड़े का वजन बढ़ाते हैं। बड़े बड़े वकील बैरिष्टर

अपने मवक्किलों को कोर्ट से बचने के लिए तरह,तरह की सलाह दिया करते हैं जो चोरी का ही रूपान्तर होता है। अनेक धर्मोपदेशक और समाज-सुधारक शास्त्रों के यथार्थ अर्थ को छिपा कर मत-प्रचार या स्वार्थ सिद्धि के लिये विपरीत अर्थ करते देखे जाते हैं। डाक्टर वैद्यो को सभ्यता के पर्दे में होने वाली चोरियाँ का बहुतों को अनुभव है। कला और साहित्य संसार में भी दिनदहाड़े चोरियाँ होती हैं। सारांश यह कि आज कल प्रायः सभी में यह पाप फैल गया है। यह कोई अतिशयोक्ति नही है। इस समय प्राय ऐसी ही स्थिति हो रही है। ऐसे बहुत थोड़े असली भाग्यवान् हैं जो इन से सर्वथा बचे हुये हैं।

बहुत से लोग तो इन को पाप ही नहीं समझते हैं परन्तु कुसंगति में पड़ कर, लोभ से या परिस्थिति से बाध्य होकर ऐसे कर्म कर बैठते हैं। उन्हें पश्चाताप तो होता है, परन्तु वे अपनी कमजोरी से बच नहीं सकते।

समाज की इस बुरी परिस्थिति के लिये हम सभी उत्तर दाता हैं। समाज, फिजूल खर्ची देने-लेने की प्रथा और विलासिता बहुत बढ गयी है। अपनी इज्जत बचाये रखने के लिये एक की देखा देखी दूसरे को भी अवसर पर उतना ही खर्च करना पडता है। पैसे पास होते नहीं, ऐसी अवस्था में यदि कहीं से मिल जाते हैं तब तो ठीक, नहीं तो उसे किसी न किसी प्रकार चोरी करनी पड़ती है। ऋण हो जाता है तो उसको चुकाने के लिए भी यही उपाय सूझता है। समाज के दोषों से सब कुछ महँगा हो गया है। साधारण वेतन का आदमी शहर में रह कर बडे कुटुम्ब का पालन नहीं कर सकता, उसे भी चोरी करनी पड़ती है। अवश्य ही इन कर्मो का समर्थन तो किसी भी अवस्था में नहीं किया जा सकता। चोरी करने की अपेक्षा भूख के मारे मर जाना अच्छा है। परन्तु यह बात कहने में जितनी सहज है,

परिस्थिति मे पडने पर पालन करने में उतना ही कठिन है। समाज के धनी, मानी और अगुआ लोगों को चाहिए कि वे लोगों को इस पाप से मुक्त करने के लिए आगे होकर फिजूल-खर्ची बन्द करें, विलासिता का त्याग करें, लोगों के सामने ऐसा आदर्श रक्खें कि जिससे कम खर्च करने मे किसी को लज्जा या संकोच न हो। बड़े-बडे धर्माचार्य, उपदेशक, नेता, देश-भक्त, धनी, व्यवसायी, मुनीम, सेवक, सरकारी कर्मचारी, रेलवे कर्मचारी आदि सभी को इन चोरियो से बचकर सर्व साधारण को यह बतला देना चाहिए कि चतुराई के नाम पर स्वापहरण की जो कुछ चेष्टा होती है सो सब पाप हैं। जब लोग इस चतुराई को पाप समझने लगेंगे तब स्वय इनसे हटेंगे। किसी के हक की किसी प्रकार से भी हरण करने की इच्छा, चेष्टा या क्रिया नहीं होनी चाहिए इसी का नाम अस्तेय है।

सच्चे नागरिक बनें

हम ब्राह्मण हैं तो देश व जाति के कल्याण के लिये जप, तप, करते हुए शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आचरण करें और जनता में सामायिक उपदेशों द्वारा धैर्य, शौर्य और सगठन पैदा करें। क्षत्रिय हैं तो निर्भय होकर अत्याचार का सामना करे। आततातईयों का संहार करने मे सरकार को सहयोग दे। और वैश्य हैं तो न्याय नीति से अल्प लाभ लेकर वस्तु का कृषि, उद्योग, धधो द्वारा उत्पादन व क्रय विक्रय करें। और चोर बजारी संग्रहवर्ती को त्याग दें। और राष्ट्र रक्षा हित प्राण न्योछावर करने वाले नवयुवको को आधुनिक अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित करने के लिये महाराणा प्रताप समकालिन भामाशाह की भांति सरकार को धन दें। किसान हैं तो अधिक से अधिक

अन्न, कपास, खाद्य पदार्थ साग सब्जी उपजाने के कार्य में जुट जाए। मजदूर हैं तो राष्ट्र का हित अपनी दृष्टि में रखकर अपने काम को अधिक परिश्रम व सच्चाई से करें काम को केवल मजदुरी की दृष्टि से नहीं बल्कि राष्ट्र के सहायक के तौर पर करें। हर व्यक्ति अपनी सरकार से नियत किये हुए लगान, टैक्स, रेल किराया म्युनीसिपल चुन्गी आदि जो वाजिब हो अधिकारीयो को बिना कष्ट दिये देदें, जनता कि इस आय से ही राष्ट्रीय सरकार जनता का हित साधन, संरक्षण और समृद्ध बनाने की योजनाओ को कार्य रूप दे सकेगी। कोई भीख मांगने का रोजगार न करे। और हर व्यक्ति यथाशक्ति, यथा योग्यता परिश्रम से रोजी उत्पन्न करके खाये, हम अनुभव करें कि अपने उचित कर्त्तव्य का पालन करके देश के भले मे अपना भला समझे। व्यक्तिगत अनुचित स्वार्थ को त्याग दें। स्वतन्त्र हो जाने से सारे भारत में जन्मे हुए सहोदर भाई के समान हैं और हमारे उत्तरदायित्व बढ गये हैं और इस बडे हुए दायित्व को समहालने में ही देश व जाति का गौरव है आवश्यकता है श्रम और पून्जी के सहयोग की, सरकार को उचित सुझाव देने वालों की ईमानदार, चुस्त और सचेतक अधिकारीयो की आवश्यकता है बल संचय करने के लिये संगठन, सयम, धैर्य तथा दृढ अनुशासन की तब ही स्वतन्त्रता का असली लाभ प्राप्त होगा।

उपदेशक या गुरु कैसे हों ?

(कल्याण पत्र में छपे ' काम के पत्र" में से)

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपके प्रश्नों के उत्तर में निम्नलिखित निवेदन है। उपदेशक, गुरु या वक्ता होना बडे दायित्व का काम है। योग्य अधिकारी

ही इन पदों को सुशोभित कर सकते हैं। अधिकारी वे हैं, जिनमें ये पाँच बातें अवश्य हों—

(१) वे जिस सिद्धान्त का उपदेश करते हैं, वह सिद्धान्त सच्चा हो, शास्त्रानुकूल हो और लोककल्याणकारी हो।

(२) वे स्वयं उस सिद्धान्त को सिद्धान्त रूप से मानते हों।

(३) उक्त सिद्धान्त उनके जीवन में उतरा हो।

(४) उपदेश करने में केवल सुनने वालो के कल्याण की ही भावना हो, उन्हे रिझाने की न हो।

(५) उपदेश के बदले पूजा, मान-सम्मान और धनादि भोगों को प्राप्त करने की कामना न हो।

इनमें से एक-एक पर सन्तेप में विचार कीजिये।

(१) जैसे भगवत्प्राप्ति के लिए सत्य, अहिंसा, शम, दम, सेवा, भक्ति, सदाचार आदि साधन करना—यह सिद्धान्त सच्चा भी है, शास्त्रीय भी है और प्रत्यक्ष ही लोक-कल्याणकारी भी है। पर जैसे कोई कहे कि लोगों को लूट मार कर, उन्हें धोखा देकर, उनका अहित करके जगत् का हित करना है और इस सिद्धान्त को कोई सच्चा शास्त्रीय और लोक-कल्याणकारी सिद्ध करना चाहे तो, यह ठीक नहीं है। जिससे परिणाम में किसी का अहित होता हो, वह सिद्धान्त न सत्य है, न शास्त्रीय है और न लोक-कल्याणकारी है। सिद्धान्त वही सच्चा है, जो साधन करने पर खरा उतरे, जो ऋषि-मुनियों के द्वारा सेवित हो और जिसके द्वारा होने वाला लोक-कल्याण प्रत्यक्ष हो।

(२) कोई उपदेशक सत्य का, भगवान् का प्रतिपादन करता है पर स्वयं उनको नहीं मानता यह ठीक नहीं है। एक वार एक सज्जन आये, थे वे बडे विद्वान्। उनके व्याख्यान की व्यवस्था हुई। व्याख्यान आरम्भ करने के पहले उन्होंने पूछा—'कहिये क्या कहें—ईश्वर का खण्डन करें या मण्डन।' उनसे

कहा गया, 'जो सच्चा सिद्धान्त हो, उसी का प्रतिपादन कीजिये।' उन्होंने कहा—'मेरा सिद्धान्त तो यही है, जैसा मंच (प्लेटफार्म), वैसा भाषण। मैं कुछ मानता-वानता नहीं, व्याख्यान आप कहें, उसी विषय पर दे दूं।' यह ठीक नहीं है। उपदेशक या वक्ता को वस्तुतः उसी विषय पर बोलना चाहिए, जिसको वे स्वयं सिद्धान्त रूप से मानते हों।

(३) सिद्धान्त का मानना ही पर्याप्त नहीं है, उसको जीवन में उतार लेना आवश्यक है। जो कुछ कहे, वही करे। वैसे उपदेशक को बहुत समझाना नहीं पड़ता। उसका जीवन ही मूर्तिमान् उपदेश होता है। उसको देखकर ही लोग समझ लेते हैं और व्याख्यान की अपेक्षा बहुत अच्छा समझते हैं। इसके विपरीत एक आदमी, जो सत्य पर बड़े महत्त्व का भाषण देता है, मद्यपान को महान् पाप सिद्ध करता है, पर अलग जाते ही बात-बात में झूठ बोलता है और शौक से शराब पीता है, उसके भाषण का कोई भी महत्त्व नहीं, कुछ भी मूल्य नहीं।

(४) वक्ता का उद्देश्य होना चाहिए लोक-कल्याणकारी सत्य सिद्धान्त के उपदेश द्वारा लोक-कल्याण करना। वह श्रोता के सामने सिद्धान्त की महत्ता बतलाता है और साथ ही अपना अनुभव भी उनको प्रकारान्तर से बतलाता है। जैसे किसी रोगी को, कोई उसी रोग से छूटा हुआ पुरुष अपनी अनुभूत चिकित्सा का उपदेश करे और मैंने उसका कैसे-कैसे उपयोग करके क्या-क्या लाभ उठाये, यह भी बतावे, और यह सब उसके रोग का नाश करने के लिये ही करे। सच्चा उपदेशक दूकान नहीं खोलता। वह तो केवल सच्चे जिज्ञासु के सामने उसके कल्याणार्थ सरलता के साथ अपनी अनुभूत साधना का व्याख्यान करता है। उसके मन में कभी यह कल्पना ही नहीं होती कि मैं अपने भाषण से किसी को रिझा कर अपनी ओर आकृष्ट करूँ।

(५) ऐसे व्याख्यानदाता, उपदेशक, कथावाचक, गुरु देखे जाते हैं, जो बहुत सुन्दर स्वरों में गाते हैं, नाचते है, आँसू बहाते हैं, मूर्छित-से होकर गिर पड़ते हैं, बड़ी सुन्दर कथा कहते हैं, जनता को रुला देते हैं, हँसा देते हैं, बड़ी सुन्दर साहित्यिक आलोचना करते हैं, परन्तु इन सबका लक्ष्य रहता है—किसी प्रकार जनता को रिझाना और फिर उससे पूजा, धन, मान आदि प्राप्त करना। कथा में अतिउच्च दिव्य प्रेम का निरूपण करते हैं परन्तु पाये जाते हैं घृणित काम के कीड़े, वैराग्य, त्याग और जगत् की असत्ता का निर्वाचन करते हैं। कहते है—'कभी जगत् बना ही नहीं, बिना ही हुए सीप में रजत की भाँति, आकाश में तिरमिरे की भांति भास रहा है। और दूसरे ही क्षण येन-केन प्रकारेण धनादि के सञ्चय में लग जाते हैं तथा एक-एक पैसे के लिए भाई-भाई से लड़ने लगते हैं। तुलसीदासजी ने ऐसे ही लोगों के लिए कहा है—

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥

गुरु चरित्रवान् हो, विद्वान् हो, अनुभवी हो तभी वह भगवान् के मार्ग का पथ-पदर्शक बन सकता है। नहीं तो अंधे को अंधा ले जाय और गड़हे मे डाल दे, इसी तरह वह भी अपने अनुयायी को गड़हे में ही डालता है।

संगीत, नृत्य, वक्तृत्व, नाट्य आदि कलाओं से ही कोई महात्मा नहीं हो जाता। नाटकों के दुश्चरित्र अभिनेता भी बहुत अच्छे-अच्छे श्रीकृष्ण, शंकराचार्य, बुद्ध, चैतन्य महाप्रभु, मीरा, आदि के पार्ट करते हैं तथा बहुत सुन्दर करते है। परन्तु इससे उनका अपना कोई लाभ नहीं होता और वे बेचारे इसे स्पष्ट अभिनय कहते हैं। इससे जनता को भी धोखा नहीं होता। पर जो करते तो हैं केवल नाट्य और उसे दिखाते हैं असली रूप में—

ऐसे दम्भपूर्ण वक्ताओं, गुरुओं और उपदेशकों से बड़ी हानि होती है। क्योंकि उनसे भोले-भाले लोग ठगे जाते हैं और फलतः सत्य-सिद्धान्त मे अविश्वासी होकर पतनोन्मुख हो जाते हैं।

अतएव वक्ता, उपदेशक और गुरुओं मे उपर्युक्त पाँचों बातें आनी चाहिए, तभी वे उपदेश करने के अधिकारी होते हैं, तभी उनके उपदेश का प्रभाव पड़ता है और तभी उनके द्वारा लोक-कल्याण होता है।

आप उपदेशक का कार्य करना चाहते हैं तो पहले अपने को उसका अधिकारी बना लीजिए। उपदेश करना केवल पेशा नहीं होना चाहिए।

साधु कौन ?

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी, खंतिक्खमे संजम बंभयारी।
सावज्ज जोगं परिवज्जयंतो, चरिज्ज भिक्खू सुसमहि इंदिए॥

सर्व प्राणियों के प्रति दया व अनुकम्पा रखने वाला, क्षमाशील, संयत, ब्रह्मचारी एवं इन्द्रियों को वश में कर सर्व पापों का त्याग करते हुए धर्माचरण में रत रहने वाला साधु है।

आदर्श-साधुता

(ले०—श्री आचार्य शशिकांत झा शास्त्री 'साहित्य रत्न')

यह एक मानी हुई सच्ची बात है कि यह संसार जब पाप और दुराचारों के भार से दब जाता है, असत्य सत्य पर, हिंसा अहिंसा पर, क्रोध क्षमा पर, कटुता विनय पर तथा अज्ञानता जब विवेक पर अधिकार जमा लेती है, मनुष्यों के पास भले-बुरे कर्त्तव्यों का ज्ञान नहीं होता अथवा अधिकतायत से लोग बुरे कर्मों

की ओर ही प्रवृत होते हैं, अत्याचारियो के अत्याचारों से जब क्षमावान् साधुओं के दिल भी घबरा जाते हैं ठीक ऐसे ही समय पर फिर से वसुधा में सुधाभिषेक करने को देवो का अथवा महान पुरुषों का अवतार हुआ करता है। संसार की ग्रस्त व्यस्तता को अपने त्याग, तपस्या, कर्म आदि के द्वारा मिटा कर काल पाकर वे भी इस संसार से चल देते हैं ताकि जीव अपने को मरण धर्मा समझ कुछ सोच २ कर कर्त्तव्य निश्चित करे। अवतारी पुरुष तो देह छोड़ के इस ससार से अवश्य चल देते हैं किन्तु उनकी कार्यवाहियों तथा सदुपदेश ज्यों के त्यों बने रह जाते हैं जो सिगनल लेम्प की तरह समाज के कर्त्तव्य-कर्म का पथ प्रदर्शन करते हैं। जिस प्रकार राज व समाज के नियम को चलाने के लिये उनके अनुयायी लोग होते हैं ठीक उसी तरह संसार को माया जाल समझ, बंधन का कारण समझ धर्म की नींव को स्थायी रखने के लिए हर काल में हर तरह के त्यागी होते आये हैं जिन्हें दुनियां साधु, सन्त, योगी, यति महात्मा कहकर पुकारती आई है तथा जिनके चरणों पर शीश झुकाती एव उनकी आज्ञाओं को सर पर उठाती आई है और वे भी अपने २ त्याग, तप, क्षमा आदि सद्गुणों के द्वारा जागतिक जीवों के कल्याण का मार्ग बतलाते आए हैं। अवतारों की विभिन्नता के कारण यद्यपि सम्प्रदायों की विभिन्नता भी बहुत बढ़ गई किन्तु अधिकांशेन् ध्येय एक होने से आज तक यह विभिन्नता नहीं खटकती थी आर लोग स्व २ रुचि के अनुकूल हर साधुओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखते आते थे किन्तु बीसवीं सदी ने जहाँ मानव समाज की सुख साधना के सिए बहुतेरे उपादान दिये वहाँ मनुष्यों की तर्क बुद्धि को, युक्त युक्तियों से विस्तार करने की भी काफी छूट दे दी। जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज की आँखें यकायक उधर से हट गईं, अथवा टेढ़ी हो गई

जिधर वह मुद्दत से श्रद्धा के साथ जुटी हुई रहती थी, इसका कारण क्या हुआ ?

आज संसार में जहाँ खून-खराबियों, लूट मार, चोरी डकैती, छल कपट, पाप और अन्याय का बाजार खूब ही गर्म है, वहाँ उपदेश के नाम पर, साधुता के नाम पर तथा जगत कल्याण के नाम पर बैठ कर माल उड़ाने वाले साधुओं की संख्या भी कम नहीं है। कोई राम के काम को सराहने वाले तथा उनकी लोकोत्तर मर्यादा को समाज में बनाये रखने वाले रामानुजी हैं, तो कोई भगवान् कृष्ण के कृत्यों को भूतल में गा-गा कर सुनाने वाले वल्लभ सम्प्रदायी हैं, तो कोई बुद्ध के अहिंसोपदेश को भूतल में फैलाने वाले बौद्ध भिक्षु हैं, तो कोई भगवान् महावीर के विमल विचारों को कायम रखने वाले जैनी हैं, तो कोई शंकरोपासक शिव एवं कोई कबीरपन्थ के हैं। इस तरह भिन्न २ पन्थ के साधु अब भी संसार के कल्याण के लिये भूतल में विराजमान हैं जिनकी संख्या करोड़ों के करीब होगी। मात्र आत्म कल्याण के नाम पर इस जनता से बिल्कुल बाहर एकान्त शान्त किसी गिरी कन्दरा की ओर अथवा कल-कल वाहिनी पुन्य सलिला किसी सरिता के स्वच्छ तट पर जो चले गए उन पर तो कुछ विचार विमर्श करने का अधिकार इस मानव समुदाय को नहीं है। किन्तु धर्म तथा देश कल्याण के नाम पर अभी भी जो बिना परिश्रम के बैठे २ माल उड़ा रहे हैं वे युक्ति की दृष्टि में विचारणीय हैं। इधर हमारे सन्तों का कहना है कि अब कलियुग का प्रवेश हो गया, लोगों की धर्म भावना लुप्त हो गई, कोई साधुओं को कुछ समझता ही नहीं आदि २। अब यहाँ पर सवाल उठता है कि कलियुग के प्रवेश से क्या हुआ, क्या सूरज पहले जैसे नहीं चमकते हैं ? क्या चाँद में वैसी आल्हादकता नहीं ? क्या हवा में वह शीतलता नहीं ? अथवा नदियों

की ओर ही प्रवृत होते हैं, अत्याचारियो के अत्याचारों से जब क्षमावान् साधुओं के दिल भी घबरा जाते हैं ठीक ऐसे ही समय पर फिर से वसुधा में सुधाभिषेक करने को देवो का अथवा महान पुरुषों का अवतार हुआ करता है। संसार की अस्त व्यस्तता को अपने त्याग, तपस्या, कर्म आदि के द्वारा मिटा कर काल पाकर वे भी इस संसार से चल देते हैं ताकि जीव अपने को मरण धर्मा समझ कुछ सोच २ कर कर्त्तव्य निश्चित करे। अवतारी पुरुष तो देह छोड़ के इस ससार से अवश्य चल देते हैं किन्तु उनकी कार्यवाहियो तथा सदुपदेश ज्यों के त्यों बने रह जाते हैं जो सिगनल लेम्प की तरह समाज के कर्त्तव्य-कर्म का पथ प्रदर्शन करते हैं। जिस प्रकार राज व समाज के नियम को चलाने के लिये उनके अनुयायी लोग होते हैं ठीक उसी तरह संसार को माया जाल समझ, बंधन का कारण समझ धर्म की नीव को स्थायी रखने के लिए हर काल में हर तरह के त्यागी होते आये हैं जिन्हें दुनियां साधु, सन्त, योगी, यति महात्मा कहकर पुकारती आई है तथा जिनके चरणों पर शीश झुकाती एव उनकी आज्ञाओं को सर पर उठाती आई है और वे भी अपने २ त्याग, तप, क्षमा आदि सद्गुणों के द्वारा जागतिक जीवो के कल्याण का मार्ग बतलाते आए हैं। अवतारों की विभिन्नता के कारण यद्यपि सम्प्रदायों की विभिन्नता भी बहुत बढ़ गई किन्तु अधिकांशेन् ध्येय एक होने से आज तक यह विभिन्नता नहीं खटकती थी आर लोग स्व २ रुचि के अनुकूल हर साधुओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखते आते थे किन्तु बीसवीं सदी ने जहाँ मानव समाज की सुख साधना के लिए बहुतेरे उपादान दिये वहाँ मनुष्यो की तर्क बुद्धि को, युक्त युक्तियों से विस्तार करने की भी काफी छूट दे दी। जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज की आँखें यकायक उधर से हट गई, अथवा टेढ़ी हो गई

जिधर वह मुद्दत से श्रद्धा के साथ जुटी हुई रहती थी, इसका कारण क्या हुआ ?

आज ससार में जहाँ खून-खराबियो, लूट मार, चोरी डकैती, छल कपट, पाप और अन्याय का बाजार खूब ही गर्म है, वहाँ उपदेश के नाम पर, साधुता के नाम पर तथा जगत कल्याण के नाम पर बैठ कर माल उड़ाने वाले साधुओ की संख्या भी कम नहीं है। कोई राम के काम को सराहने वाले तथा उनकी लोकोत्तर मर्यादा को समाज में बनाये रखने वाले रामानुजी हैं, तो कोई भगवान् कृष्ण के कृत्यों को भूतल में गा-गा कर सुनाने वाले वल्लभ सम्प्रदायी हैं, तो कोई बुद्ध के अहिंसोपदेश को भूतल में फैलाने वाले बौद्ध भिक्षु हैं, तो कोई भगवान् महावीर के विमल विचारों को कायम रखने वाले जैनी हैं, तो कोई शकरोपासक शिव एवं कोई कबीरपन्थ के हैं। इस तरह भिन्न २ पन्थ के साधु अब भी संसार के कल्याण के लिये भूतल में विराजमान हैं जिनकी संख्या करोड़ों के करीब होगी। मात्र आत्म कल्याण के नाम पर इस जनता से बिल्कुल बाहर एकान्त शान्त किसी गिरी कन्दरा की ओर अथवा कल-कल वाहिनी पुन्य सलिला किसी सरिता के स्वच्छ तट पर जो चले गए उन पर तो कुछ विचार विमर्श करने का अधिकार इस मानव समुदाय को नहीं है। किन्तु धर्म तथा देश कल्याण के नाम पर अभी भी जो विना परिश्रम के बैठे २ माल उड़ा रहे हैं वे युक्ति की दृष्टि में विचारणीय हैं। इधर हमारे सन्तों का कहना है कि अब कलियुग का प्रवेश हो गया, लोगों की धर्म भावना लुप्त हो गई, कोई साधुओं को कुछ समझता ही नहीं आदि २। अब यहाँ पर सवाल उठता है कि कलियुग के प्रवेश से क्या हुआ, क्या सूरज पहले जैसे नहीं चमकते हैं ? क्या चाँद में वैसी आल्हादकता नहीं ? क्या हवा में वह शीतलता नहीं ? अथवा नदियो

की ओर ही प्रवृत होते हैं, अत्याचारियों के अत्याचारो से जब क्षमावान् साधुओं के दिल भी घबरा जाते हैं ठीक ऐसे ही समय पर फिर से वसुधा में सुधाभिषेक करने को देवो का अथवा महान पुरुषों का अवतार हुआ करता है। संसार की अस्त व्यस्तता को अपने त्याग, तपस्या, कर्म आदि के द्वारा मिटा कर काल पाकर वे भी इस संसार से चल देते हैं ताकि जीव अपने को मरण धर्मा समझ कुछ सोच २ कर कर्त्तव्य निश्चित करे। अवतारी पुरुष तो देह छोड़ के इस ससार से अवश्य चल देते हैं किन्तु उनकी कार्यवाहियो तथा सदुपदेश ज्यों के त्यों बने रह जाते हैं जो सिगनल लेम्प की तरह समाज के कर्त्तव्य-कर्म का पथ प्रदर्शन करते हैं। जिस प्रकार राज व समाज के नियम को चलाने के लिये उनके अनुयायी लोग होते हैं ठीक उसी तरह संसार को माया जाल समझ, बधन का कारण समझ धर्म की नींव को स्थायी रखने के लिए हर काल में हर तरह के त्यागी होते आये हैं जिन्हे दुनियां साधु, सन्त, योगी, यति महात्मा कहकर पुकारती आई है तथा जिनके चरणो पर शीश झुकाती एव उनकी आज्ञाओं को सर पर उठाती आई है और वे भी अपने २ त्याग, तप, क्षमा आदि सद्गुणों के द्वारा जागतिक जीवों के कल्याण का मार्ग बतलाते आए हैं। अवतारो की विभिन्नता के कारण यद्यपि सम्प्रदायों की विभिन्नता भी बहुत बढ़ गई किन्तु अधिकांशत ध्येय एक होने से आज तक यह विभिन्नता नहीं खटकती थी और लोग स्व २ रुचि के अनुकूल हर साधुओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखते आते थे किन्तु बीसवीं सदी ने जहाँ मानव समाज की सुख साधना के लिए बहुतेरे उपादान दिये वहाँ मनुष्यों की तर्क बुद्धि को, युक्त युक्तियों से विस्तार करने की भी काफी छूट दे दी। जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज की आँखें यकायक उधर से हट गईं, अथवा टेढ़ी हो गईं

जिधर वह मुद्दत से श्रद्धा के साथ जुटी हुई रहती थी, इसका कारण क्या हुआ ?

आज ससार में जहाँ खून-खराबियों, लूट मार, चोरी डकैती, छल कपट, पाप और अन्याय का बाजार खूब ही गर्म है, वहाँ उपदेश के नाम पर, साधुता के नाम पर तथा जगत कल्याण के नाम पर बैठ कर माल उड़ाने वाले साधुओ की संख्या भी कम नहीं है। कोई राम के काम को सराहने वाले तथा उनकी लोकोत्तर मर्यादा को समाज में बनाये रखने वाले रामानुजी हैं, तो कोई भगवान् कृष्ण के कृत्यों को भूतल में गा-गा कर सुनाने वाले वल्लभ सम्प्रदायी हैं, तो कोई बुद्ध के अहिंसोपदेश को भूतल में फैलाने वाले बौद्ध भिक्षु हैं, तो कोई भगवान् महावीर के विमल विचारों को कायम रखने वाले जैनी हैं, तो कोई शंकरोपासक शिव एवं कोई कबीरपन्थ के हैं। इस तरह भिन्न २ पन्थ के साधु अब भी संसार के कल्याण के लिये भूतल में विराजमान हैं जिनकी सख्या करोड़ो के करीब होगी। मात्र आत्म कल्याण के नाम पर इस जनता से बिल्कुल बाहर एकान्त शान्त किसी गिरी कन्दरा की ओर अथवा कल-कल वाहिनी पुन्य सलिला किसी सरिता के स्वच्छ तट पर जो चले गए उन पर तो कुछ विचार विमर्श करने का अधिकार इस मानव समुदाय को नहीं है। किन्तु धर्म तथा देश कल्याण के नाम पर अभी भी जो बिना परिश्रम के बैठे २ माल उड़ा रहे हैं वे युक्ति की दृष्टि में विचारणीय हैं। इधर हमारे सन्तों का कहना है कि अब कलियुग का प्रवेश हो गया, लोगों की धर्म भावना लुप्त हो गई, कोई साधुओं को कुछ समझता ही नहीं आदि २। अब यहाँ पर सवाल उठता है कि कलियुग के प्रवेश से क्या हुआ, क्या सूरज पहले जैसे नहीं चमकते हैं ? क्या चाँद में वैसी आल्हादकता नहीं ? क्या हवा में वह शीतलता नहीं ? अथवा नदियो

की ओर ही प्रवृत होते हैं, अत्याचारियों के अत्याचारो से जब क्षमावान् साधुओं के दिल भी घबरा जाते हैं ठीक ऐसे ही समय पर फिर से वसुधा में सुधाभिषेक करने को देवो का अथवा महान पुरुषों का अवतार हुआ करता है। संसार की अस्त व्यस्तता को अपने त्याग, तपस्या, कर्म आदि के द्वारा मिटा कर काल पाकर वे भी इस संसार से चल देते हैं ताकि जीव अपने को मरण धर्मा समझ कुछ सोच २ कर कर्त्तव्य निश्चित करे। अवतारी पुरुष तो देह छोड़ के इस ससार से अवश्य चल देते हैं किन्तु उनकी कार्यवाहियो तथा सदुपदेश ज्यों के त्यों बने रह जाते हैं जो सिगनल लेम्प की तरह समाज के कर्त्तव्य-कर्म का पथ प्रदर्शन करते हैं। जिस प्रकार राज व समाज के नियम को चलाने के लिये उनके अनुयायी लोग होते हैं ठीक उसी तरह संसार को माया जाल समझ, बंधन का कारण समझ धर्म की नींव को स्थायी रखने के लिए हर काल में हर तरह के त्यागी होते आये हैं जिन्हें दुनियां साधु, सन्त, योगी, यति महात्मा कहकर पुकारती आई है तथा जिनके चरणों पर शीश झुकाती एवं उनकी आज्ञाओं को सर पर उठाती आई है और वे भी अपने २ त्याग, तप, क्षमा आदि सद्गुणों के द्वारा जागतिक जीवों के कल्याण का मार्ग बतलाते आए हैं। अवतारों की विभिन्नता के कारण यद्यपि सम्प्रदायों की विभिन्नता भी बहुत बढ़ गई किन्तु अधिकांशेन् ध्येय एक होने से आज तक यह विभिन्नता नहीं खटकती थी आर लोग स्व २ रुचि के अनुकूल हर साधुओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखते आते थे किन्तु बींसवीं सदी ने जहाँ मानव समाज की सुख साधना के सिए बहुतेरे उपादान दिये वहाँ मनुष्यों की तर्क बुद्धि को, युक्त युक्तियो से विस्तार करने की भी काफी छूट दे दी। जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज की आँखें यकायक उधर से हट गई, अथवा टेढ़ी हो गई

जिधर वह मुद्दत से श्रद्धा के साथ जुटी हुई रहती थी, इसका कारण क्या हुआ ?

आज संसार में जहाँ खून-खराबियों, लूट मार, चोरी डकैती, छल कपट, पाप और अन्याय का बाजार खूब ही गर्म है, वहाँ उपदेश के नाम पर, साधुता के नाम पर तथा जगत् कल्याण के नाम पर बैठ कर माल उड़ाने वाले साधुओं की संख्या भी कम नहीं है। कोई राम के काम को सराहने वाले तथा उनकी लोकोत्तर मर्यादा को समाज में बनाये रखने वाले रामानुजी हैं, तो कोई भगवान् कृष्ण के कृत्यों को भूतल में गा-गा कर सुनाने वाले वल्लभ सम्प्रदायी हैं, तो कोई बुद्ध के अहिंसोपदेश को भूतल में फैलाने वाले बौद्ध भिक्षु हैं, तो कोई भगवान् महावीर के विमल विचारों को कायम रखने वाले जैनी हैं, तो कोई शकरोपासक शिव एवं कोई कबीरपन्थ के हैं। इस तरह भिन्न २ पन्थ के साधु अब भी संसार के कल्याण के लिये भूतल में विराजमान हैं जिनकी संख्या करोड़ों के करीब होगी। मात्र आत्म कल्याण के नाम पर इस जनता से बिल्कुल बाहर एकान्त शान्त किसी गिरी कन्दरा की ओर अथवा कल-कल वाहिनी पुन्य सलिला किसी सरिता के स्वच्छ तट पर जो चले गए उन पर तो कुछ विचार विमर्श करने का अधिकार इस मानव समुदाय को नहीं है। किन्तु धर्म तथा देश कल्याण के नाम पर अभी भी जो बिना परिश्रम के बैठे २ माल उड़ा रहे हैं वे युक्ति की दृष्टि में विचारणीय हैं। इधर हमारे सन्तों का कहना है कि अब कलियुग का प्रवेश हो गया, लोगों की धर्म भावना लुप्त हो गई, कोई साधुओं को कुछ समझता ही नहीं आदि २। अब यहाँ पर सवाल उठता है कि कलियुग के प्रवेश से क्या हुआ, क्या सूरज पहले जैसे नहीं चमकते हैं ? क्या चाँद में वैसी आल्हादकता नहीं ? क्या हवा में वह शीतलता नहीं ? अथवा नदियों

मे वह कल २ स्वर नही। जीवन मरण का सुख-दुख का, पाप-पुण्य का सब सवाल वैसा ही है जैसा पहिले था फिर लोगों की भावना आप साधुओं की ओर से क्यों हटी जा रही है ? जमाने के लोग बदले, अथवा जमाना बदला, या बदले में आप बदले ? हाँ, यह सच है कि अब लोगों मे वैसी अन्धश्रद्धा नहीं जो शायद पहले होगी।

हम देखते हैं कि भगवान् राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, रामतीर्थ, विवेकानन्द आदि देवो का अथवा पुरुष पुंगवों का जो जगत् कायल था, वशवर्ती था इसका कारण क्या था ? निष्पक्ष भाव से कहना पड़ेगा कि जागतिक-कल्याण के लिए उन लोगों का किया त्याग ही उनके उस बड़प्पन का तथा उनकी श्रेष्ठता का प्रधान कारण था। बुद्ध और भगवान् महावीर ने जगत् कल्याण के लिए राज-पाट, सुख-विलास सबको ठुकरा दिया, राम ने पितृ आज्ञा पालने के लिए बनवास का दुख उठाया, समाज की बात मान आदर्श रमणी सीता को वन भेजा, कृष्ण ने गोवर्द्धन उठाकर व्रज की रक्षा की, स्वामी राम और विवेकानन्द ने त्रिविध कष्ट की परवाह किये बिना देश-विदेश में घूम २ कर उपदेश दिया तथा कल्याण का मार्ग दिखलाया। इस तरह त्याग करते देख उन लोगो की गणना उन श्रेणियों में हुई जहाँ पर शीश झुकाना, सेवा बजाना, आज्ञा पालन करना मानवीय हृदय के लिये अहो भाग्य समझा जाता है। नदियां जब सागर में अपने अस्तित्व को मिला देती हैं तो वे भी सागर बन जाती है, बीज जब अपने अस्तित्व को खो देता है तो वह महान् तरुराज के रूप में अवतार ग्रहण कर संसार को मधुर फल तथा सघन छाया प्रदान करता है इसी तरह किसी की प्रशंसा या स्तुति उसके त्याग गुण से ही होती है। यह सारा संसार जानता है कि आज बहुत साधुओं के पास घर द्वार

छोड़ने पर भी बड़े २ महल हैं, तरह २ की सवारियां हैं, बड़ी २ जमींदारियां हैं, ऐशोआराम के सभी साधन हैं। रासलीला की सामग्रियां हैं। छप्पन-प्रकार के भोग उन्हें प्रसाद के रूप मे प्राप्त होते हैं जो बहुत से घर द्वार वाले गृहस्थो को भी नसीब नहीं फिर भला इसे कैसी साधुता कहे ? अगर सांसारिक विलासों मे फर्क कैसा ? दुनियां उनके आगे क्यो नतमस्तक हो ? ऐसे ही बहुत से कारण हैं कि लोग आजकल साधु सन्तो से उदासीन होते हैं। इसमें प्रधान दोष उन साधुओं का है जिन्होंने त्याग नाम पर राम का जामा पहन लिया है न कि उनके अनुयायी वर्गों का। किन्तु यह निर्विवाद सिद्ध है कि किसी भी वस्तु का सर्वथा विनाश नहीं होता, उसके कुछ अंश किसी न किसी में मौजूद अवश्य रहते हैं। सौभाग्य से भगवान् महावीर के अनुयायी सन्त आज भी इस युग मे अपनी उसी पद्धति से चल रहे हैं। वही त्याग और तपस्या अब भी जारी है, सत्य और अहिंसा वैसे ही लक्ष्य है जो आदि से रहा हुवा है। यह सन्त खाली सिर तथा खाली पैर वर्षा छोड़ हर ऋतु मे उलझन में उलझे सांसारिक लोगों को उपदेश देने के लिये विहार किया करते हैं। इनके लिए न तो ग्रीष्म ही दु:खदायी है और न शीत भी। ये उतने ही कपड़े तथा धार्मिक ज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें एवं पात्र अपने पास रखते हैं जिसको आसानी से विहार के समय इस गाँव से उस गाँव तक खुद ले जा सकें। शब्द, रूप, रस, गन्ध आदि विषय की वासना इनके पास फटकने नहीं पाती। साधुता स्वीकारने के बाद आमरण ये द्रव्य (रुपया पैसा धातु के बर्तन) का स्पर्श नहीं करते। ये कच्चा जल नहीं पीते चाहे प्राणान्त हो जाय। क्षुधा शान्त के लिये दो-तीन घर माँगने जाते हैं दिया तो आहार वरना उपवास। वर्ष का तीसरा हिस्सा प्रायः उपवास में ही बीतता है ये जहाँ रहते हैं वहाँ वेकार नहीं रहते कुछ न कुछ ज्ञान चर्चा

चलाया करते हैं। सांसारिक दिग्-भ्रान्त जीवों को पारमार्थिक तत्व समझाना ही इनका प्रधान उद्देश्य है। लोकोपकार के लिए इनका उत्सर्गीकृत जीवन है इस लेख के द्वारा हम यह नहीं सिद्ध करना चाहते कि मात्र जैन साधुओ को छोड़ अन्य मतों तथा सम्प्रदाय मे सच्चे साधु हैं ही नही। नहीं ऐसी बात तो नहीं हर सम्प्रदाय में, हर धर्म मे जहाँ कुछ सच्चे लोग हैं; कुछ आदर्श भी हैं ही और रहेंगे भी किन्तु यह परोपकारी चमत्कार जिसे आदर्श साधुता कहते हैं इन दिनों इन्हीं जैन साधुओं में अधिकतर है यह निष्पक्ष भाव मानना होगा।

अजैन विद्वानों की दृष्टि में जैन साधु

जैन साधु.......एक प्रशंसनीय जीवन व्यतीत करने के द्वारा पूर्ण रीति से व्रत, नियम और इंद्रिय संयम का पालन करता हुआ जगत के सन्मुख आत्म संयम का एक बड़ा उत्तम आदर्श प्रस्तुत करता है।

श्री महामहोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम० ए० पी० एच०डी० एफ० आई० आर० एम० सिद्धान्त महोदधि, प्रिंसपल सस्कृत कालेज कलकत्ता।

यह जैनियों के आचार्य गुरु में पाक दिल, पाक खयाल, मुजस्सन पाकीजगीये हैं। हम इनके नाम पर इनके काम पर और इनके बेनजीर नपस कुशो व रिंआजत की मिसाल है जिस कद्र नाज (अभिमान) करें थोड़ा है।

श्री महात्मा शिवव्रतलालजी वर्म्मन एम० ए० सम्पादक साधु सरस्वती, तत्वदर्शी, मारतण्ड आदि लाहौर।

भारतवर्ष में जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसके अनुयाई साधुओं (मुनियो और आचार्यों में से अनेक जनों ने धर्मोपदेश के साथ ही साथ अपना समस्त जीवन ग्रन्थ रचना में खर्च कर दिया है।

—श्री महावीरप्रसादजी द्विवेदी सम्पादक 'सरस्वती'

जिस महत्वशाली 'उज्ज्वल' निर्मल देदीप्यमान आदर्श को जैनधर्म ने अपने सन्मुख रखा है उसकी उच्च सीमा तक गृहस्थ समाज पहुंची है या नहीं। यह बात निश्चय रूप से कहना तो कठीन है पर यह कहने से किंचित्मात्र संकोच भी नहीं है कि जैन साधुओ ने इस आदर्श को चरितार्थ कर दिखाया है। नगरो में, ग्रामों में कहीं भी देखिये, जैन साधु एक अद्वितीय अनोखी और विलक्षण वस्तु है। यह अपनी शानी नही रखता है। उसके बराबर होने का कोई दावा नहीं कर सकता। उसके रूप में हो जाना वैराग्य की पराकाष्टा है। आत्मत्याग की चरम सीमा है परमार्थ की अचल सीढ़ी है मानुषी चारित्र का अन्तिम शिखर है विश्व प्रेम की सशरीर मूर्ति है। दयाधर्म की परम गति है—अहिंसा सिद्धान्त की अन्तिम सीमा है। ऐसे साधु होजाना मनुष्य से देवता होजाना है। संसार के विभिन्न भोग-विलासों को लात मार कर त्याग की मूर्ति होजाना है। यदि आज भारतवर्ष मे जैन साधु न होते तो हम धर्मोदान्ध, जडवादी नवीन सभ्यता निमग्न लोगो की विशेषतः पाश्चात्य देशों को यह नहीं दिखा सकते कि हिन्दू आध्यात्मिक सभ्यता के कैसे उच्च शिखर पर चढ़ गये थे और वह अलभ्य द्वीप स्थान अब भी उसके साधुओं के अधिकार में है।

भूमण्डल की चारो दिशाओ मे शंखध्वनि से घोषणा कर दो कि जैन साधु के चरित्र, उसके व्यवहार, उसके वर्ताव मे संसार मे किसी प्राणी को शंका नहीं है उससे कोई नहीं डरता है, उससे किसी को धोखा होने का संशय नहीं है, उसमें सभी का विश्वास है, वह सभी का सम्मान पात्र है। जैन साधु का आदर्श बड़ा उच्च है। इस समय भी वह सर्वोत्कृष्ट है हमने किसी को कहते नहीं सुना, कि किसी जैन साधु ने किसी प्रकार का कष्ट पहुंचाया हो। जैन साधु किसी प्रकार का नशा नहीं करता

कभी किसी से दुधमलाई नहीं मांगता, किसी के घर पेट भर नहीं खाता, कभी रुपये पैसे की भिक्षा नहीं मांगता। वह तो खाने मात्र को कई स्थानों से अपने नियमानुसार मांग लेता है और जब और जहां उसके नियमानुसार नहीं मिलता तो भूखा रह जाता है। जैनसाधु स्वारी पर नही चलते। सैकड़ों कोसों की यात्रा पैदल ही करते हैं और पैर में जूता और खड़ाऊ भी नहीं पहिनते यह कोई खास स्थान पर बहुत दिन नहीं रहते वर्षा काल में यात्रा बन्द रखते हैं, क्योंकि उस समय छोटे २ जीव-जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं और उनके चलने से जीव हिंसा होती है। चलने से दृष्टि नीचे की ओर रखते हैं और पैर को धीरे २ रख कर चलते हैं मुखके सामने वस्त्र रखते हैं जिससे मुख की भाप से किसी अदृष्ट जीव की हिंसा न हो जाय, बगल मे एक ऊन का गुच्छा रखते हैं। जिसे रजोहरण कहते हैं। जहां कहीं बैठते हैं तो उस गुच्छे से पहिले भूमि स्वच्छ कर लेते हैं उनका सब काल धार्मिक विचार और उपदेशों ही में लगता है। वे कभी कोई सांसारिक बातो में कालक्षेप नहीं करते। इनकी तपस्या भी बड़ी कठिन है और इनका आत्म-त्याग सर्वथा सराहनीय है।

सारांश यह है कि जिस मूलमन्त्र को हम पहले कह आये हैं उसको सर्वांश पालन करने में जैन साधु भरसक चेष्टा करता है। उनका जीवन नितान्त पवित्र, उच्चाशय, परोपकारनिष्ठ एवं त्यागसंयुक्त होता है।

—श्री कन्नोमलजी एम, ए. सेसन जज धोलपुर (आदर्शमुनि से)

बचपन से बुढापे तक

(लाज वरमानी)

मानवजीवन को सूर्य के चढ़ाव और उतार से उपमा दी जाती है। जिस प्रकार सूर्य उदय होता है उसका उत्कर्ष होता है

और फिर अस्त होजाता है उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी। बचपन जीवन का सवेरा है, युवावस्था दोपहर और बुढापा शाम। आयु के साथ मानवमन की स्थिति बदलती रहती है।

बचपन के जीवन को चिन्तारहित और सरल समझा जाता है। इसीलिये सभी की इच्छा होती है कि वे फिर से बच-पन का जीवन बिताएँ। बचपन का जीवन मनोवृत्तिक जीवन होता है। बच्चा अपनी हरेक इच्छा की पूर्ति चाहता है और क्योंकि उसकी इच्छाएँ सीमित है उनकी पूर्ति हो भी जाती है। यदि किसी कारण कोई इच्छा पूर्ण न हो पाये तो बच्चा स्वयं किसी साधनद्वारा अपना मन बहला लेता है या बड़े उसका मन बहला देते हैं या बालक इस इच्छा का ध्यान कर लेता है। बच्चे में सोच विचार की शक्ति पूर्णतः विकसित नहीं होती इस-लिए यदि बच्चे को चिन्ता होती भी है तो बहुत क्षणिक होती है। असल चिन्ताएँ किशोरावस्था से शुरू होती हैं। इस अवस्था में चिन्वा का सबसे बड़ा कारण लैंगिकता का विकास है। अहमवृत्तियों में और लैगिकता यौनवृत्तियों में खूब रस्साकशी होने लगती है। कामवासना जोर पकडने लगती है और युवक और युवती के मन को बहुत पीड़ित करती है। उसे यह वासना अपनी एक बहुत बड़ी कमजोरी का अहसास कराती है जिसके लिए उसे बहुत शर्म आती है।

इस अवस्था में एक और मनोवृत्ति तेज होती है। युवक स्वतंत्र होना चाहता है। उसमें स्वावलम्बी बनने की इच्छा होती है किन्तु माता-पिता और संरक्षक उस पर बन्दिशें लगाते हैं और उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो उसके पर काटे जा रहे हैं। वह अपने व्यक्तित्व का विस्तार करना चाहता है किन्तु कर नहीं सकता।

इस आयु में व्यक्ति के व्यवहार मे एक विशेष प्रकार का परिवर्तन आ जाता है उसमे यह प्रबल इच्छा होती है कि वह दूसरे व्यक्तियो से मित्रता पैदा करे और इस मित्रता संजीदगी से निभाना चाहता है किन्तु दूसरे साथियो की ईर्षा और द्वेष के कारण इन सम्बधो में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं और उसे बेचैन कर देती हैं।

इस अवस्था से लेकर जीवन मे अवतीर्ण होने तक जीवन कुछ ऐसा ही रहता है। जीवन में अवतीर्ण होने से पहले जीवन की कठिनाइयाँ बहुत घबड़ा देती है। इस समय आदर्शवादिता उत्कर्ष पर होती है किन्तु इसकी पूर्ति का कोई उपाय न देखकर व्यक्ति मन ही मन बहुत पीड़ित रहता है। विवाह का प्रश्न भी युवक को बहुत चिन्तित रखता है। लड़कियाँ तो इस चिन्ता की विशेषतया शिकार रहती हैं। इस अवस्था की अधिकतर चिंतायें निराधार और कल्पित होती हैं।

गृहस्थी संघर्ष और आशा का जीवन होता है और यदि आर्थिक कठिनाइयां न हों तो इसे ही जीवन का स्वर्णभाग कहा जाना चाहिए किन्तु आजकल सब से अधिक कठिनाइयाँ इसी आयु मे आती हैं। उसके विद्यार्थी जीवन के सुन्दर स्वप्न मिथ्या होते दिखाई देते हैं। कदम कदम पर असफलता उसको डराती है। वास्तविकता उसे विकराल रूप में दिखलाई पडती है। यह जीवन की कठिनाइयाँ और भी बढ़ जाती हैं यदि विद्यार्थी जीवन में व्यक्ति ने जीवन के प्रति गलत रुख बना लिए हैं। कई युवक होते है जिनका रुख सदैव ही 'नहीं' का रुख होता है। ये लोग सदैव ही निराशावादी नहीं होते किन्तु फिर भी इन्हे जीवन में आनन्द नहीं आता। ये कभी उमंग का अनुभव नहीं करते।

कुछ व्यक्तियों को व्यावहारिक जीवन की कठिनाइयाँ इस लिए अधिक चिन्तित करती हैं कि उनका विद्यार्थी जीवन

अत्यन्त सुखमय रहा है। वे जीवन में प्रवेश करके भी बचपन की ओर जाना चाहते हैं और चाहते हैं कि सदैव ही कोई उनकी देखभाल करता रहे। देखा गया है कि जिस व्यक्ति ने युवावस्था में तप का जीवन बिताया हो वह व्यावहारिक जीवन में बहुत सफल रहता है। वह बहुत-सी चिंताओं से बच जाता है।

४०-४५ वर्ष तक जीवन ऐसा ही रहता है और परिस्थितियों के अनुसार मनुष्य अधिक या कम चिन्तित रहता है किन्तु बुढ़ापा आरम्भ होते ही मनोवैज्ञानिक चिन्ताएँ आ घेरती हैं। मनुष्य की शक्ति क्षीण होने लगती है और मनोवैज्ञानिक भाषा में वह 'बच्चा' या 'स्त्री' बन जाता है। स्त्री पर आयु का असर उल्टा होता है। उसमें मानसिक उत्तेजना और शक्ति का संचार होता है और वह पुरुष की भांति व्यवहार करने लगती है। इस आयु तक पहुँचने पर व्यक्ति की जीवन-शैली निश्चित हो जाती है और मनुष्य अपने आपको इस प्रकार ढाल लेता है कि वह समाज की मांगों को पूरा कर सके। अपने आपको समाज के नियमानुसार बनाने में व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व का बहुत कुछ त्याग करना पड़ता है। इस त्याग से उसके व्यक्तित्व में दुर्बलता आ जाती है और व्यक्ति को शीघ्र ही निराशा का शिकार होने का डर रहता है। उसके मन पर उदासी का बहुत असर होता है। इस आयु में हुए स्नायुरोग का इलाज होना कठिन है क्योंकि एक तो मनुष्य की शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है दूसरे मन भी इतना बलवान् नहीं रहता। थोड़ी सी आवश्यकता भी उसके मानसिक समतोल को डावा-डोल कर सकती है। व्यक्ति सहारे के लिए धार्मिक सिद्धान्तों की ओर झुकता है और उनमें उसका विश्वास बढ़ने लगता है। यहाँ तक कि कई बार वह धर्मान्ध हो जाता है और सहनशीलता उसमें से चली जाती है। वे युवकों की ओर विशेषतया सख्ती का व्यवहार

करना चाहते हैं और चाहते हैं कि वे कड़े अनुशासन में रहे और धार्मिक नियमो का पालन करें। युवको को धर्मविरोधी देखकर उन्हे बहुत दुःख होता है।

कई बार ऐसा भी होता है कि व्यक्ति इस आयु तक संयम और तप का जीवन बिताता रहा है वह इस प्रकार के जीवन को छोड़ कर ऐन्द्रीय जीवन बिताने लगता है। ऐसा बहुत कम होता है।

इस आयु में व्यक्ति को मृत्यु का डर बहुत सताता है और वह बीमारी से बहुत चौकन्ना रहने लगता है। अपने स्वास्थ्य के बारे में उसे बहुत-सी चिन्ताएँ हो जाती है। नींद न आने की शिकायत बहुधा होती हैं। निद्रा रोग कई बार केवल एक बहाना होता है क्योंकि इस उमर मे अधिक निद्रा की आवश्यकता ही नहीं रहती। पाचयशक्ति भी दुर्बल पड़ जाती है इसलिए खाने पीने मे परहेज करना जरूरी हो जाता है किन्तु व्यक्ति सदैव अपने आपको काबू में नहीं रख सकता इसलिए कई बीमारियों का शिकार हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह आयु मनुष्य को पीछे की ओर ले जाती है और वह बच्चो की भांति व्यवहार करने लगता है। यदि यह स्वावलम्बी न हो तो उसे यह शिकायत प्रायः हो जाती है कि उसे खाने को पर्याप्त नहीं मिलता। वर्तमान काल मे एक और कठिनाई उत्पन्न हो गई है। जो वैज्ञानिक सुविधाएँ आज युवक जीवन को आनन्दमय बनाती हैं वे इन लोगो को अपनी युवावस्था में प्राय' न थीं। उनके मन में लालसा उठती है कि वे भी इन युवकों की भाति जीवन भोगें किन्तु समाज का भय और जीवन शक्ति क्षीण हो जाने से वे यह आनन्द अनुभव नहीं कर सकते। धर्म की क्षति कम हो जाने से और मन्दिरो-मठों का मान कम हो जाने से एक कठिनाई और उत्पन्न हो गई है। इन

लोगों के लिए मन बहलाने का कोई साधन नहीं होता और यदि उनकी पत्नी का देहान्त हो गया हो तो उन्हें जीवन बिलकुल सूना दिखलाई देता है। इस आयु में व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने परिवार के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाए। बच्चों की देख-भाल करे। युवकों के लिए धन्धे तलाश करे और उनके विवाहादि सम्बन्ध करवाए। वे अपनी समझदारी से युवकों को बहुत-सी खराबियों से बचा सकते हैं।

आदि जातियों में बूढ़े आदमी जाति के सिद्धान्तो रहस्यों और रस्मों-रिवाज के संरक्षक होते थे। आजकल बहुत से बूढ़ों का व्यवहार गैर जिम्मेदारी का व्यवहार हो गया है। उनके व्यवहार से ऐसा प्रतीत होता है कि वह अभी भी युवावस्था के स्वप्न देखते हैं। वास्तव मे बूढ़े आदमियों के लिए ऊँचे आदर्श हैं। उनके जीवन में विशालता आनी चाहिए। उनका जीवन अधिक उपयोगी होना चाहिए। उनकी योग्यता सर्वमाननीय होनी चाहिए और उनका उद्देश्य समाज की रक्षा होना चाहिए। इन बातों के न होने के कारण ही बुढ़ापे में चिन्ताएँ बढ़ जाती हैं।

पंचान का अभिमान !

(ले०— ला० श्यामलाल जी जैन, कागजी, देहली)

आजकल के पञ्च अपनी उच्छृखल सत्ता के मद में मतवाले हो रहे हैं। पहले भी पञ्चों की सत्ता थी। उस समय जो प्रस्ताव कर दिये जाते थे, उन्हें पूरी तरह निभाया जाता था। पञ्च लोग अनुचित कार्य करने पर अपने निजी रिश्तेदारों को भी पञ्चायत में पतित कर देते थे। देहली के पञ्च सप्तव्यसन के त्यागी, पंचाणुव्रती थे और वहाँ की पञ्चायत शिरोमणि

समझी जाती थी। लेकिन जब से पंचो ने अपनी इस धार्मिक मर्यादा को भंग कर दिया है, तब से पंचायतों का प्रभाव धूल मे मिल गया है। अब पचायतों के प्रति वह श्रद्धामय भावना नष्ट हो गई है।

आश्चर्य तो इस बात का है कि कोई पंचायतों के सुधार के उपाय बताता है तो पंचों को उलटा बुरा लगता है। वे कहते हैं कि हमें धोखेबाज बताते हो? हमारी समझ मे नहीं आता कि पचायतो ने जो नियम बनाये हैं उनके प्रतिकूल जो कोई द्रव्यवान् या पंचों का सम्बन्धी अगर चलता है और कोई अद्रव्यवान् अगर उस पर उचित आपत्ति करता है तो उसकी सुनाई क्यों नहीं होती? जब वह पतित करने योग्य है तो क्यों न उसे पतित कर देना चाहिए? लेकिन ऐसा कुछ नहीं होता। पच लोग न तो सुधार करना चाहते और धन के मद के कारण, क्रोधाग्नि में पड़कर, अशान्ति रूपी हथौड़े से कुचल-कुचल कर कुवचन रूपी फुलिंगे निकालता है। इसका फल क्या होता है, सो बताने की आवश्यकता नहीं। पंचों को सदा स्मरण रखना चाहिए कि—

> मान महा विषरूप, करे नीच गति लगत मे।
> कोमल-सुधा अनूप, सुख पावे प्राणी सदा॥

पंचो को समाज की स्थिति पर पूरा लक्ष्य देना चाहिए। आजकल बड़े २ शहरों मे लोग प्राय. विधवाओं को अपने घर मे रख लेते है। वे भ्रूण हत्याएँ करती हैं तो पहले पाप का सेवन होता है। उस रखी हुई स्त्री को सूपकारिणी (रसोई दारिन) बताया जाता है। इसलिए दूसरा पाप भी लगता है। विधवा या परस्त्री को घर में डाल लेना और उससे मनमाने ऐस-आराम करना चोरी भी है क्योंकि उस स्त्री को कोई देता नही और विवाह न होने के कारण उसे भोगने का अधिकार भी नही है।

चौथा पाप तो स्पष्ट है ही। और अनुचित रीति से गृहस्थाश्रम बनना पाँचवाँ पाप भी है, जो इस प्रकार के कार्य से होता है। हम पंचों से पूछना चाहते हैं कि ये पाप ऐसे लोगों को लगते हैं या नहीं? और ये लोग पतित करने योग्य हैं या नहीं? अगर पंच इन बातों पर ध्यान नहीं देते तो वे पाप के प्रचारक और गति के पात्र हैं। आशा है पंच लोगो को यथा समय सुबुद्धि आ जायगी, अन्यथा वे पंचायतो की बची-खुची सत्ता को भी नष्ट कर डालने के पाप के भागी होंगे।

पंचायत राज्य

स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही पचों और पंचायत राज्यों का भी बोल-बाला है जगह २ पंचायतें बन रही हैं। पंचायत यह कोई नवीनता नहीं है बल्कि प्राचीन जमाने से यह भी एक सामाजिक सुव्यवस्था रखने का साधन है पंचों को परमेश्वर की ओपमा दी जाती है, अगर पंचायतें अपना कर्त्तव्य सही रूप मे पूरा करे तो जनता अनेक प्रकार के कष्टों से बिना किसी विशेष समय श्रम व पैसे के व्यय के मुक्त हो सकती है। पंचों में वकील, डाक्टर, व्यौपारी, कर्मचारी, धनी, निर्धन, बुढ़े, जवान नरम गरम सभी विचारो और सभी श्रेणियों के मनुष्य होते हैं पंच का चरित कपास के चरित से शुभ है। जिसका फल नीरस उज्ज्वल और गुण में है जो स्वयं दुख सहकर पराये द्वेष को मिटाते हैं पचायत आदि में जो सुधार होता है उसमें पचो को गालियाँ मिलती हैं। किसी के पास खर्च देने को नहीं हो तो वह पचों को जमा कर लेता है पंच स्वयं बीच में पड़ कर बुरे बनकर उसका कार्य निबटा देते हैं पंच समाज सभी जगह सबको सहज ही प्राप्त हो जाता है कोई अड़चन हो पंचों से पूछ लो इसलिये इनको सब दुखों को दूर करने वाला कहा गया है।

साधु संस्था का नाश नहीं, नवनिर्माण करो

आज देश की रक्षा के लिए सेना पर चाहे जितना भी खर्च किया जाय, किसी को नहीं अखरता। सब लोग खुशी से सैनिक शिक्षण लेने को तैयार हैं। माताएं अपने पुत्रों को और वधुएं पतियों को देश की रक्षा के खातिर सेना में भरती कराती हैं। किन्तु बन्धुओं कोरी सेना किसी भी देश की रक्षा तब तक नहीं कर सकती जब तक कि देश के प्रत्येक नागरिक का नैतिकस्तर काफी ऊंचा न उठ जाय। और जनता के नैतिकस्तर को ऊंचा उठाने के लिये आज यदि वास्तव में किसी संस्था की आवश्यकता है तो वह है सच्ची साधु संस्था की। आज जैन साधु संस्था है जो लोगों से बहुत अल्प आहार लेकर किसी प्रकार के रुपये, पैसे, कपड़े, मकान आदि का परिग्रह न रखते हुए जनता को राग-द्वेष, लोभ, परिग्रह आदि से बचने का हर समय उपदेश देती रहती है।

आज के युवक जो कि कॉंग्रेस, समाजवादी पार्टी, और सर्वोदय संघ में से किसी के सदस्य बनना पसंद करते हैं, उनसे यदि साधु संस्था का सदस्य बनने को कहा जाय तो क्या वे बनना चाहेंगे?

साधु संस्था का सदस्य बनना तो दूर रहा, पर कोई विरक्त यदि इसका सदस्य बनना चाहे तो उसमें भी वे बाधाएँ खड़ी करने को तैयार हो जावेंगे। क्या यह उचित है? क्या आपको साधु संस्था की आवश्यकता महसूस नहीं होती? यदि होती है तो फिर यह कैसे कायम रह सकेगी? यदि आपका यही रवैया कायम रहा तो आप ही लोगों में से तो हमारी भर्ती होगी। भर्ती करने के पहले विरक्त की पूरी परीक्षा लेना हमारा कर्त्तव्य है, उसमें कमी देखें तो आप हमें चेतायें, किन्तु इस भर्ती का एक दम विरोध करना तो न्याय-संगत नहीं है।

यह सच है कि हमारी साधु संस्था में भी अनेक बुराइयाँ घुस गई हैं, बहुत जगह शिथिलाचार बढ़ गया है। किन्तु इससे क्या इस संस्था को ही समाप्त कर देना चाहिए? आज कॉंग्रेस में कितनी बुराइयाँ घुसी हुई हैं? फिर भी उन बुराइयों को निकालने का प्रयत्न किया जा रहा है, न कि कांग्रेस संस्था को ही समाप्त कर देने का। आजकल साधु समाज में घुसी हुई बुराइयों को भी निकालने का बहुत जोरों से प्रयत्न जारी है और यदि श्रावक पक्षपात पूर्ण रवैया छोड़ कर शिथिलाचारी साधुओ को आदर देना छोड़ दे तो बहुत शीघ्र ही साधु संस्था का नव-निर्माण हो सकता है। —पूज्य श्री हस्तीमलजी म०

शुद्ध व्यवहार का आन्दोलन

(श्री किशोरीलाल घ० मशरूवाला, वर्धा)

नियंत्रण की नीति का परिणाम

जीवन के हर क्षेत्र मे और सार्वजनिक संस्थाओं में भी बेईमानी घुस गयी है। मुनाफाखोरी, काला बाजार, मिलावट, भ्रष्टाचार, सार्वजनिक और ट्रस्ट के पैसों की गड़बड़ी (गबन), जालसाजी आदि खूब बढ गये हैं। मानना चाहिये कि गरीब लोगो को या सामान्य जनता को अति कष्ट न हो, इस इरादे से सरकारों ने हमेशा उपयोग में आने वाली कुछ मुख्य चिजो के मूल्य-नियंत्रण की तथा नियत मात्रा में बँटवारे की पद्धति चालू की है, लेकिन आम तौर से जनता का मत यह है कि नियंत्रण की विचार-धारा और उसे लागू करने एव अमल मे लाने के ढंग का आर्थिक और अनैतिक नतीजा उससे कम बुरा नहीं हुआ है, जितना कि नियंत्रण और नियत बँटवारा न रहने से होता। इसके पहले कभी हमारा इतना पतन नहीं हुआ जितना अभी हुआ है।

भई गति साँप-छछुंदर केरी

फिर भी देश में जहाँ तहाँ ईमानदार लोग पाये जाते हैं और वे अपना जीवन ईमानदारी से बिताना चाहते हैं, परन्तु आज की आर्थिक व्यवस्था मे और परिस्थिति मे ऐसा करना उनके लिए बहुत मुश्किल हो जाता है। ऐसे लोग समाज के हर वर्ग में किसानों, माल पैदा करने वालों, बेचने वालों, माल का उपयोग करने वालो, सरकारी नौकरों आदि सब में हैं। वे अपने को एक जंजाल में फँसे हुये पाते हैं। अगर वे अपनी खेती की फ़सल और माल आदि न छिपाये, बिना कुछ बख्शिश पाये कोई काम न करने वाले रेलवे और अन्य सरकारी अधिकारियों को (जिनका कि फर्ज है कि अपना-अपना काम बराबर करे) रिश्वत न दे, नियन्त्रित दरो मे माल बेचने के लिए और खरीदने के लिए ही यदि वे डटे रहे और बँटवारे के अपने हिस्से से ज्यादा लेने की कोशिश न करे, एवं अपने मातहत या ऊपर के कर्मचारियों द्वारा होने वाली बेईमानी या अव्यवस्था मे साथ न दें, तो वे पाते है कि उनका निभना असंभव है। ऐसे कई लोग हैं, जिन्होंने पिछले कुछ वर्षों मे एक-पीछे-एक अपने अनेक धंधे इसलिए छोड़ दिये कि नियंत्रण की नीति के कारण उन्हें ईमानदारी और मुनाफे से चलना असभव हो गया। मुनाफे से मतलब यहाँ इतना ही है कि जो उनको निर्वाह के लिये वाजिब बचत दे सके।

समानधर्मी सहयोगियों की आवश्यकता

वे इमानदार रहना चाहते हैं, लेकिन इसकी आवश्यकता महसूस करते हैं कि उनके प्रयत्न में उनको मदद देवे, और किसी के सहयोग का बल मिले, ताकि एक-दूसरे की मदद से काम निभ सके।

इसलिये हमें ऐसा कोई उपाय करना चाहिये, जिससे ऐसे लोग नजदीक आयें और एक-दूसरे को जानें। उसके बाद वे आपस में व्यवहार का सम्बंध कायम कर सकेंगे। याने वे आपस में माल बेचेगें और खरीदेंगे एव अधिकारियों द्वारा होने वाली बुराई को मिटाने मे एक-दूसरे की मदद करेंगे, ताकि भ्रष्टाचार और टालमटोल को स्थान न मिले। नियंत्रित चीजों के बारे में उन्हें पहले तो सरकारी नियत्रण के भावों के अनुसार ही लेन-देन करने की भरसक कोशिश करनी चाहिये। लेकिन जब वे पायें कि ऐसा करना असंभव है, तो उनको इकट्ठे मिल कर विचार करके उसके कारणों की जाँच करनी चाहिये और दोषों को सुधारने के और भ्रष्टाचार का मुकाबला करने के साधन सोचने चाहिये कि सरकार और समाज के नियम और रीति सुधारने के लिये उन पर दबाव लाने के लिये सब से पहले यह जरूरी है कि वे व्यवहारशुद्धि में और ईमानदारी मे अपने खुद का ऊंचे दर्जे का उदाहरण पेश कर के अपनी प्रतिष्ठा जमावें। किसी भी अधिकारी या समाज के लिए श्रेष्ठ नीतिमान लोगो की माँग की अवहेलना करना सभव नही होता, विशेषतः तब जबकि वे सम्मिलित हो कर काम करते हैं।

सत्याग्रह की पूर्व शर्त

कुछ न कुछ सत्याग्रह करने की बात सुनाई देती है। सत्याग्रह अपने सच्चे मानी में सत्य और अहिंसक व्यवहार का सतत अभ्यास ही है। केवल जान-माल को हानि न पहुँचाते हुए जेल जाने की तैयारी रखने मात्र से कानून तोड़ने का कोई आन्दोलन सत्याग्रह नहीं बनता। प्रतिकार के रूप में बेईमानी और भ्रष्टाचार के विरुद्ध सत्याग्रह वे ही कर सकते हैं जो खुद अपने साथियों सहित शुद्ध व्यवहार में लगे हैं और दृढ़ प्रतिज्ञ

हैं। इसलिए सत्याग्रह की किसी प्रकार की कल्पना करने के पहले शुद्ध व्यवहार का आन्दोलन होना चाहिये।

आज की गिरी हुई दशा और भ्रष्टाचार का सबसे बडा कारण जीवन में पैसे को दिया हुआ अति महत्त्व है। अगर ईमानदारी से जीने का दृढ निश्चय कर लें तो ऐसे उपाय सूझ जायेंगे जिनसे हमारी मामूली खरीदी-बिक्री में पैसे का बहुत-सा उपयोग हम बाद कर सकेंगे या कम कर सकेंगे। जैसे कि, योग्य चीजों के द्वारा या श्रम के साधन से चीजों की अदल बदल करना। इस प्रकार पैसे को अतिमहत्त्व देने के कारण जो काला-बाजार मुनाफाखोरी, भ्रष्टाचार आदि अड़चनें खड़ी होती हैं, उन्हें हम लाँघ सकेंगे।

कुछ समय से बम्बई में श्री केदारनाथजी शुद्ध-व्यवहार आन्दोलन चला रहे हैं। मेरी यह सूचना वैसे ही काम को आगे बढ़ाने की है। यह काम अधिक उत्साह से किया जाना चाहिये, पर साथ ही बडी सावधानी से, ताकि कोई अपने स्वार्थ के हेतु उसका दुरुपयोग न कर सके।

प्रारम्भ और संगठन

अब प्रश्न यह है कि यह काम शुरू कैसे किया जाय? यह तो स्पष्ट ही है कि ऐसा आन्दोलन स्थानिक प्रेरणा से और स्थानिक लोगों द्वारा ही चलाया जाना चाहिए। कोई व्यक्ति या संस्था, जिसका स्थानिक लोगों से सम्बन्ध है और जिसे यह काम करने की तीव्र उत्कण्ठा है, वह बाहर के किसी नेता की राह न देखते हुए अपने यहाँ जल्दी से जल्दी काम शुरू कर दे। उनको इस काम में ऐसे ही लोगों को दाखिल होने को कहना चाहिए और सम्मिलित करना चाहिये, जिन पर उनका पूरा विश्वास हो कि वे अपने वचन का पालन करेंगे। अगर कोई बनी-बनाई उपयुक्त स्थानिक संस्था न हो तो इस योजना में

शामिल होने वाले करीब १० व्यक्ति मिलने पर नई संस्था बनानी पड़ेगी। यह संस्था बनाने के पहले कौन भाई-बहन इस काम में शामिल होना चाहते हैं, इसकी जानकारी मिलाने के लिये प्रारंभ में नीचे लिखे अनुसार वे निवेदन लिख देवें। जहाँ कोई स्थानिक व्यक्ति या संस्था यह उठाने को तैयार न हो, वहाँ भी जो व्यवहार शुद्धि में शामिल होना चाहते हैं, वे इसके अन्त में लिखे पते पर अपना मानस इसी प्रकार लिख भेजें। अगर यह पाया जाय कि किसी क्षेत्र में इस काम में शामिल होने लायक कुछ व्यक्ति मिल सकते हैं तो उनको एक दूसरे की जानकारी अन्त में लिखे दफ्तर से दी जायगी। मण्डल बनने पर हरेक सदस्य को अपनी स्थिति अनुसार प्रतिज्ञा लेनी चाहिए। मैं यहाँ ऐसे प्रतिज्ञा-पत्र का एक नमूना देता हूँ।

प्रतिज्ञा-पत्रक

मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

"(१) व्यापारी के नाते मैं (क) माल की संग्रहखोरी नहीं करूँगा, जिससे कि बाजार में उसकी कृत्रिम कमी पैदा हो जाय। (ख) बाजार में कृत्रिम माँग बढ़ने के कारण बेजा मुनाफा करने के लिये अपने माल के भाव नहीं बढ़ाऊँगा। (ग) किसी के अज्ञान या जरूरत का लाभ उठाने के लिए ज्यादा कीमत नहीं मांगूंगा या तोल-नाप में कपट नहीं करूँगा। (घ) भविष्य में आकस्मिक कारणों से भाव बढ़ जायेंगे, इस आशय से मैं चीज बेचने से इन्कार नहीं करूँगा। पर अगर कोई अनुचित लाभ उठाने की दृष्टि से मेरा माल खरीदना चाहेंगे तो मैं उन्हें माल नहीं दूंगा। इस दशा में मेरे द्वारा खरीददारों को फुटकर बिक्री से तथा एक नियत मात्रा में ही माल बेचने का अधिकार मैं रखूंगा। (च) मैं अपने माल की बिक्री-कीमत सही-सही खुले आम बताऊँगा। (छ) मैं अपने माल में किसी तरह की मिलावट नहीं करूँगा और

जानकारी होने पर ऐसी चीज अपनी दूकान पर नहीं रखूँगा।

(२) खरीददार के नाते (क) जिस चीज की बाजार में कमी हो, उसे जरूरत से ज्यादा नही खरीदूंगा और कृत्रिम कमी पैदा करने वाली प्रवृत्तियो में सहयोग नहीं दूंगा। (ख) जिन चीजों के भाव नियंत्रित किये गये हो, वे नियंत्रित भाव से ही खरीदने की मेरी कोशिश रहेगी, पर वे वैसे न मिलें तो मैं यथा सम्भव उनके बिना ही निभाने की कोशिश करूँगा (ग) सुविधा, आराम या सामाजिक कार्यों के लिए कानून को टालकर या गुप्त रीति से चीज नहीं खरीदूंगा। (घ) मै किसी को रिश्वत नहीं दूंगा और दूसरों की अपेक्षा खुद के लिए बेजा फायदा उठाने के आशय से न किसी से सिफारिश-पत्र ही लूँगा।

"(३) सरकारी कर्मचारी या सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के नाते मे किसी से रिश्वत या बख्शिश नहीं लूँगा और न मेरे कर्त्तव्य-पालन में, अधिकारी या बड़े आदमियों के प्रभाव से च्युत ही होऊँगा।

"मैं ज्यादा से ज्यादा लोगो को शुद्ध व्यवहारी बनाने की कोशिश करूँगा।"

"मेरी इन सदिच्छा के प्रतीक के रूप मे बीमारी या अन्य अनिवार्य कारणो की दशा को छोड़ कर, मै रोजाना अपने मकान की या आस-पास के हिस्सो या कपडे वर्तन आदि की सफाई स्वयं करूँगा और ऐसा करते हुए ऐसी भावना करूँगा कि इस बाहरी सफाई से मुझे अपने हृदय की सफाई और नीति में आगे बढ़ना है।"

इस विषय में फिलहाल सारा पत्र-व्यवहार नीचे के पते पर करें। कृपया-पत्र पर 'शुद्ध व्यवहार-सम्बन्धी' ऐसा स्पष्ट लिखें।

पता:— मन्त्री, सेवा-समिति

मारफत, श्री कृष्णदासजी जाजू, बजाजबाड़ी, वर्धा (म० प्र०)

भारत के नव-निर्माण में कठिनाइयाँ

(मानव धर्म मासिक से)

बाबूगीरी

आज प्रायः भारत का प्रत्येक युवक नौकरी की खोज करता है, उसकी भावना दास बनने की है स्वामी बनने की नहीं। जिन युवकों के मजबूत कन्धों पर देश का भार है, जिनके बलिदानों की नीव पर स्वराज्य का भव्य-भवन बन रहा है और जिनके परम-पुरुषार्थ तथा पराक्रम पर भारत माता को गर्व है, उन युवकों ने यह समझ लिया है कि 'स्वराज्य हमारे तप से प्राप्त हुआ है तो भोग भी हम ही भोगेगे, बड़े-बड़े पद हमें मिलने चाहिये और शासन में हमारा अधिकार होना चाहिये।' इन विचारों ने शासन सम्बन्धी निपुणता और सम्पन्नता को नष्टकर दिया है। सभी नौकरी चाहते है, अपना अधिकार जमाना चाहते हैं, पर जन्म-सिद्ध अधिकार की रक्षा करने की योग्यता पैदा नही करते। यद्यपि ये सब अपने को जनता का सेवक कहत हैं, परन्तु गाँधीजी के सिद्धान्त से सेवा-त्याग के बिना सम्भव नहीं है। नौकरी चाहने वाले चाहे स्वतन्त्रता की लड़ाई के सैनिक हों अथवा कोई और हो, उन्हें अपनी योग्यता पर ध्यान देना चाहिए जेल जाने का प्रमाण-पत्र दिखाकर मित्रता या दलबन्दी के बल पर सिफारिश अथवा प्रभाव से जो बडे पदो पर नियुक्ति चाहता है उसमे यदि योग्यता नहीं है तो वह देश-माता के साथ विश्वासघात करता है और देश की शक्ति घटाता है।

नौकरी की भावना अधिकार प्राप्त करने के लिये और सत्ता लेकर अपने ही भाइयों को भयभीत करने के लिये यदि है तो वह सब प्रकार से निकृष्ट तथा त्याज्य है। देश की शासन सम्बन्धी व्यवस्थाओ को मजबूत करने का मार्ग नौकरी पाने का

प्रयत्न नहीं, अपने को अर्पण कर देना है। जहाँ तक पेट पालन और तन ढकने का प्रश्न है, उसका हल स्वयं हो जाता है।

स्वराज्य का आगमन कोई चक्र या झण्डा नहीं है, स्वराज्य जहाँ आता है वहाँ भूख, नंगापन, रोग और स्वराज्य का दर्शन देश का प्रतिभाशाली और सम्पन्न जीवन है। ऐसा जीवन बन जाने पर कोई भूखा नहीं रहेगा। अमेरिका, रूस आदि प्रगतिशील देशो में धन की कमी नहीं है, धन का झूठा त्याग भी वहाँ नहीं है, सबकी सब आवश्यकतायें पूरी होती हैं, और बालक नर-नारी पुरुषार्थी जीवन जीते हैं और अपने आपको धनवान्, भाग्यशाली तथा उच्च बनाने में अपने देश का घात नहीं करते। वे जानते हैं कि हमारा देश सुखी होगा तो हम सुखी होंगे। थोड़े से लोग वैभवपूर्ण जीवन जीयें, बड़े-बड़े बंगलों में रहे और शेष देशवासी दुःखी रहे, उनके पास रहने को स्थान न हो, वस्तुओं के अभाव में जीवन दुःखी हो तो देश-माता सुखी नहीं होगी।

आर्थिक उन्नति के लिये नौकरी नहीं व्यवसाय एक साधन है। विज्ञान कला कौशल दस्तकारी के सम्पूर्ण मौलिक-साधनो की सहायता से देश की आर्थिक दशा सुधारने का प्रयत्न होना चाहिये।

बनियागीरी

देश की आर्थिक उन्नति दस्तकारी और व्यापार के विस्तार पर निर्भर है। परन्तु सदियों की गुलामी और पश्चमीय सभ्यता के प्रभाव से हमारे देश मे अपने ही लिये सोचने की दुर्बुद्धि बन गई है। हमारे घर में अनाज भरा रहे, दूसरे चाहे भूखे मरें, हमारी सन्दूकों में कपड़ो के थान के थान हों, दूसरो को तन ढकने के लिए मिले या न मिले, हमारी तिजोरियां धन से भरी रहें दूसरों के पास जीवन की आवश्यकतायें पूरी करने

के लिये पैसा हो या न हो। इसी का नाम बनियापन है और इसी ने चोर बाजार तथा रिश्वतखोरी को जन्म दिया है।

भारतवर्ष मे धर्म और संस्कृति की बड़ी चर्चा होती है, लेकिन धर्म का आचरण यहाँ कितना है? धर्म भक्ति या ज्ञान केवल बुद्धि-विलास, दिखावे और धोखे के लिये रह गये हैं, व्यवहार के लिये नही हैं।

देश के नव-निर्माण के लिए अब हमारी प्रवृत्तियां बदल जानी चाहियें। धन, वैभव और सम्पन्नता उसी समय चिर-स्थाई और सुखदाई होंगे, जब हमारे प्रयत्नो में अधिकार पाने की इच्छा और स्वार्थ के स्थान पर सेवा तथा परमार्थ की भावना बलवती होगी। देश के कर्णधारो, सेवको और सपूतो को आज इस महान् सत्य की ओर आना है। यह निश्चित है कि नैतिक जीवन और सत्य के बिना स्वराज्य कुराज्य ही बना रहेगा। स्वराज्य की पूर्णता सत्य सेवा प्रेम और सद्भाव के कर्मों मे है।

यह कोई नियम नहीं हो गया है कि व्यापारी को अपना स्वार्थ ही साधना—धन ही बटोरना चाहिये। ऐसे व्यापार को हम व्यापार न कहकर चोरी कहेगे। जिस तरह सिपाही राज्य के सुख के लिए जान देता है, उसी तरह व्यापारी को जनता के सुख के लिए धन गवाँ देना चाहिये, प्राण दे देने चाहिए। सभी राज्यों में—

सिपाही का पेशा जनता की रक्षा करना है, धर्मोपदेशक का सत्य शिक्षा देना है, चिकित्सक का उसे स्वस्थ रखना है, वकील का उसमें न्याय का प्रचार करना है, और व्यापारी का उसके लिए आवश्यक माल जुटाना है।

इन सब लोगो का कर्त्तव्य समय आने पर अपने प्राण भी दे देना है। अर्थात्—

पैर पीछे हटने के बदले सिपाही को अपनी जगह पर

खड़े-खड़े मृत्यु स्वीकार कर लेनी चाहिए। प्लेग के समय भाग जाने के बदले चाहे खुद प्लेग का शिकार हो जाये, तो भी चिकित्सक को वहाँ मौजूद रहकर रोगियों का इलाज करते रहना चाहिए। सत्य की शिक्षा देने में लोग मार डाले तो भी मरते दम तक धर्मोपदेशक को झूठ के बदले सत्य ही की शिक्षा देते रहना चाहिए। न्याय के लिए मरना पड़े तब भी वकील को इसका यत्न करना चाहिये कि न्याय ही हो।

इस प्रकार उपर्युक्त पेशे वालों के लिए मरने का उपयुक्त समय कौन-सा है, यह प्रश्न व्यापारियों तथा दूसरे सब लोगों के लिए भी विचारणीय है। जो मनुष्य समय पर मरने को तैयार नहीं है, वह जीना किसे कहते हैं यह नहीं जानता। हम देख चुके हैं कि व्यापारी का काम जनता के लिए जरूरी सामान जुटाना है। जिस तरह धर्मोपदेशक का काम तनख्वाह लेना नहीं बल्कि, उपदेश देना है, उसी तरह व्यापारी का नफा कमाना नहीं किन्तु माल जुटाना है। धर्मोपदेश देने वाले को रोटी और व्यापारी को नफा तो मिल ही जाता है, पर दोनों में से एक का भी काम तनख्वाह या नफे पर नजर रखना नहीं है। उन्हे तनख्वाह या मुनाफा मिले या न मिले फिर भी अपना काम, अपना कर्त्तव्य करते रहना ही है। यदि यह विचार ठीक हो तो व्यापारी को ऊँचा दरजा मिलना चाहिये, क्योंकि उसका काम बढ़िया माल तैयार कराना और जिसमें जनता का लाभ हो उस प्रकार उसे जुटाना, पहुँचाना है। इस काम में जो सैकडों या हजारों आदमी उसके मातहत हों उनकी रक्षा और बीमार होने पर दवा दारू भी करना उसका कर्त्तव्य है। यह करने के लिये बहुत धीरज, बहुत स्नेह सहानुभूति और बहुत चतुराई चाहिये।

—महात्मा गाँधी

नैतिक पतन और उससे बचने के उपाय

(श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार का कल्याण में प्रकाशित लेख से)

ईश्वर, परलोक तथा पाप का डर तो शास्त्रों में अश्रद्धा होने से चला गया। समाज का डर भी जाता रहा, क्योंकि प्रायः समाज भर में यह पाप फैल गया, अतः कौन किसको बुरा कहे। बचा कानून, सो उसका डर भी अब प्रायः नहीं रहा; क्योंकि मेल-मिलाप से वह भी दूर हो जाता है। क्या कहा जाय। दिनो-दिन बुराइयाँ बढ़ती जा रही हैं और इस ओर प्राय बहुत ही कम लोगों का ध्यान है। तथा जिनका ध्यान है वे कुछ कर नहीं सकते या करने मे प्रमाद करते हैं। इस प्रकार पाप मे गौरवबुद्धि हो जाने के कारण क्या-क्या होने लगा है, इस पर जरा विचार कीजिये—

(१) रिश्वतखोरी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है, अवश्य ही उसके रूप और ढंग बदलते रहते हैं।

(२) डरा-धमकाकर, पकड़ने की धमकी देकर या पकड़ कर भी रुपये वसूल किये जाते हैं। पकड़ा-धकड़ी जितनी अपराध मिटाने के लिये नहीं होती, उतनी अपने स्वार्थ-साधन के लिये होती है। यथार्थ तथा बड़े अपराधी कम पकडे जाते हैं। बड़े अपराधियों पर आतङ्क जमाने के लिये छोटे ही अधिक शिकार होते हैं।

(३) व्यापारी लोग कर से बचने तथा भाँति-भाँति की अनीति को छिपाने के लिये रिश्वत देते तथा झूठे बही खाते बनाते हैं।

(४) भारत के बाहर से आनेवाली और बाहर भेजी जाने-वाली चीजों पर जो समय-समय पर प्रतिबन्ध लगाये तथा उठाये जाते हैं, उसमें कई बार तो ऐसे छिपे कारण होते हैं जो सर्वथा

अनीतिपूर्ण हैं। कुछ बड़े व्यापारियो को सप्ताहो पहले इसका पता लग जाता है कि अमुक तारीख को अमुक वस्तु पर प्रतिबन्ध लगेगा या उठेगा। बरं यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि कभी-कभी तो किसी एक या अधिक व्यापारियो के लिये ही प्रतिबन्ध लगता या उठता है। और वे प्रतिबन्ध लगने या उठने की नियत तारीख से पहले-पहले ही उक्त चीज प्रचुर मात्रा मे खरीद या बेच लेते हैं। फिर अकस्मात् घोषणा हो जाती है, जिससे बाजार में उथल-पुथल मच जाती है। फलत वे व्यापारी लाखो-करोडो का अनुचित लाभ उठाते है और बेचारे अनजान हजारों छोटे व्यापारी मारे जाते हैं! इस चिज को हम प्रमाणित नहीं कर सकते पर वे अधिकारी और व्यापारी अपनी-अपनी छाती पर हाथ रखकर इसकी सचाई को जान सकते है। भगवान् तो जानते ही हैं।

(५) नीच स्वार्थ और लोभ के वश होकर लोग, जहाँ सम्भव होता है, बिना किसी हिचक के असली चीजों के साथ नकली चीजें मिला देते हैं, यहाँ तक कि नकली चीजो को ही असली बताकर बेचते हैं। आटे में इमली के बिजो का चूर्ण बहुत मिलाया जाता है। घी में तो जमाया हुआ (वनस्पति) तैल मिलाया ही जाता है। कहीं-कहीं लोग चर्बी तक मिलाते हैं। पिछले दिनों सरसों के साथ भटकटैया के वीज मिलाकर तेल पेरा गया था, जिससे हजारो आदमी वेरी-बेरी रोग से पीड़ित हो गये थे चीनी मे पानी की नमी पीसी हुई हल्दी में पीली मिट्टी, बादाम की गिरी मे खुमानी की गिरी; बादाम रोगन मे पोस्त का तैल, शहद में चीनी की चासनी इसी प्रकार चावल, दाल, चीनी आदि में भी मिलावट होती है। पथ्य के लिये रोगियो को शुद्ध साबूदाना तक नहीं मिलता। शीशियो पर झूठे लेबल चिपकाकर नकली दवाइयाँ बेची जाती है। ऐसे खाद्य-पदार्थ और औषधियों

का सेवन करके चाहे कितने ही लोग मर जायँ, कमाने वालों को इसकी परवा नहीं है, वे तो इसको व्यापार का एक अङ्ग मानते हैं।

(६) अच्छा नमूना ना दिखलाकर घटिया माल देना, तौलमे कम देना या अधिक ले लेना, रुई या पाट को जल से भिगोकर उनका वजन बढ़ा देना, बाजार तेज हो जानेपर बेचे हुए माल को देने से इनकार कर जाना और मन्दा होनेपर खरीदा हुआ माल न लेना—आदि बातें तो आज व्यापार की चतुराई समझी जाने लगी हैं। उच्च सम्मान-प्राप्त बड़े-बडे उद्योगपति तथा व्यापारी इनको गौरव के साथ करते है!

(७) धर्म और ईश्वर के नाम पर भोले-भाले नर-नारियों को ठगने और उनका धन, शील आदि अपहरण करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। कई लोग तो अपने को भगवान् कहकर पुजवाते हैं।

(८) शिक्षाविभाग और डाक-तार विभाग तक में रिश्वत चलने लगी है और न देने पर काम बिगड़ जाता है। कोर्ट और रेलवे आदि में तो माँग-माँग कर ली दी जाती है।

(९) राजनीतिक क्षेत्र मे बढती हुई दलबन्दियाँ, एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न, दूसरे को गिराकर अपने को ऊपर उठाने की कोशिश, परनिन्दा में, दूसरे की अवनति में और दु.ख में सुख का अनुभव, लूट-मार, दूसरो को व्यर्थ हानि पहुँचाने की इच्छा, हिंसा तथा क्रोध मे गौरव-बुद्धि, दलों का बाहुल्य, धार्मिक क्षेत्र का पारस्परिक विद्वेष और स्वेच्छाचार आदि अनर्थ दिनों-दिन बढते ही जा रहे हैं।

(१०) सीनेमा, रेडियो तथा गन्दे साहित्य के द्वारा जनता में कामवासना की वृद्धि हो रही है और फलतः उच्छृङ्खलता तथा चारित्रिक पतन बढ़ रहा है। भले भले घरों के पुरुष और स्त्रियों में बड़ी तेजी से चरित्र का नाश हो रहा है और इस चरित्रनाश

में कहीं-कहीं तो गौरव का अनुभव किया जा रहा है।

(११) विद्यार्थी-जगत् मे उच्छृङ्खलता बढ़ रही है। शिक्षकों और विद्यार्थियों के सम्बन्ध अत्यन्त अवाञ्छनीय हो रहे है। गुरु-शिष्य की पवित्र मर्यादा प्रायः नष्ट हो गयी है और परस्पर प्रतिद्वन्द्विता तथा द्वेष के भाव बढ़ रहे हैं। चरित्र-नाश भी बड़ी तेजी से हो रहा है।

(१२) तरुणी कुमारियो और नवयुवको की सहशिक्षा सें भी चरित्र की पवित्रता का बड़ा ह्रास और नाश हुआ है तथा उत्तरोत्तर अधिक नाश हो रहा है। कहाँ तो जगज्जननी सीताजी ने पुत्र के समान सेवक ब्रह्मचारी हनुमान्‌जी का स्पर्श करना अस्वीकार कर दिया था और कहाँ आज अबाध संसर्ग को प्रोत्साहन दिया जा रहा है, सो भी शिक्षा के पवित्र नाम पर।

(१३) खान-पानमें हर किसी का जूठा खानेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है और इसे सुधार बताया जा रहा है। रेलो में, होटलो मे और घरों मे भी कॉच तथा चीनी मिट्टी के वर्तनों का प्रचार, जूते पहने हुए ही भोजन करना, किसी भी जाती के और कैसे भी गंदे रहने वाले आदमी के हाथों से खाना, जूठे हाथों जूठी चम्मच से खाने की सामग्री लेना, एक ही बर्तन में रक्खे हुए फल-मेवा-पान आदि पदार्थों को बहुत से लोगों का मुँह में हाथ या अँगुली देकर खाना, जूठे बर्तनोंमे ही चाय, सोड़ा, जल आदि पीना, बर्तनोंको केवल धो भर लेना, मांस–मछली मदिरा से भी परहेज न करना, अण्डोंका भोजनके रूपमें प्रयोग करना, खाकर हाथ मुँह न धोना कुल्ले न करना, और चलते-चलते खाना आदि ऐसी बातें हैं जिनसे पवित्रता का नाश तो होता ही है, तरह-तरह की बीमारियाँ भी फैलती हैं।

भ्रष्टाचार और अनाचारके ये थोड़े-से उदाहरण दिये गये हैं। न मालूम ऐसे कितने शारीरिक, वाचनिक और मानसिक

दोष हमारे अदर आज आ गये हैं। इन सबका कारण है—घोर विषयासक्ति और तज्जनित काम, क्रोध तथा लोभका आश्रय। भगवान और धर्मको भूल जानेपर मनुष्य असंयमी तथा यथेच्छाचारी होकर पतित हो जाता है और भ्रमवश उस पतनको ही उत्थान मानने लगता है। आज हमारे समाजकी यही दशा हो रही है। इस पतनके प्रबल प्रवाहको शीघ्र ही न रोका गया तो पता नहीं यह हमे कहाँ ले जायगा।

इसको रोकने के उपाय हैं— धर्म तथा भगवान्मे श्रद्धा उत्पन्न करना, भगवान्से प्रार्थना करना, परलोक और पुनर्जन्म मे विश्वास बढ़ाना, सद्ग्रन्थोका प्रचार करना, त्याग तथा प्रेमकी पवित्र भावनाएँ फैलाना, सयमका महत्त्व समझना, अहिंसा और सत्यका क्रियात्मक प्रसार करना, स्वार्थबुद्धिका नाश हो ऐसी शिक्षा देना, स्वयं निस्वार्थभाव से सबकी सेवा करके आदर्श उपस्थित करना, स्कूल-कालेजोंमें धार्मिक शिक्षा का अनिवार्य करना, तथा वैराग्य और भक्तिकी सच्ची भावनासे विषयवासनाओ का नाश करना, इनमे से जिनसे जिस क्षेत्र से जितना कुछ हो सके वही सचाई के साथ भगवान् पर विश्वास रख कर करना चाहिये।

कुदरत की अदालत

समस्या मुलक एकांकी

[श्री रामचरण महेन्द्र एम. ए. कोटा]

शान्ति मासिक पत्र से

[प्रस्तुत एकांकी का विषय स्वास्थ्य है। इसमें बड़े सुन्दर ढंग से यह चित्रित किया गया है कि प्रकृति किस प्रकार अमीर,

गरीब, पूंजीपति, मजदूर, स्त्री, पुरुष, बालक सबको समान दण्ड देती है।]

पात्र—कुदरत—अदालत का जज, पिचके गाल का विद्यार्थी, रोगिणी महिला, जल, धूप, मिट्टी, आसन, प्राणायाम, पूंजीपति व्यायाम, मालिश, उपवास, विचार इत्यादि डा० आरोग्य—पेशकार।

(एक सुन्दर प्राकृतिक स्थान में एक सुन्दर चबूतरे पर, जिस पर हरी दूब की मखमल बिछी है दोनों ओर सुन्दर पुष्प खिल रहे है। कुदरत विराजमान है। सामने मानव वेश में जल, धूप, मिट्टी, आसन, प्राणायाम, मालिश, उपवास, विचार बैठे हैं।)

एक चपरासी—"सावधान! सावधान!! हिज ऐक्सेलेन्सी कुदरत पधार रहे हैं।"

(सब सावधान होते है। धीरे-धीरे एक लम्बे डील-डौल के स्वस्थ पुरुष का प्रवेश। मुख पर प्रखर तेज, वस्त्र हरित पत्तो से बने हुए गले मे पुष्पहार।)

कुदरत—बैठिये! बैठिये!! मुझे बड़ा खेद है कि आज इतनी देर हो गई। अब शीघ्र ही अदालत की कार्यवाही शुरू कर देनी चाहिये। आप सब लोग मुझे फैसलों में सहायता करें।

(बैठता है।)

अदालत का पेशकार डा. आरोग्य—"योर ऑनर! आज हमारे पास काम बहुत अधिक है, इसलिए आज्ञा दें तो मुकदमें पेश किए जायें।"

कुदरत—"हां,! हां!! आप अदालत की कार्यवाही प्रारम्भ कीजिये।"

डा० आरोग्य—"मुजरिम को पेश करो।"

(एक चपरासी एक रोगिणी स्त्री को लेकर आता है।)

डा० आरोग्य—"श्रीमान्! पहला मुकदमा इस औरत का है। यह अपना सौन्दर्य खो बैठी है। इनके मुखड़े पर दाग, कीलें, छाईयाँ, झुर्रियाँ, मुहासे इत्यादि भरे हुए हैं। इसका शरीर सूखता जा रहा है। यह साधारण भोजन भी नहीं पचा पाती। इसके रक्त का रंग पीला पड़ता जाता है। भोजन तथा रहन-सहन में इसे रुचि नहीं है। इसके मुकद्दमे की पूरी मिसल पेश है।

कुदरत—(सोचता है और मिसल को ध्यान से देखता है।) "हमने इसका मुकद्दमा देखा। इस औरत ने अपने खान-पान में असंयम' प्रारम्भ किया। इसका भोजन तले हुए पदार्थ, चाट पकौड़ी, चाय, मिर्च मसाले इत्यादि उत्तेजक पदार्थ रहते थे। इस पर कब्ज का आक्रमण हुआ। मल मार्ग स्वच्छ न रहने के कारण इसे रक्त विकार होने लगा। इसके विचार अश्लील हो गये। यह आरामतलब बन गई। आलस्य में रहने के कारण इसके चांद से शीतल किरणों के समान हृदय में काम वासना तांडव मचाने लगी। इसका मुख सौन्दर्य नष्ट हो गया।"

(स्त्री से)

'क्या तुम रात में आमोद-प्रमोद में व्यस्त नहीं रहती थीं।'

स्त्री—"जी हजूर! मैं हर दूसरे दिन सिनेमा जाती थी। रात में देर से लौटती थी। सिनेमा में बर्फदार आइसक्रीम, सोडा, पकौडी इत्यादि मुझे बहुत भाता था। मेरे विचार बिल्कुल शुद्ध नहीं थे।"

कुदरत—'ठीक है! तुम अपना अपराध स्वीकार करती हो।'

स्त्री—"जी हां, लेकिन दयानिधान! मुझ पर सजा से पहले दया की जाय! दया की भीख!!"

कुदरत—चुप रहो! हमारी अदालत में दया नाम की कोई चीज नहीं। यहां न्याय में हम किसी की परवाह नहीं करते। राजा, गरीब, बच्चा, बुड्ढा सभी को हमारी सजा भुगतनी

पड़ती है।"

स्त्री—"मुझे, एक और अवसर दिया जाय।"

कुदरत—"अच्छा, तुम्हे अपने आपको सुधारने का एक अवसर दिया जाता है। मैं तुम्हे व्यायाम, उपवास, विचार इत्यादि महानुभावो के सुपुर्द करता हूँ। यदि तुम इनके आदेश में रहोगी तो पुन तुम्हारा छुटकारा हो सकता है। तुम्हें दो महीने का अवसर और दिया जाता है। तब तक के लिए तुम्हारे मुकद्दमे पर दूसरी तारीख डाली जाती है।"

दूसरा मुजरिम हाजिर किया जाय!

(एक पूंजीपति पेट पर हाथ धरे आता है।)

डा० आरोग्य—"दूसरा मुजरिम यह पूंजीपति है। इनके एक बड़ी फर्म है। खूब रुपया आता है। इन्हे चलने-फिरने, परिश्रम करने से कोई प्रयोजन नहीं है। बढ़िया माल खाने के लिये, मोटरकार घूमने के लिये, नाच घर, वैश्या, सिनेमा, शराब आमोद-प्रमोद के लिए मिलते है। इनका हाजमा वेकार हो चुका है, और अब ये पेचिश के क्रमिक रोगी हैं। श्रीमान्! यह है इनके मुकद्दमे की फाइल।"

(फाइल कुदरत के हाथ मे देता है।)

कुदरत—(फाइल देखकर) "तो आप ही यहां के प्रसिद्ध सेठ दानमल हैं। आपने पिछले साल ३० हजार का फायदा कन्ट्रोल से किया है। आप ही ने रेस्टोरॉ में सब से अधिक रुपया शराब और मांस भक्षण मे व्यय किया। आप जीभ की ताल पर नाचते हैं। आप स्वाद भोजन के वश मे हैं। उचित अनुचित का विवेक आपको नही है।"

पूंजीपति—"हजूर! मैने सब कुछ किया है। अपने पेट पर बडे अत्याचार किये हैं। मैने समय असमय भक्ष्य अभक्ष्य का कोई ध्यान नहीं रक्खा है ...।"

कुदरत—"देखो! छिपाओ नहीं! छिपाओगे तो हम सब कुछ स्वयं कहेंगे। साफ-साफ कह डालो। अपने पाप को स्वीकार कर लेने से सजा में कमी हो सकती है।"

पूंजीपति—"लंगोट पर मुझे अधिकार न रहा। मेरा विवेक भ्रष्ट होगया। मैंने अश्लील अनैतिकता के दुष्कर्म किए। मुझे इन्द्रिय के गुप्त रोग हो गये। मै इन गुप्त रोगो के कारण मर रहा हूँ धीरे-धीरे प्राण निकल रहे हैं। एक ओर पेट बढता चला जाता है, दूसरी ओर मूत्र मार्ग मे भीषण पीड़ा हो रही है।"

कुदरत—"तो, तुम अपराध स्वीकार करते हो?"

पूँजीपति—"जी, दया निधान! मुझे कुछ टाइम और दिया जाय।"

कुदरत—"देखो सेठ! तुम्हारे कसूर इतने अधिक हैं कि हम तुम्हे बडी भयानक सजा दे सकते हैं। तुम्हारा पेट फट सकता है। तुम्हारे गुप्त अग कण कण हो कर गल कर गिर सकते हैं। तुम्हारे सब अग विषैले होकर कुष्ट रोग से पीड़ित हो सकते हैं। तुम कुत्ते की भाँति मर सकते हो.   ।"

पूँजीपति—"कृपा कीजिए महाराज! मुझे इन भयंकर रोगो से दूर रखिये। मेरे कसूर माफ कीजिए।"

कुदरत—"माफी नहीं मिलेगी। तुम्हे सजा के तौर पर ब्रह्मचारियो के गुरुकुल में रहना होगा। वहाँ तुम पर सात्त्विक जीवन का कठोर नियंत्रण रहेगा। तुम्हे सादा भोजन व्यायाम और नियमित परिश्रम करना होगा। तुम्हे तीन वर्ष तक स्त्री ससर्ग नहीं करने दिया जायेगा। इसे गुरुकुल ले जाया जाये।"

(चपरासी पूँजीपति को ले जाता है।) थोडी देर में एक पिचके गाल, धसी हुई आँखें तथा पीले रग का विद्यार्थी आता है।

डा० आरोग्य—"यह मुजरिम एक विद्यार्थी है। इसने

पढ़ते-पढ़ते अपने स्वास्थ्य का दिवाला निकाल लिया है। दिन रात पढ़ता रहा है। रात में बिजली की तेज रोशनी में पढ़ने के कारण इसकी दृष्टि कमजोर हो गई है। अब इससे कठिनता से चला फिरा जाता है। यह इसका पूरा केस लीजिए।"

(फाइल पढ़ कर)

कुदरत—"इसकी फाईल देखने से मालूम होता है कि इसने व्यायाम, खेल कूद और मनोरंजन का ध्यान नहीं रक्खा है। समय की पाबन्दी का इसे ख्याल नहीं रहा। रात्रि में ग्यारह बजे जब सब सो जाते थे, तब यह पढ़ना प्रारम्भ करता था। रात भर पढ़ता रहता और जागने के लिए पांच बार चाय पीता था। इसकी आंखे अन्दर धस चुकी हैं, पेट बेकार हो गया है। मामूली चीजें भी नही पचा पाता। अतः इसे यह सजा दी जाती है कि इसे पुस्तकों से दूर रक्खा जाय। बाग में पेड़ों को सींचने और खुदाई का काम करने को दिया जाए। आज चूँकि काम काफी हो चुका है, इसलिए अदालत बरखास्त की जाती है।"

(चपरासी लड़के को ले जाता है)

पर्दा गिरता है।

शील-व्रत-ग्रहण

एक सच्ची घटना—

हाल हीमे राजस्थान के एक गाँव मे एक मुनि महाराज ने चातुर्मास किया उस दिन, पर्यूषण-पर्व के छठवें दिन, संयम-धर्म की बारी थी। उपदेश देने के बाद मुनि महाराज ने गृहस्थों से शील-व्रत, एक-देश ब्रह्मचर्य-व्रत, लेने के लिए अनुरोध किया। परिणाम स्वरूप एक सिरे से पुरुषों ने स्व-दारा सन्तोष का,

'पत्नी-व्रत' का, नियम लेना शुरू किया। वहीं बैठे एक गृहस्थ महोदय एक नम्बर के वेश्यागामी और लम्पट थे। जब उनकी बारी आई तो खडे होकर और हाथ जोड़कर कहने लगे—महा-राज! नियम लेकर तोड़ने से नियम न लेना अच्छा है। मुझसे यह व्रत नही सधेगा। सभी ने इस स्पष्टवादिता को सराहा और मुनि महाराज ने भी जिद न कर कुछ हलके-फुलके नियम उन्हे दिला दिये।

जब सभी उपस्थित पुरुष नियम ले चुके तब स्त्रियो की बारी आई। एक-एक ने बारी-बारी से उठकर शील-व्रत का, पति व्रत या पति परायणता का नियम लेना शुरू किया। यह सिलसिला जारी था कि अनायास बाधा पड़ गई। एक युवती ने खड़े होकर, स्पष्ट शब्दो में, साथ ही स्थिरस्वर से, कहा—'भग-वन्! यह व्रत बहुत ही कठिन है। मुझ से नहीं पल सकेगा। मुझे क्षमा करें।'

सारी उपस्थित मण्डली सन्न रह गई। एक स्त्री भरी सभा मे शील-व्रत लेने में आनाकानी करे, पतिव्रत-धर्म निभाने मे अपनी असमर्थता प्रकट करे, यह कल्पना से परे की बात थी। कितनों की ही भृकुटी तन गई। कइयो के नेत्र जलने लगे। मुनि महाराज भी स्थिर न रह सके। तभी उस स्त्री ने धीरे-धीरे पर दृढ़तापूर्वक कहा—"महाराज! मैं तो नारी हूँ अबला हूँ। मुझ में वह शक्ति कहाँ कि ऐसा कठोर नियम ले सकूँ, और लोक लज्जा वश ले भी लूँ तो निभा न सकूं? जो मेरे बड़े है, पूज्य हैं और जो पुरुष होने के नाते मुझसे कहीं अधिक सामर्थ्यवान हैं उनसे ही जब यह नियम नहीं सध सकता है तो मैं क्या चीज हूँ? मैं तो उन्हीं के चरण-चिन्हों पर चलने वाली दासी हूँ। जो भी रास्ता मुझे वे दिखाएँगे, उसी पर चलना मेरा धर्म है। फिर, महाराज! यूं भी जिस नियम को मेरे पतिदेव नहीं ले सके हैं,

इसलिए कि वह कठिन है, उसे ही सब के समक्ष लेकर मैं उसका अपमान करने की धृष्टता करूँ, यह मुझसे न हो सकेगा। मुझे क्षमा कीजिये, मै हाथ जोड़ती हूँ।" यह कहकर वह स्त्री बैठ गई।

तुरन्त ही सब, घूंघट में छिपी उस स्त्री को पहचान गए। मुहल्ले मे, बिरादरी मे, वह स्त्री अपनी सुशीलता व सच्चरित्रता के लिए प्रसिद्ध थी इसलिए सभी की दिलचस्पी बढी और चारों ओर, विशेषतया स्त्रियों में, फुसफुसाहट होने लगी। इधर सभी पुरुषो की निगाहे उन वेश्यागामी महोदय की ओर खिंच गई और वह गड गई। हर किसी की दृष्टि में लांछन था, तिरस्कार था। अचानक सभी ने देखा—वे महोदय शर्म से गरदन झुकाकर खड़े हो गए और हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए बोले—"महाराज! आपके समक्ष और सारी बिरादरी के बीच मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कभी वेश्यागमन नहीं करूँगा, कभी पर-स्त्री सेवन नहीं करूँगा।" तभी वह स्त्री—इन महोदय की पत्नी—खड़ी हो गई और उच्च स्वर में बोली—भगवन्! मैं भी यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं निष्ठापूर्वक शील-व्रत का, पति-व्रत धर्म का पालन करूँगी।"

सारी सभा मुग्ध और गद्गद् होगई। कई मिनट तक तालियाँ बजती रहीं, शीतल-धर्म की जय-जयकार होती रही। सभा भंग होने के उपरांत घर लौटते हुए लोग उस स्त्री के सत्साहस की सराहना कर रहे थे, कह रहे थे—"ऐसी देवियाँ घर-घर हो जाएँ तो पुरुषो की अकल ठिकाने आ जाय।"

उस दिन के बाद उन शील-व्रतधारी महोदय का जीवन ही पलट गया। अब वे अपनी पत्नी के प्रति पूर्ण रूप से सच्चे हैं।

—श्रमण से साभार

स्त्री-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में एक अंग्रेज न्यायाधीश का मत

(कल्याण मासिक से)

अभी कुछ दिनों पूर्व सस्सेक्स (Sussex) नगर मे लार्ड जस्टिस डेनिंग नामक एक अंग्रेज न्यायाधीश ने भाषण देते हुए कहा कि 'मुझे सन्देह है कि स्त्री-जाति को दी जाने वाली स्वतन्त्रता कभी भलाई के लिये हो सकती है।' उन्होने सभा को स्मरण दिलाया कि स्त्री की स्वतन्त्रता रोमन-समाज के लिये एक भारी अभिशाप सिद्ध हुई। इसके कारण रोमन-समाजमे सदाचारका ह्रास हुआ और दाम्पत्य-जीवनके पवित्र बन्धनका जैसा पतन हुआ, ह्रास का परिचय पाश्चात्यजगत् को इससे पहले कभी नहीं हुआ था। नैतिकताके ह्रास के कारण ही रोमन-साम्राज्यका पतन हुआ। उनके कथनानुसार आधुनिक जगत्मे स्त्री केवल स्वतन्त्र ही नहीं, बल्कि कानून की वह एक उच्छृंखल प्रेयसी है, और पुरुष एक सहिष्णु भारवाहक घोड़े के समान है। कानून ने पति पर भारी दायित्व का बोझ लाद दिया है, उसे पत्नी का भरण-पोषण करना ही पड़ेगा, और इसके लिये उसे घर के बाहर कोई न कोई काम-धन्धा करना ही होगा। इस पर भी पत्नी अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये अपने पतिके नाम से कोई भी वस्तु उधार ले सकती है; परन्तु वह बेचारा ऐसा नहीं कर सकता, चाहे उसकी स्त्री कितनी ही धनाढ्य हो और चाहे वह कितना ही कमाती हो। स्त्री अपनी सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिये पति पर अदालत में मुकदमा चला सकती है, परन्तु पति इस मामले मे असहाय है, वह ऐसा नहीं कर सकता। यदि पति-पत्नी में कहीं अनबन हो गयी या विच्छेद की नौबत आ गयी तो स्त्री के पास जीवन निर्वाह के लिये पर्याप्त साधन न होने पर और

उस अवस्था मे जब कि उसने अपने व्यवहार से अपना अधिकार नहीं खो दिया है, अदालत पुरुषो को ही बाध्य करेगी कि वह स्त्री के जीवन-निर्वाह के लिये प्रबन्ध करे। बेचारे पुरुष को नियमानुसार बाध्य हो कर यह सब करना पड़ेगा।

लार्ड जस्टिस डेनिंग ने स्त्री-पुरुष की समानता के प्रभाव पर इसी प्रकार की और कई एक सरल दलीलें दी हैं, उनका कहना है कि—'स्त्री जब घर के बाहर किसी काम को करने लगती है, जो वह उसे अन्य पुरुष के अधिक सम्पर्क में ला फेंकता है, वहाँ वह उन प्रलोभनों में फँस सकती है, जो उसे घर पर सुलभ नहीं होते।' अधिक स्वतन्त्रता देने से स्त्री के अधिक बिगड़ जाने की सम्भावना है, ऐसा उनका मत है। रोम मे ऐसी स्वतन्त्रता का यही दुष्परिणाम हुआ है।

परिश्रम और सट्टा

पहले के जमाने मे परिश्रम प्रधान पुरुषार्थ एक आजीविका का साधन था पर आज सट्टेबाजी ने लाखो मनुष्यों को आलसी एव अपव्ययी बना डाला है गाढ़े परिश्रम की कमाई का खर्च करते समय भी बड़ा विचार होता था पर अब तो दो लाये चार खाये तेरह लगाये इत्यादि जबान की लपालप से ही धन बरसने लगा समझते हैं,तब शरीर को कष्ट देने और पूँजी लगाने की आवश्यकता ही क्या है? आज प्रत्येक नगर में देखिये सट्टेबाजी का बाजार गरम है। मारे शहर में चहल-पहल, भीड़-भाड़, हो-हल्ला नहीं नजर आयेगा जहाँ सट्टा होता है मर्दों की कौन कहे अब तो घर की औरतें तक चांदी का, पाट का, आखरो का और न जाने अन्य कितने प्रकार के सट्टे करने में प्रवीण हैं और कर रही हैं सट्टे में धन आते देर नहीं लगती और परिश्रम भी कुछ नहीं होता अतः वह धन आते ही पानी की तरह बेतरह खर्च किया जाता है पर चले जाने पर दीवाला; निकाल घर का घाटा

बाजार मे बाँट दिया जाता है सट्टेबाजी में दुश्चिन्ता और अशान्ति हर समय बनी रहती है इससे स्वास्थ्य पर भी बड़ा बुरा असर पड़ता है बुरी संगत मिलने से अनेकों दुर्गुण घर कर लेते हैं जीभ की चाट इतनी बढ़ जाती है कि चलते फिरते स्वादिष्ट वस्तुओं पर चाहे वे स्वास्थ्य को नष्ट करने वाली क्यों न हो परन्तु दो चार रुपये रोज खर्च कर डालना साधारण-सी बात हो जाती है। मुफ्त का पैसा आया कई लुच्चे-लफंगे बाबू साहब के हाजरिये बन गये। वे भी माल उड़ाते हैं तथा घर के बच्चों की आदत भी प्रारम्भ मे ही बिगड़ जाती है इस प्रकार जीवन की बड़ी भारी बरबादी इस सट्टेबाजी ने कर दी; यह हम सब को प्रत्यक्ष है।

अनावश्यक हस्तक्षेप

अपने सगे-स्नेही, भाई-बन्धु, मित्र पड़ौसी के बीमार हो जाने पर हमारे यहाँ साता पूछने को जाने की उत्तम प्रथा है, साता पूछने को आने वाले के दिल में उस रोगी मनुष्य के शीघ्र चंगे हो जाने की प्रबल कामना होती है। उस रोगी की सेवा सुश्रुषा में लगे हुए व्यक्तियों को तन, मन, धन से सहयोग देना और रोगी को सान्त्वना विश्वास शीघ्र निरोग होने का दिलाना यह साता पूछने वाले व्यक्ति का कर्त्तव्य है। मगर हम अक्सर देखते हैं कि साता पूछने को आने वाला व्यक्ति उस समय तक अपना आना सार्थक नहीं समझता जब तक कि स्वयं कष्ट पाते हुए रोगी को छेड़ कर, उसकी शक्ति उपरान्त अपनी तरफ खींचने और उससे वार्तालाप करने का उद्योग करते हैं। यहा तक तो क्षम्य है मगर बात २ मे रोगी की दवादारू जो चल रही है उस पर से रोगी का विश्वास हटा देते हैं और अपनी ओर से चिकित्सा बतलाने लग जाते हैं ऐसे ही रोगी ने जिस वैद्य या डाक्टर का

इलाज कराया और व चँगा हुआ उसकी मिसाल दे दे कर चलती दवा पर दुगुन्छा उत्पन्न कर देते है। यह सब करने के बाद ऐसी व्यवस्था में स्वयं सहयोग कभी नहीं देते। एक हिदायत उल्ला का नाटक कर जाते हैं। रोगी की सेवा चाकरी करने वालों को उन आगन्तुक महाशय की खातिरदारी में भी अपना समय देना पड़ता है। यह तो साता पूछना क्या है; प्रत्यक्ष असाता देना है। वैद्य डाक्टर रोगी से बात करने,जोर से बोलने की मनाई करते हैं तब भी यह आगन्तुक महाशय बाज नहीं आते, ऊपर के लोगों का ऐसे महाशयो को अन्दर रोगी तक जाने से रोकने का साहस नहीं होता क्योंकि यदि ऐसा किया तो यह महाशय अपना अपमान समझेंगे, नाराज हो जावेंगे।

स्वच्छता और शृङ्गार

इसमे किसी को इनकार नहीं कि शरीर और पहनावे की स्वच्छता प्रत्येक प्राणी के लिए अनिवार्य है परन्तु ऐसी स्वच्छता का आदर्श दिखाने से न केवल आर्थिक कठिनाइयाँ बढती है वरन् शिष्टाचार और सभ्यता पर भी इसका विषैला प्रभाव पड़ता है स्वच्छता का दूसरा नाम है यदि इस स्वच्छता को सादा और साधारण तरीको पर अपनाया जाये तो इससे न शिष्टाचार बिगड़ेगा और न ही अन्य कठिनाईयों की सम्भावना हो सकेगी साहसी मनुष्य का एक अमूल्य आभूषण है जिससे विचार शुद्ध होते हैं और मानसिक दृढ़ता मनुष्य को वास्तविक रूप में मानवता की शिक्षा देती है वैसे भी सुर्खी और पौडर स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है पौडर और सुर्खी चमड़ी को खुरदरा बनाकर फाड देती है जिससे शरीर के छिद्रों द्वारा भीतर जाकर रूधिर को भी विषैला कर देती है अनुचित अंश के मिलने से रक्त अशुद्ध होकर कई रोगों का केन्द्र बन जाता है।

मान लिया कि हमारे धार्मिक ग्रन्थों ने स्त्री श्रृंगार की आज्ञा दी है परन्तु इस श्रृंगार का यह अर्थ नहीं कि आप अपनी वहु बेटियों को सुर्खी और पौडरों से लिप्त कर उन्हें सभा की अप-सरायें और सुन्दर तितलियां बनाकर गणिकाओं का रूप दें वास्तव में स्त्री-श्रृंगार का महत्त्व तो यह था कि युवतियां घरों में रह कर अपने पति देव की प्रसन्नता के लिये श्रृंगारादि करें उन्हें रिझाने के लिये अपने घरों में ही सुन्दर वस्त्रों सुगन्धियों और भूषणादि अन्य श्रृंगार की वस्तुओं से सुशोभित होकर अपने पति देव की प्रसन्नता की प्राप्ति का कारण बनें और अपने पति-व्रत धर्म का पालन करें। एक कवि महोदय का कथन है:—

पति व्रता मैली भली, काली कुचलि कुरूप।
पति व्रता के रूप पर, वारों कोटि स्वरूप॥

परन्तु इस आधुनिक काल में श्रृंगार का यह अनुचित प्रयोग इसके सही और शिक्षा दायक भावों पर नाशकारी प्रहार है और खुले शब्दों में सभ्यता और धर्म की मर्यादा का घातक है।

मृत्यु पर बैठने जाना

जब रेल, मोटर आदि का यातायात का साधन नहीं था उस जमाने में मृत्यु पर उनके संतप्त परिवार को सान्त्वना देने और मरने वाले के अभाव में घर की आर्थिक स्थिति को बनाये रखने में सहयोग देने के लिए यह रिवाज था। आए हुए सगे-सम्बन्धी अपनी मन्त्रणा वह सहयोग से ऐसी व्यवस्था बाँधते कि मरने वाले के अभाव में उसके घर की मान-मर्यादा और आर्थिक स्थिति में कमी न होने पावें, अपनी शक्तिअनुसार जिम्मेवारी लेकर काम का पटवारा कर लेते यदि घर के अगवा की मृत्यु

पर कोई सगा-सम्बन्धी नहीं आता तो यह समझा जाता कि उससे हमारा सम्बन्ध विच्छेद हो गया, ऐसे सहयोग देने को आने वाले सम्बन्धियों को जितने ज्यादा फासले से वे आते उतने ही ज्यादा समय के लिये उन्हे रोका जाता ताकि उनके आने का थकेला उतर जावे, उन्हे घी आदि प्राप्त मात्रा में खिलाया जाता, कालान्तर से यह सुप्रथा कुप्रथा में बदल गई है। आने वाले महाशयों ने अपनी जिम्मेदारी व कर्त्तव्य को ताक मे रख दिया है। उनके आने की उम्मेद में मृत्यु वाले घर के प्रधान व्यक्तियों को अपना दूसरा कार्य रोक कर इन्तजारी में घर पर डटे रहना पड़ता है। आने वाले रो-रुवा कर दामाद से बढ़कर खातिरदारी कराकर चले जाते है एक तो उसका आदमी गया दूसरा इनकी खातिरदारी में समय व रुपया गया, काम-धन्धे से गया, कर्जदार हो गया। एक कहावत हो गई है कि—"राडे रोती रहेगी पाहूणे जीमते रहेंगे।" अब यातायात की सुविधा हो गई है मगर इनके रुकने का वही समय एक रात, दो रात का कायम है। सवारी में आने जाने से थकान नहीं होते हुए भी वही "नाई" की पगचपी वगैरह कायम है। आज के जमाने में महाजनों की आर्थिक स्थिति विषम हो गई है। सरकार कानून पर कानून बना कर इनके रोजगार याने आर्थिक स्रोत को रोकती जा रही है। आज "पूँजी" वालो के नाश की भावना बढ़ती जा रही है। भगवान् जाने, महाजन बनिये की क्या गति होने को है। अतः निवेदन है कि इस प्रथा में जो महान् हित भरा हुआ था, तदनुसार मृतक के सम्बन्धियों को तन, मन, धन से ऐसी सहायता व व्यवस्था करनी चाहिये कि जिससे मृत्यु से जो अभाव हो गया है उस कारण उस घर की व्यवस्था न बिगड़ने पावे।

समस्या पूर्ति—

धनवतीदेवी जैन 'राज', c/o वैद्य श्यामलालजी जैन, पो० बिलसी (बदायूं)

विश्व भूल बैठा मानवता, दानवता के आगे ।।
स्वार्थ साधना हेतु मनुज ने माया जाल बिछाए,
अपने चंचल वैभव दल पर फिरते हैं इठलाए,
रोद दिया पग तले उन्हे जो दीन हीन कहलाए,
अपनी अहंबुद्धि पटुता पर लेश नहीं शरमाए,
विहस उठा सहसा खल दानव अहा भाग्य हैं जागे ।
विश्व भूल बैठा मानवता, दानवता के आगे ।।१।।
अट्टहास कर उठा प्रकृति का ताण्डव नूतन नर्तन,
जिसमें पतिक्षण प्रति प्राणी में होता है परिवर्तन,
आज चतुर्दिश गूंज उठा उन दुखियो का आक्रन्दन,
कैसे अनुभव हो सकता ! शुष्क हृदय का स्पन्दन,
जीवित ही मर जाने मे जो माने भाग्य अभागे ।
विश्व भूल बैठा मानवता, दानवता के आगे ।।२।।
अन्न वस्त्र की कठिन समस्या जिनको उलझाती है,
इतने पर ही हा कुरीतिया पीछे पड़ जाती हैं,
कन्याओं का जन्म जहाँ शुभ चिह्न न माना जाता,
हो भरपूर दहेज न तो अनमेल व्याह हो जाता,
वलि होती लाखों नारी राक्षसी प्रथा के आगे ।
विश्व भूल बैठा मानवता, दानवता के आगे ।।३।।
चेतो बहनों ! उठो शीघ्र ! अपने दृढ़ बन्धन खोलो,
घोर निशा से उदय-ज्योति अपनी राह टटोलो,
एक बार फिर एकत्रित हो जीवन सूत्र पिरोलो,
अपनी अन्तिम श्वासो तक जयवीर अहिंसा बोलो,
हार मान लेगी दानवता, मानवता के आगे ।
विश्व भूल बैठा मानवता, दानवता के आगे ।।४।।

दानवता के आगे

विश्व भूल बैठा मानवता दानवता के आगे,
मैं सम्राट् बनूं जगती का आकांक्षा मानव की।
एकछत्र हो राज्य हुकूमत चले कि ज्यों दानव की,
बना रहूँ खूंखार कि जग में सभी प्रकंपित होवें।
मेरी इच्छा से ही जगजन रोवें या हर्षित होवें,
हिंसा की कर्कशता नर के रोम रोम मे छाई।
वैर फुट की बुरी भावना कौम-कौम मे आई,
संस्कृति-कला-सृजन जन-जीवन नाश रहे नर पुतले।
मानवता के खून के प्यासे अति निकृष्ट नर उबले,
जन्म हो चुका तृतीय युद्ध का भयप्रद हौले-हौले।
लिखने मे संलग्ना चिरन्तन लोहु-धार से अपनी,
नम आदिम ढांचे कंकालो की काते कथा की कथनी।
नभ से अणु-बम यान गैस हा ! भूपर धूल उड़ाते,
अधम नृशस कार्य कर दभी सन से फूल जडाते।
युग के नूतन अस्त्र-शस्त्र सब तड़क-तड़क कर टूटे,
बारुदो से भरे हुये बम कड़क-कड़क कर छूटे।
मानव को है खुली चुनोती जो बर्बर बन अकड़ा,
इसकी जीवन-प्रगति शान्ति, सुख नाश-पाश मे जकड़ा।
लोह-शृंखला-बद्ध घृणिका इतिहास निरन्तर बढ़ता,
लोक लाज का भीना आँचल धीरे धीरे सडता।
किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ मनुज बन हुआ कुपथ का राही,
मानवता को कुचल बढ गया दानवता का चाही।
ईर्ष्या से सम्बन्ध जोड़ कर तोड़ प्रेम के धागे,
विश्व भूल बैठा मानवता दानवता के आगे॥

— जैन महिलादर्श से साभार

मुकदमेबाजी

मुकदमेबाजी वर्तमान सभ्यता की देन है। आप कचहरी जाकर इसका मजा देखिये—गरीब-अमीर सबके मन्दिर-मसजिद आज कचहरी है। साधारण तुच्छ बातों के पीछे हजारों-लाखों रुपया स्वाहा हो रहा है। जिसको चसका लग गया–बस, अपना नही तो पराया सही, मामला चले बिना नींद नही आती। झूठी गवाहियाँ देते-देते कइयों की जिन्दगी बीत जाती है। झूठ के बिना मामला चलता भी तो नहीं। धर्म गँवाओ, धन का नाश करो और हैरान हो। तीन तीन मजे इस रिपुराज में है। फिर छूटे भी कैसे ? हमारी बुद्धि का यहाँ दीवाला निकल जाता है।

आज सौ मे नब्बे पुरुष नशे के शिकार है। किसी को बीड़ी-सिगरेट-चिलम के धुएँ का नशा है तो किसी का चाय बिना काम नहीं चलता। अफीम, भाँग चरस, गाँजा और मदिरा का भी बोल-बाला है। सरकार ने कई तरह के प्रतिबन्ध लगा दिये है उन प्रतिबन्धो से भी अनीति बढ़ी है और अवैध रूप से नशे की चीजे बनती सुनी जाती हैं। भावों मे सुधार लाए बिना नियन्त्रण असफल ही है। हिसाब करके देखा जाय तो एक-एक नशे के पीछे करोड़ों रुपये खराब होते है और स्वास्थ्य की बरबादी तो निश्चित ही है। मैने हजारों मजदूरो और दूसरे शुद्ध कर्म करके पेट भरने वाले गरीबो की ओर लक्ष्य किया तो उनकी बरबादी का प्रधान कारण नशा ही प्रतीत हुआ। दिन भर गाढ़ा परिश्रम कर चार छः आने या कुछ ज्यादा पैसे कमाये, पर शाम हुई और गाँजे का दम लगाने तथा शराब पीने से कमाई पूरी हुई। उनकी आर्थिक दशा सुधरे तो कैसे ? घर का दारिद्र्य दूर हो तो कैसे ? बच्चे-स्त्री घर मे भूखो मर रहे हैं, पर नशेबाज के लिये तो कहावत प्रसिद्ध है 'घर का जाने मर गया, आप करे आनन्द।' ओह ! नशा बड़ा भारी शत्रु है।

दानवता के आगे

विश्व भूल बैठा मानवता दानवता के आगे,
मैं सम्राट् बनूं जगती का आकांक्षा मानव की।
एकछत्र हो राज्य हुकूमत चले कि ज्यों दानव की,
बना रहूँ खूंखार कि जग में सभी प्रकंपित होवें।
मेरी इच्छा से ही जगजन रोवें या हर्षित होवें,
हिंसा की कर्कशता नर के रोम रोम में छाई।
वैर फुट की बुरी भावना कौम-कौम में आई,
संस्कृति-कला-सृजन जन-जीवन नाश रहे नर पुतले।
मानवता के खून के प्यासे अति निकृष्ट नर उबले,
जन्म हो चुका तृतीय युद्ध का भयप्रद हौले-हौले।
लिखने में संलग्न चिरन्तन लोहु-धार से अपनी,
नग्न आदिम ढांचे कंकालों की काते कथा की कथनी।
नभ में अणु-बम यान गैस हा! भूपर धूल उड़ाते,
अधम नृशंस कार्य कर दम्भी मन से फूल जडाते।
युग के नूतन अस्त्र-शस्त्र सब तड़क-तड़क कर टूटे,
बारूदों से भरे हुये बम कड़क-कड़क कर छूटे।
मानव को है खुली चुनौती जो बर्बर बन अकड़ा,
उसकी जीवन-प्रगति शान्ति, सुख नाश-पाश में जकड़ा।
लौह-शृंखला-बद्ध घृणिका इतिहास निरन्तर नढ़ता,
लोक लाज का झीना आँचल धीरे धीरे सड़ता।
किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ मनुज बन हुआ कुपथ का राही,
मानवता को कुचल बढ गया दानवता का चाही।
ईर्ष्या से सम्बन्ध जोड़ कर तोड़ प्रेम के धागे,
विश्व भूल बैठा मानवता दानवता के आगे॥

— जैन महिलादर्श से साभार

मुकद्दमेबाजी

मुकद्दमेबाजी वर्तमान सभ्यता की देन है। आप कहीं जाकर इसका मजा देखिये—गाँव-बाजार सबके मन्दिर-मसजिद आज कचहरी हैं। साधारण मुकद्दमों के पीछे हजारों लाखों रुपया स्वाहा हो रहा है। जिसको चसका लग गया—धन, अपना नहीं तो पराया सही, मामला चले बिना नींद नहीं आती। झूठी गवाहियाँ देते-देते कइयों की जिन्दगी बीत जाती है। झूठ के बिना मामला चलता भी तो नहीं। धर्म गँवाओ, धन का नाश करो और हैरान हो। तीन तीन मजे इस त्रिपुराज में हैं। फिर छूटे भी कैसे ? हमारी बुद्धि का यहाँ दीवाला निकल जाता है।

आज सौ में नब्बे पुरुष नशे के शिकार हैं। किसी को बीड़ी-सिगरेट-चिलम के धुएँ का नशा है तो किसी का चाय बिना काम नहीं चलता। अफीम, भाँग चरस, गाँजा और मदिरा का भी बोल-बाला है। सरकार ने कई तरह के प्रतिबन्ध लगा दिये हैं उन प्रतिबन्धों से भी अनीति बढ़ी है और अवैध रूप से नशे की चीजें बनती सुनी जाती हैं। भावों में सुधार लाए बिना नियन्त्रण असफल ही है। हिसाब करके देखा जाय तो एक-एक नशे के पीछे करोड़ों रुपये खराब होते हैं और स्वास्थ्य की बरबादी तो निश्चित ही है। मैंने हजारों मजदूरों और दूसरे शुद्र कर्म करके पेट भरने वाले गरीबों की ओर लक्ष्य किया तो उनकी बरबादी का प्रधान कारण नशा ही प्रतीत हुआ। दिन भर गाढा परिश्रम कर चार छः आने या कुछ ज्यादा पैसे कमाये, पर शाम हुई और गाँजे का दम लगाने तथा शराब पीने से कमाई पूरी हुई। उनकी आर्थिक दशा सुधरे तो कैसे ? घर का दारिद्र्य दूर हो तो कैसे ? बच्चे-स्त्री घर में भूखों मर रहे हैं, पर नशेबाज के लिये तो कहावत प्रसिद्ध है 'घर का जाने मर गया, आप करे आनन्द।' ओह ! नशा बड़ा भारी शत्रु है।

बुराई का समर्थक क्या सोचता है

(कल्याण मासिक से)

(१) झूठ बोलने वाला व्यापारी कहता है—व्यापार में झूठ मिले हुए सत्य के बिना काम ही नहीं चलता। मुनि महाराज ने—'सत्यानृत तु वाणिज्यम्' कहा है। महाभारतादि में भी व्यापार-विवाह आदि में मिथ्या भाषण अपराध नहीं माना गया है।

(२) परिवार में मोह-आसक्ति रखने वाला सोचता है—भगवान् ने इनको हमारे हाथों सौंपा है, इसलिए इनकी सार-सँभाल करना हमारा धर्म है। भरतजी ने भी यही किया था।

(३) आलसी कहता है—

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहे सबके दाता राम॥

(४) भक्त बनकर अपनी पूजा कराने वाला कहता है—

'राम ते अधिक राम कर दासा।'

(५) कड़वा बोलने वाला कहता है—

बुरे लगें हित के वचन हिये विचारो आप।
कड़वो भेषज बिनु पिये मिटै न तन की ताप॥

(६) अपने को गुरु बताकर पुजने वाला उपदेश करता है—

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काकै लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की जिन गोविंद दिये मिलाय॥

(७) संत सजकर पूजा कराने वाला भगवान् राम के वचनों का प्रमाण देता है—

'मोते अधिक संत करि लेखे'

(८) चोर कहता है—स्वयं श्री कृष्ण ने माखन चुराया था। इसी से उनका नाम 'चौराग्रगण्य' है।

(९) जुआरी मानता है—'द्यूत छलयतामस्मि' गीता के वचनानुसार जुआ तो भगवान का स्वरूप है।

(१०) शराबी और मांसाहारी मनुष्य यह प्रमाण देते हैं—

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।

'न तो मांसभक्षण में दोष है, न मद्य में और न मैथुन में ही।'

(११) स्त्री और सेवकों पर अत्याचार करने वाले सारा दोष तुलसीदासजी पर मढ़ते हुए कहते हैं—

ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। ए सब ताड़न के अधिकारी॥

(१२) क्रोधी कहता है—

साँच कहूँ होकर निडर कोई हो नाराज।
मैंने तो सीखा यही साँच बोलिये गाज॥

(१३) माता-पिता की अवहेलना करके अपने मत का समर्थन करने वाला गाता है—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

(१४) झूठा आश्वासन देने वाले सोचते हैं—कुछ भी कह देना है, करना तो है नहीं 'वचने का दरिद्रता।'

(१५) बात-बात में डाँट-डपट करने वाला कहता है—साँप काटे नहीं तो क्या फुफकारे भी नहीं ?'

(१६) भाई-भाई से लोभवश—कौरव-पाण्डवों की कथा उपस्थित करता है।

(१७) पर-दोष-दर्शन तथा परनिन्दा करने वाले प्रमाण देते हैं—

वैद्य न जानैं रोगकौं औ जो नहिं देत बताहि।
वैद्य धरमतें सो गिरैं रोगी प्रान नसाहि॥

—और कहते हैं कि यदि हम किसी के दोष न देखें एवं लोगों को बताकर सावधान न करें तो कैसे उसके दोष छूटें और कैसे लोग उसके दोषों से बचें।

(१८) वर्णाश्रमानुकूल धर्म, संयम-नियम, सन्ध्यावन्दनादिका त्याग करने वाले अपने को प्रेमी घोषित करके कहते हैं—'भाई! ये सब तो उन लोगों के लिये हैं, जिन्होंने प्रेम का मुख नहीं देखा है, प्रेम-राज्य में इनका क्या काम? एवं नारायण स्वामी के ये दोहे पढ़ देते हैं—

तब लों यह फाँसी गले, बरनास्रम व्रत नेम।
नारायण जब लों नहीं, मुख दिखलावे प्रेम॥
धर्म धैर्य संयम-नियम, सोच विचार अनेक।
नारायण प्रेमी निकट, इनमें रहें न एक॥

(१६) कर्त्तव्य-कर्मों का त्याग करने वाला अपने को ज्ञानी मानकर भगवान के शब्दों की दुहाई देता है—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानव.।
आत्मन्येव च सतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

जिसकी आत्मा में ही रति है, जो आत्मा में ही तृप्त है और आत्मा में ही सन्तुष्ट है, उस मनुष्य के लिये कोई भी कर्त्तव्य नहीं है।

(२०) आहार-विहार में पशुवत् व्यवहार करने वाला गीता का श्लोक पढ़ देता है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिन.॥

विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मण, चाण्डाल, गौ, हाथी और कुत्ता इन सभी में ज्ञानी पुरुष समदर्शी होते हैं।

इसी प्रकार और भी अनेकों बहाने होते हैं बुराई का समर्थन करने के लिये। [illegible] इन सद्विचारों एव सदुक्तियों

का भीषण दुरुपयोग और धर्म का अनर्थ है, जो मूर्खता में या दम्भ से अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिये मनुष्य करता है।

अतएव आप अपने अन्तर को टटोल कर देखिये, उसमें कोई छिपा हुआ ऐसा दोष तो नहीं है जो युक्तिवाद से परिस्थिति का बहाना करके आपको धोखा देता हो।

फिर जो धर्म का सच्चा सेवक है और भगवान् के पवित्र पथ पर चलना ही जीवन का परम कर्त्तव्य समझता है उसके लिये तो खुला मार्ग है, उसमें किंतु परन्तु को स्थान ही नहीं है। वह तो ऐसा कोई भी कर्म, किसी भी हेतु से नहीं करता जो अधर्म हो और भगवान् के पवित्र पथ से च्युत कराने वाला हो।

भूलना सीखो

अमेरिका के एक प्रमुख डाक्टर 'मेडिकल टॉक' (Medical Talk) नामक पत्र में लिखते हैं कि वर्षों के अनुभव के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि दुःख दूर करने के लिये 'भूल जाओ' से बढ़कर कोई दवा है ही नहीं। अपने लेख में वे लिखते हैं—

यदि तुम शरीर से, मन से और आचरण से स्वस्थ होना चाहते हो तो अस्वस्थता की सारी बातें भूल जाओ।

रोज-रोज जिन्दगी में छोटी-मोटी चिन्ताओं को लेकर झींकते मत रहो, उन्हें भूल जाओ। उन्हें पोसो मत, अपने दिल के अन्दर उन्हें पाल मत रक्खो—उन्हें अन्दर से निकाल फेंको और भूल जाओ। उन्हें भुला दो।

माना कि किसी 'अपने' ने तुम्हें चोट पहुँचाई है, तुम्हारा दिल दुखाया है। सम्भव है जान-बूझकर उसने ऐसा नहीं किया है, और मान लो कि जान-बूझ कर ही उसने ऐसा कर डाला है

तो क्या तुम उसे लेकर सूत कातते रहोगे ? इससे तुम्हारे दिल का दर्द कुछ हल्का होगा क्या ? अरे भाई, भुला दो, भूल जाओ, उसे लेकर चिन्ताओं का जाल मत बुनने लगो। भूल जाओ, उधर से चित्त हटा लो, आँखें फेर लो, मन मोड़ लो।

दूसरों के प्रति तुम्हारे मन में घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, दुर्भाव आदि के जो घाव हैं उनमे भीतर ही भीतर मवाद भर रहा है और यह तुम्हारे ही शरीर-मन-प्राण में जहर फैला रहा है। क्यों न तुम इन तमाम बातों को अपने दिल से निकाल फेंको, मन से बुहार फेंको, हृदय से बहा डालो और तुम देखोगे कि तुम्हारे भीतर ऐसी पवित्रता, ऐसी सफाई आएगी कि तुम्हारा शरीर और मन पूर्णत. स्वस्थ और निर्मल हो जायगा ''' तुम उन्हें पोसकर अपने ही हाथों अपनी हत्या कर रहे हो—क्या तुम यह नहीं जानते ? इसीलिए तो कहता हूँ—भूल जाओ, भुला दो।

और बड़े-बड़े संकट, विपत्ति, दुःख के समय क्या करें ? यदि हमारे ऊपर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा हो, विपत्ति की बिजली गिर पड़ी हो, किसी ने हमारे सत्यानाश की तदबीरें सोच ली हो और कोई हमारा परम प्रिय व्यक्ति हमे तड़पता हुआ छोड़ कर मृत्यु के मुख में समा गया हो—ऐसे अवसरो पर जब हमारा घाव गहरा और मर्मान्तक है, हम क्या करें ? क्या उन्हे भी भूल जाएँ, भुला डालें ? हाँ, हाँ उन्हे भी, भूल जाओ—धीरे-धीरे ही सही, लेकिन भूल जाओ उन्हे भी। इसी में तुम्हारी भलाई है। भविष्य में इससे तुम अधिकाधिक सुख पाओगे, शान्ति पाओगे।

दुःख की, चिंता की, बीमारी की बातें न करो, न सुनो। स्वास्थ्य की, आनन्द की, प्रेम की, शान्ति की ही बातें करो और इन्हें ही सुनो। देखोगे कि तुम स्वास्थ्य लाभ करोगे, आनन्द लाभ करोगे, प्रेम पाओगे, शान्ति पाओगे।

और मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ, तब मानो कि दुःखों का भार उतार डालना कतई मुश्किल नहीं है, बड़ा ही आसान है। शुरू शुरू में आदत डालने में कुछ समय लगेगा, कुछ कठिनाई भी होगी, लेकिन आदत पड़ जाने पर बात-की-बात में तुम बड़ी-से बड़ी चिन्ता को चुटकियों पर उड़ा दोगे और इस प्रकार भूल जाने या भुला देने में तुम इतने अभ्यस्त हो जाओगे कि जीवन को दुःखमय और विषाक्त कर देने वाली तमाम बातें तुम्हारे सामने आते ही काफूर हो जायँगी। यह संसार तुम्हारे लिए आनन्दमय या आनन्द विलास प्रतीत होगा, क्योंकि इसमें दुःख, अभाव, पीड़ा, कष्ट आदि जैसी कोई वस्तु रह ही नहीं जायगी।

भूलना सीखो। यदि शरीर का स्वास्थ्य और मन की शान्ति अभीष्ट है तो भूलना सीखो, भूलना सीखो। 'यूनिटी'

माता-पिता और बालक

(ले०—नहरजी)

हमारे घरों में—

माता-पिता को शिशु-प्रकृति का ज्ञान न होने के कारण ही आज घर घर में कुहराम मचा दिखलाई पड़ता है। प्रातः काल से ही बालकों की धौल धप्पा शुरू हो जाती है। घर में शान्ति के स्थान पर अशान्ति और व्यवस्था के स्थान पर अव्यवस्था का राज हो जाता है। माँ-बाप तंग आकर क्रुद्ध और चिड़चिड़े बन कर भयंकर रूप धारण किये रहते हैं। जब मन में आता है मार-पीट देते हैं और कभी २ भिन्न २ प्रकार की पेटेन्ट गालियों से अपना क्रोध शान्त कर लेते हैं। अक्सर माता-पिता बालक को तरह तरह के भय दिखा-कर उनका जीवन नष्ट कर

तो क्या तुम उसे लेकर सूत कातते रहोगे ? इससे तुम्हारे दिल का दर्द कुछ हल्का होगा क्या ? अरे भाई, भुला दो, भूल जाओ, उसे लेकर चिन्ताओं का जाल मत बुनने लगो। भूल जाओ, उधर से चित्त हटा लो, आँखें फेर लो, मन मोड़ लो।

दूसरों के प्रति तुम्हारे मन में घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, दुर्भाव आदि के जो घाव हैं उनमे भीतर ही भीतर मवाद भर रहा है और यह तुम्हारे ही शरीर-मन-प्राण में जहर फैला रहा है। क्यों न तुम इन तमाम बातों को अपने दिल से निकाल फेंको, मन से बुहार फेंको, हृदय से बहा डालो और तुम देखोगे कि तुम्हारे भीतर ऐसी पवित्रता, ऐसी सफाई आएगी कि तुम्हारा शरीर और मन पूर्णत. स्वस्थ और निर्मल हो जायगा ''''तुम उन्हें पोसकर अपने ही हाथो अपनी हत्या कर रहे हो—क्या तुम यह नहीं जानते ? इसीलिए तो कहता हूँ—भूल जाओ, भुला दो।

और बड़े-बड़े संकट, विपत्ति, दुःख के समय क्या करें ? यदि हमारे ऊपर दुखो का पहाड़ टूट पडा हो, विपत्ति की बिजली गिर पड़ी हो, किसी ने हमारे सत्यानाश की तदबीरें सोच ली हो और कोई हमारा परम प्रिय व्यक्ति हमें तड़पता हुआ छोड़ कर मृत्यु के मुख में समा गया हो—ऐसे अवसरो पर जब हमारा घाव गहरा और मर्मान्तिक है, हम क्या करें ? क्या उन्हे भी भूल जाएँ, भुला डालें ? हाँ, हाँ उन्हे भी, भूल जाओ—धीरे धीरे ही सही, लेकिन भूल जाओ उन्हे भी। इसी में तुम्हारी भलाई है। भविष्य में इससे तुम अधिकाधिक सुख पाओगे, शान्ति पाओगे।

दुःख की, चिता की, बीमारी की बातें न करो, न सुनो। स्वास्थ्य की, आनन्द की, प्रेम की, शान्ति की ही बातें करो और इन्हे ही सुनो। देखोगे कि तुम स्वास्थ्य लाभ करोगे, आनन्द लाभ करोगे, प्रेम पाओगे, शान्ति पाओगे।

और मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ, सच मानो कि दुःखों का भार उतार डालना कतई मुश्किल नहीं है, बड़ा ही आसान है। शुरू-शुरू में आदत डालने में कुछ समय लगेगा, कुछ कठिनाई भी होगी, लेकिन आदत पड़ जाने पर बात-की-बात में तुम बड़ी-से-बड़ी चिन्ता को चुटकियों पर उड़ा दोगे और इस प्रकार भूल जाने या भुला देने में तुम इतने अभ्यस्त हो जाओगे कि जीवन को दुःखमय और विषाक्त कर देने वाली तमाम बातें तुम्हारे सामने आते ही काफूर हो जायँगी। यह संसार तुम्हारे लिए आनन्दमय का आनन्द विलास प्रतीत होगा, क्योंकि इसमें दुःख, अभाव, पीडा, कष्ट आदि जैसी कोई वस्तु रह ही नहीं जायगी।

भूलना सीखो। यदि शरीर का स्वास्थ्य और मन की शान्ति अभीष्ट है तो भूलना सीखो, भूलना सीखो। 'यूनिटी'

माता-पिता और बालक

(लें०—खद्दरजी)

हमारे घरों में—

माता-पिता को शिशु-प्रकृति का ज्ञान न होने के कारण ही आज घर घर में कुहराम मचा दिखलाई पड़ता है। प्रातः काल से ही बालकों की धौल धप्पा शुरू हो जाती है। घर में शान्ति के स्थान पर अशान्ति और व्यवस्था के स्थान पर अव्य-वस्था का राज हो जाता है। माँ-बाप तंग आकर क्रुद्ध और चिड़चिड़े बन कर भयंकर रूप धारण किये रहते हैं। जब मन में आता है मार-पीट देते हैं और कभी २ भिन्न २ प्रकार की पेटेन्ट गालियों से अपना क्रोध शान्त कर लेते हैं। अक्सर माता-पिता बालक को तरह-तरह के भय दिखा कर उनका जीवन नष्ट कर

देते हैं। माँ-बाप क्या सन्तानोत्पत्ति का यही उद्देश्य माने बैठे हैं? क्या इन्हीं बातो से वे समझते हैं देश और जाति की उन्नति हो जायेगी। ? क्या इसी प्रकार के व्यवहार से वे बालको को वीर, तेजस्वी, चरित्रवान बना सकेंगे? यह तो विचारने की बात रही।

रूसी बालकों की शिक्षा योजना—

इस समय चारो तरफ घोर जीवन संग्राम हो रहा है। प्रत्येक राष्ट्र इस मे विजय प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध है। लेकिन क्या इन लड़ाकू देशों ने बालक की उपेक्षा की है? नहीं, आज तो वह बालको का और भी महत्त्व समझ रहा है। प्रत्येक देश ने जो कुछ प्राप्त किया है—बालको द्वारा ही प्राप्त किया है।

रूस मे बालक किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति न रह कर राष्ट्र की सम्पत्ति माना जाता है। बालक के अधःपतन से समूचे राष्ट्र का पतन सम्भव है। अतः राष्ट्र को उन्नत बनाने के लिये यही राष्ट्र अमूल्य धन बालक की खूब रक्षा करता और सेवा करके अपने अस्तित्व की दृढ़ता के प्रति निश्चिन्तता प्राप्त करता है। इस देश मे बालक के माता-गर्भ में प्रवेश करने के समय से लेकर, उसके बड़े होकर जीवन संग्राम मे प्रवेश करने के समय तक, उसके पालन पोषण तथा रक्षण और शिक्षण का सारा भार राष्ट्र उठाता है। इन्होंने बालक के मूल्य को समझ लिया है। बालक की शिक्षा के लिये नित्य नई उन्नत और सशोधित रीतियाँ निकाली जाती है, परीक्षण होते हैं, और देश के भावी नागरिकों के शरीर तथा चरित्र को दृढ़ तथा उच्च करने का प्रयत्न किया जाता है।

हमारा देश—

किसी भी देश के सभ्य अथवा असभ्य होने की पहिचान ही यह है कि वह अपने बालकों की शिक्षा को कितना महत्त्व देता है।

हमें ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे हमारी सन्तान के शरीर और मन हमारी अपेक्षा अधिक बलिष्ठ और सुसंस्कृत हों। यदि हमारी अगली पीढ़ी हम से हर बात में बढ़िया न हो, तो समझो कि हमने अपने कर्त्तव्य का ठीक २ पालन नहीं किया है।

माता-पिता और शिक्षक—

हमारे ऋषियों ने बालको के महत्व को खूब समझा था। वे बालकों की शिक्षा और संस्कारों के महत्व को खूब समझते थे। गर्भाधान से लेकर सन्यास पर्यन्त जो संस्कार हैं वे सब प्रत्येक आयु में मनुष्य के मानस को ही समझ कर बनाये गये थे। इनका उद्देश्य बालक के शरीर और आत्मा को उन्नत करना ही था।

'मातृमान' 'पितृमान' 'आचार्यमान पुरुषोवेदा' इस छोटे से वाक्य में ही प्रातः स्मरणीय ऋषियों ने शिशु-शिक्षा का सारा रहस्य भर दिया है।

बालकों की शिक्षा के लिए माता, पिता और अध्यापक को शिशु प्रकृति के ज्ञान से परिचित होना नितान्त आवश्यक है। जो व्यक्ति बालकों की प्रकृति से अनभिज्ञ है, जिसे बालको के मानस शास्त्र का ज्ञान नहीं, वह कभी योग्य शिक्षक कहलाने लायक नहीं। बालको के सुधार से पहिले शिक्षक को अपना उद्धार करने की आवश्यकता है।

शिक्षा का आरम्भ—

एक विद्वान् ने, पूछने पर कहा था कि बालक की शिक्षा उसके जन्म से लेकर सौ वर्ष पूर्व हो जानी चाहिये। माता पिता के स्वास्थ्य तथा संस्कारो का बालक पर गहरा असर पड़ता है। जो बालक जन्म से रोगी या दुर्बल होते हैं, उनका स्वास्थ्य अपने जीवनकाल में विशेष रूप से स्वास्थ्य का ध्यान रखने पर भी, जन्म से निरोग और बालको के समान उत्तम नहीं हो सकता

जो बालक जन्म से स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट होते हैं वे जीवन पर्यन्त अच्छी देख भाल होने के कारण सदा स्वस्थ रहते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य ही है बालक की शारीरिक और मानसिक उन्नति। शिक्षा का काम बालक की आत्मा मे बीज रूप से विद्यमान प्रवृत्तियों को उत्तेजित करना और शुभ प्रवृत्तियों को विकसित करना और अशुभ प्रवृत्तियो का उनमूलन अथवा मांगल्यी करण करना है। इससे अधिक शिक्षा और क्या कर सकती है। अतः स्पष्ट है कि माता पिता को बालक के जन्म से पहिले ही तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिये। माता पिता को अपने अन्दर सद्गुणों का विकास और असद्गुणों की समाप्ति कर देनी चाहिये। घर से कलह, मन मुटाव आदि को निकाल कर प्रेम और सहयोग का वातावरण पैदा करना चाहिये।

जन्म के बाद—

बालक के जन्म के बाद यदि हमने उपेक्षा की तो हमें अन्त में पछताने के अलावा और कुछ नहीं बनेगा। बालक की जन्म से पाँच वर्ष की आयु का महत्व आज सर्वत्र विदित है। बालक मे भविष्यत् मनुष्य का निर्माण इसी अवस्थामें हो जाता है। बालक आगे जैसा भी बनेगा उसकी छाप भी इसी आयु में पड़ जाती है। बड़प्पन तो इसी आयु का विकास मात्र है। अतः यदि माँ बाप इस आयु मे सोये पड़े रहेगे और बालक की यथोचित शिक्षा पर ध्यान न देंगे, बड़ी आयु में लाख प्रयत्न करने पर भी बालक की खामियों को पूरा न कर सकेंगे।

बालक की शक्तियों का क्रमिक विकास—

बालक में विभिन्न शक्तियों का विकास यूं ही अललटप नहीं हो जाता। सर्व-शक्तियों के विकास का नियम और समय है। प्रकृति द्वारा इन नियमों का दिग्दर्शन न होता है। यदि हम

चाहे कि जन्म के एक मास पश्चात् ही बालक दो फीट का हो जाये, चलने फिरने और बोलने लगे—ऐसा विचार भी रखना उचित नहीं। कुदरती नियमो में कोई किसी भी प्रकार बाधा नहीं डाल सकता। किन्तु उन नियमो को जान कर बालक की सहायता अवश्य की जा सकती है जिससे किसी भी प्रकार बालक की शक्तियों का रोध न हो।

बालक मे एक नियमित क्रम से एक दूसरे के पश्चात् सारी शक्तियाँ प्रकट होती हैं। एक योग्यता प्राप्त करने के लिये बालक निरे अभ्यास और प्रयत्न करता है। ये अभ्यास और प्रयत्न कभी २ तो कई सप्ताह तक चलते रहते है, तब कहीं बालक योग्यता प्राप्त करता है। हाथ की मुट्ठी बांधने के लिये ही बालक कई सप्ताह तक प्रयत्न करता है तब कहीं किसी वस्तु को मुट्ठी में पकड़ने की योग्यता प्राप्त करता है। बालक में बोलने की शक्ति का विकास तो लगभग एक वर्ष में होता है जिसकी तैयारी बालक तीन मास की आयु से ही शुरू कर देता है। इसी प्रकार खड़े होने और तर्क करने की शक्तियाँ भी विशेष अवधि के अन्तर ही प्रकट होती हैं।

माता पिता को इस बात का ज्ञान अवश्य होना चाहिये कि किसी अवस्था में बालक मे कौनसी शक्ति प्रकट होती है तब ही वे बालक की शक्तियों को विकसित करने में यथोचित सहायता प्रदान कर सकते हैं। हमें बालक की जन्म सिद्ध-क्षमताओं का भी ज्ञान होना चाहिये। प्रत्येक बालक मे भिन्न २ क्षमताओं के कारण उसकी शिक्षा भी भिन्न २ ढङ्ग से होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त हमें अपने लक्ष्य और साधनों का भी खूब ज्ञान होना चाहिये, तब ही, बालक की शिक्षा में जो नैतिक समस्याएँ उपस्थित होंगी उनके हल करने में हम इस ज्ञान की सहायता से सफल हो सकेंगे।

शिक्षा की सुव्यवस्था—

अव्यवस्थित्त शिक्षा का परिणाम कभी भी आशाजनक नहीं हो सकता। अव्यवस्थित वातावरण मे पला बालक कभी मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य मे व्यवस्था प्राप्त नहीं कर सकता। उसका सारा जीवन ही अव्यवस्थित हो जाता है। लक्ष्य-हीन शिक्षा में जितनी चिन्ता और मनस्ताप होता है सुव्यवस्थित शिक्षा के लिये दृढ़ता पूर्वक यत्न करने मे उससे बहुत कम उद्वेग होता है। बालक के तग करने पर माता पिता कलह से बचने के लिये बच्चो के सामने सिर झुका देते हैं। इसका फल यह होता है कि बालक अपनी बात मनवाने के लिये यही साधन अपना लेता है और माँ बाप को हमेशा तंग करता रहता है। इस प्रकार माता पिता और बालक दोनो का जीवन कलह-पूर्ण हो जाता है। यदि माँ बाप ने अध्ययन किया होता और उनको बाल-समस्याओ को हल करने का ज्ञान होता तो उक्त समस्या पैदा ही नहीं होती और यदि होती भी तो उसका इलाज फौरन हो जाता। इसलिये पहिले खूब सोच समझ कर शिक्षा की एक युक्ति सिद्ध कल्पना तैयार कर लेनी चाहिये और फिर कल्पना पर दृढ़ता पूर्वक चलना चाहिये। इससे सब बाधाएँ और कठिनाइयाँ पूर्ण रूप से दूर हो जाती हैं।

उक्त कल्पना को व्यवहार मे लाते समय आरम्भ में शायद कष्ट उठाना पडे लेकिन कुछ समय पश्चात् जब बालक अल्प-विनीत और सुशिक्षित हो जायेंगे तब आपको तंग होने का बहुत कम अवसर प्रदान करेंगे।

पूर्व तैयारी अथवा जानकारी—

मोटर चलाने की विद्या जाने बिना ही कोई व्यक्ति मोटर चलाने लगे अथवा चिकित्सा शास्त्र के ज्ञान बिना रोगियों

का इलाज करने लगे तो किस प्रकार के फल की आशा की जा सकती है यह बात सब ही जानते हैं। छोटी से छोटी मशीन चलाने के लिए हमें योग्यता प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। मोटर आदि चलाने के लिये भी हमें कुछ विद्योपार्जन रीति से गुजरना पड़ता है। लेकिन, हम में से कितने लोग हैं जो विवाह करने से पहिले बच्चों के रक्षण और शिक्षण का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझते हैं। कितने खेद की बात है कि नहरें खोदने और मकान बनाने के लिये तो हम नियम पूर्वक शिक्षा पाकर इञ्जिनीयर बनना आवश्यक समझते हैं, किन्तु सन्तान के बलिष्ठ और आत्मा को सुसंस्कृत करने की विद्या सीखने के बिना ही माता-पिता बनने मे तनिक भी संकोच नहीं करते।

बालक और माता-पिता की जिम्मेदारी—

इसमें लेश-मात्र भी सन्देह नहीं कि बालक से ही सच्ची मनुष्यता का पाठ सीखा जा सकता है। अहिंसा, निःस्वार्थ-परता, प्रेम, सत्य आदि की शिक्षा बालक से ही शुद्ध रूप से मिल सकती है। यदि यह कहा जाय कि 'माता पिता की शिक्षा सन्तानों से होती हैं तो इसमे कोई अतिशयोक्ति न होगी। जिस स्त्री या पुरुष ने सब कर्त्तव्यों से उत्तम कर्त्तव्य अर्थात् बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षण का भार नहीं उठाया, वह कभी भी मानसिक और नैतिक प्रौढ़ता को प्राप्त नहीं हो सकता। सत्य तो यह है कि उच्च से उच्च सभ्यता और उत्तम शिक्षा, घर स्कूल या धर्म-मन्दिर से नहीं, वरन् स्वयम् अपने ही बच्चो से प्राप्त होती है।

सन्तान होने पर माता पिता का कर्त्तव्य और भी बढ़ जाता है। उसे साधना का अवसर मिलता है। वह अपने

विकास के दर्शन निर्मल, शुद्ध और सात्विक दर्पण रूपी बालक मे कर सकता है। बालक ऐसी कसौटी है जो साधना की खामियों को फौरन सामने रख देती है। माता पिता जैसा भी वातावरण पैदा करेंगे बालक वैसे ही बनेंगे। माता पिता बालक के वातावरण के जीवित अङ्ग हैं। उनकी आत्मा का निरन्तर स्पर्श और उनके संस्कारों का बालक मे प्रवेश होता रहता है। अतः माता पिता को शारीरिक और मानसिक दोनों ही की उन्नति की ओर ध्यान रखना होगा।

जो माता पिता सन्तान के निमित्त जीने और मरने का निश्चय नहीं कर सकते, वे कदापि माता पिता बनने के अधिकारी नहीं। बालक हमारे हाथ में पवित्र धरोहर हैं, उनके पालन के लिये न केवल विशेष परिश्रम और चौकसी ही की आवश्यकता है, वरन् भारी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का भी प्रयोजन है।

बच्चे गुड़िया नहीं है

सन्तान से माता पिता को असीम आनन्द प्राप्त होता है। लेकिन, यह समझना कि यह आनन्द तो त्याग और साधना से प्राप्त होता है। बच्चे कोई गुड़िया नहीं हैं, इसलिए उन्हे अपने खेल तमाशे के लिये खिलौने नहीं समझना चाहिये। बालक तो भावी राष्ट्र-निर्माता है। वह एक अद्‌भुत शक्ति है जो रहस्यों का भण्डार है।

तीन प्रकार की शिक्षा

(१) तामसी शिक्षा मनुष्य को नीति से भ्रष्ट कर अनीति के मार्ग पर आरूढ़ करती है। और पाप की वृत्तियों का पालन करा कर्त्तव्य-पथ से पतित करती है। यह शिक्षा त्याज्य है।

(२) राजसी शिक्षा—अनेक प्रकार की तृष्णा में फँसाती है। इन्द्रिय सुख विषयों में आसक्त करती है। द्रव्य के लोभ से कई अनर्थ कराती है।

(३) सात्विक शिक्षा—धार्मिक श्रद्धा की रक्षा करती है, परोपकार करने की शिक्षा देती है सत्यवादी प्रमाणिक रहने का पाठ सिखाती है और नीति के मार्ग में दृढता पैदा कर चारित्र को विशुद्ध बनाती है।

आज कल की शिक्षा

प्रणाली ऐसी बिगड़ी हुई है कि उसमे सदाचार की शिक्षा नाम-मात्र को भी नहीं दी जाती, लड़के प्रायः बुराई की ओर अधिक झुक जाते हैं। यही कारण है कि आज कल के लड़कों का चारित्र प्रायः बिगडा हुआ दीख पड़ता है।

विद्यार्थियों की उद्दण्डता के उदाहरण

(१) डा० कन्हैयालालजी गर्ग प्रिंसिपल वारासेनी कॉलेज अलीगढ पर घर लौटते समय सामुहिक रूप से आक्रमण करके हत्या इसलिये की कि उन्होंने परीक्षा-भवन से कुछ विद्यार्थियों को नकल करने के अपराध मे बाहर निकाल देने की कर्त्तव्य पूर्ति की।

(२) महमूद कालेज सिकन्द्राबाद के प्रिंसिपल की पत्थरों से मरम्मत करके अधमरा कर उन्हें कत्ल की धमकी उन सपूतों द्वारा दी गई जो परीक्षा में फैल हुए थे और उसका दोष अपने शिक्षकों के मत्थे मण्ड कर समूचे स्टाफ की बरखास्तगी चाहते थे।

(३) कलकत्ता एन्ट्रेंस का एक विद्यार्थी, जिसे परीक्षा-भवन में नकल करने के अपराध में बाहर निकाल दिया था। उसने ६० वर्षीय मुख्य निरीक्षक को सख्त चोट पहुँचाई।

(४) इन्टर कालेज इटावा के अध्यापक सिद्दीकी के सिर में गहरी चोट उस विद्यार्थी ने लगाई जो उच्चकक्षा के विद्यार्थी से परीक्षा समय सहायता ले रहा था।

(५) अमृतसर—विद्यार्थी फेडरेशन के पन्द्रह सदस्यों को कुल तीन वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड इसलिए दिया गया कि उन्होने पुलिस अधिकारियों पर घातक शस्त्रों से आक्रमण किये, हालबजार स्थित कॉंग्रेस भवन को लूटा तथा अन्य ऐसे ही पराक्रम कर दिखाये।

स्मरण रहे, ये प्रवृतियाँ, शेखी शेखियाँ उस देश की उस धरती की है जहाँ पूर्व काल मे गुरु की प्रतिष्ठा आराध्यदेव के समक्ष थी। यथा—

"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौं।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाऽ प्रकाशेन महात्मन.॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।२३)

—मनुस्मृति में विद्यार्थी के लिये आदेश है कि गुरु को उनके नाम से न पुकारे, उनकी गतो-वाणी और अन्य रीतियों की उपहास पूर्ण नकल न करें। इसके उपरान्त विद्यार्थियों को अपने गुरू के प्रति—सुनाई पडने वाले शब्दों को कान में घुसने न देना चाहिये अथवा उस प्रसग को उस स्थल को ही छोड़ देना चाहिये। यथाः—

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते।
कर्णौतत्र पिधातव्यौ गन्तयं वा ततोऽन्यतः॥

मनुस्मृति—२।२००

—और मात्र हत्याये ही नहीं—हमारे विद्यार्थी-बहादुर किस फन्न मेंकिस माई के लाल से कम है।

दक्खिन हैदराबाद में विद्यार्थियों के एक बिगड़ खड़े हुए टोल पर पुलिस को जबर्दस्ती बर्तनी पड़ी क्योकि विद्यार्थियो ने

केवल मनोरंजन के लिये अकारण ट्रेनों की चेन खींचना शुरू किया—रेल्वे कर्मचारियों से मारपीट की तथा एक गरीब मजदूर को अधमरा कर दिया। अब उनकी कृपा से प्रत्येक ट्रेन के साथ पुलिस तैनात रखनी पड़ती है।

विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर के १७०० विद्यार्थीयो की पुलिस से जो मुठभेड हुली उसमे पुलिस की गोली ने तीन को शिकार किया और छः को घायल।

लखनऊ-के एक कालेज के विद्यार्थीयो को क्रिकेट मैच के बाद तुरन्त ही फील्ड की पिच (Pitch) पर होकर गुजर ने से रोका गया-जिसका क्या स्कोर हुआ आप जानते हैं! दस पुलिसमैन व छ. विद्यार्थी हताहत हुए।

ढाका मेडिकल कालेज में उर्दू ड्रामा चल रहा था जब कि बीच ही मे हमारा शिष्य-समाज बिगड़ उठा और इस नये नाटक में हॉकी स्टिक और जो हाथ आया, उसका सबा पार्ट अदा किया गया—जिसके फल स्वरूप कितने ही भेजे खिल गए, स्टेज भस्मीभूत हो गया—अनगिनती पुलिसमैन व विद्यार्थी आहत हुए।

नागपुर में प्रसिद्ध पृष्ठ गायिका अचानक अस्वस्थ हो जाने के कारण अपना प्रोग्राम न दे सकी—बस फिर क्या था! पंडाल अग्नि की भेट हुआ, ईंट पत्थर खुलकर बरसाये गये—स्टेज और फरनीचर की हड्डी पसली एक कर दी गई और दमकलों तथा अश्रुगैस के सहारे स्थिति पर काबू पाया जा सका।

आगरा—शरद पूर्णिमा का चाँद ताज पर क्या उगा—रूहे मुमताज अपने ऐतिहासिक प्रेम की कद्रदानी पर आँसू बन कर बिखर पड़ी। जन-समुद्र मे भद्र महिलाओ को-बालाओं को छेड़ने वालों से सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया तो पकड़े

गए विद्यार्थी ही और अपने कामरेड को छुड़ाने के लिये बाकायदा व्यूह रचना के साथ थाने पर धावा बोला गया।

बीस वर्ष पूर्व बापूजी की उस पुकार ने ये चंगेजखानी नीति को पाला न होता तो मेरी बिल्ली आज मुझी को म्याऊ न करती और ना ही—डा० गर्ग प्रिंसिपल की विधवा को मासिक १५०) के पेन्शन का सहारा तकना पड़ता।

एक प्रकार से ई० सन् १९२१ की पूज्य गांधीजी की विद्यार्थियों की वो पुकार क्या हुई—नादिरशाही और दुनियां भर की खुराफातों का लैसंस हो गया। यदि हमारे विद्यार्थियों को सचमुच राष्ट्र के स्तम्भ बनने की आगे जाकर बागडोर सौंपने की आवश्यकता प्रतीत होती है तो पूज्य बापूजी के साथ उनके जिन आदर्शों की यथार्थता को हम दफनाये हुए थोथे सफेदपोश गांधीवाद के दलदल मे फँसे हुए हैं—उन आदर्शों के सच्चे अनुकरण-बुद्धि पूर्वक प्रयोग की शिक्षा का बीज आज फिर इन्ही शिक्षणालयो मे बोने की पहले आवश्यकता है। स्वातन्त्र्य प्राप्ति के हेतु जो बीज गलत तरीके से ई० सं० १९२१ मे शिक्षणालयो में बोये गए थे वे आज विशाल वट-वृक्ष बनकर अपनी जटाओ से शाखा-प्रशाखाओ से मूल वस्तु का ही गला घोटे दे रहे हैं। उन्ही शिक्षणालयो में आज एक ऐसी अग्नि-शिखा प्रज्जवलित करने की आवश्यकता है जो इस अनैतिकता रूपी दानव को भस्मसात करके सच्चा पथ प्रदर्शन करें।

विवाह का पवित्र संस्कार

(महात्मा—गाँधी)

"यद्यपि अखण्ड ब्रह्मचर्य को ही हम सर्वोत्तम मानते हैं तथापि चूँकि जन-साधारण के लिये वह शक्य नहीं है इसलिये

वैसे लोगों के लिये विवाह बन्धन केवल आवश्यक ही नहीं वरन् कर्त्तव्य के बराबर है।"

"विवाह की अखंडता का नियम अकारण शोभा के लिए ही नहीं है। व्यष्टि और समष्टि जीवन की बड़ी नाजुक बातों से इसका सम्बन्ध है। जो लोग विकासवादी हैं, उन्हे सोचना चाहिए कि जाति की यह अनिश्चित उन्नति आखिर किस रास्ते होगी? उत्तरदायित्व के भाव की वृद्धि, व्यक्ति का स्वेच्छा से धारण किया हुआ संयम, सन्तोष और उदारता की वृद्धि, स्वार्थ का नियमन, क्षणिक लोभों के विरुद्ध भावुकता का जीवन—मनुष्य के आन्तरिक जीवन की इन बातों को हम भुला नहीं सकते। सभी प्रकार की आर्थिक व सामाजिक उन्नति में इनका ख्याल रखना ही होगा, नहीं तो उन उन्नतियों का कोई मूल्य नहीं गिना जा सकता। इसलिये सामाजिक और नैतिक दोनों दृष्टियों से यदि हम भिन्न भिन्न प्रकार के काम सम्बन्ध पर दृष्टि डालते हैं, तो हमें इस बात का विचार करना पड़ेगा कि हमारे सारे सामाजिक जीवन की शक्ति को बढाने के लिये कौन-सी संस्था सब से अच्छी है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य की आन्तरिक जीवन शुद्धि, स्वार्थ त्याग और बलिदान की वृद्धि तथा चञ्चलता इत्यादि के नाश के लिगे, कौनसा जीवन सब से अच्छा होगा? इन प्रश्नों पर विचार करने पर कहना ही पडेगा कि एक-पत्नी-व्रत के सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी महत्त्व के कारण सब से अच्छा जीवन दूसरा नहीं है। पारिवारिक जोवन में ही इन सब मनुष्योचित गुणों का विकास होता है और अपनी अखण्डता के कारण दिन पर दिन इस सम्बन्ध की गम्भीरता भी बढ़ती ही जाती है। यों भी कहा जा सकता है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन का केन्द्र एक पत्नीव्रत ही है।"

(नारी) हम क्या हैं ?

अबला नहीं, प्रबल सबला हैं, माता है हम वीरों की।
शूरों की हम शक्ति रही हैं, बहिनें हैं रण-धीरों की॥
माँ दुर्गा की प्रतिमा हैं हम, लक्ष्मी की हैं ज्योति-कली।
दीप्ति-मान अग्नि-शिखा हैं, स्नेह-सुधा की शुभ-स्थली॥
हम जाग उठीं, सब समझ गईं, अब करके कुछ दिखला देंगी।
हां, विश्व गगन में भारत को, फिर एक बार चमका देंगी॥

—सबलकुमारी राठोड़

वर-विक्रय

(ले० श्री० नन्दुभाई जी ओसवाल)

ओ युवको ! धिक्कार तुम्हें जो बेच रहे हो अपने को—
चांदी के टुकड़ो पर, फिर शिक्षित कहलाते अपने को।
मातृ-जाति के साथ अरे खुद का भी करते हो अपमान,
रुपयों से कर अपनी कीमत बढ़ा रहे हो कैसी शान ?
क्या तुम भूल गये हो अपना वश रहा है राजस्थान,
युवक शक्ति का मान दण्ड है जिसमें त्याग और बलिदान।
और यहीं भी बिसर गये क्या मातृ-जाति हित को कुर्बान,
शान बढ़ाई रजपूतो ने मां बहनो का कर सम्मान॥
उसी पिता के पूत अरे क्या इतना भी नहीं करते ध्यान,
"वर विक्रय" के पोषण में कितना होता नारी-अपमान।
और तुम्हें भी 'अपना-विक्रय' बात नहीं चुभती है क्या ?
अथवा अंग्रेजी तालीम ने बुद्धि भ्रष्ट करदी है क्या ?
पर शिक्षा का दोष नहीं यह लालच का है माया जाल,
उस में तुम्हें फसाने हेतु धनिको ने फैलाया जाल।
शक्तिधारी अय तरुणो ! तोड़दो एक मुष्टि में यह जंजाल,
नाशक बातें छोड़ जाति में करदो अपना ऊंचा भाल।

अगर न कर दोगे इतना तो धिक्कृत बन जाओगे तुम,
जाति कलंकित करने वाले युवकों ! कहलाओगे तुम।

'राजस्थानी वीर'

कन्या क्या चाहती है ?

कन्या अपने संरक्षकों से गीतों में प्रार्थना करती है कि—"बाबा सा देश जाइजो पर देश जाइजो, पर म्हारी जोड़ी रो राइवर हेर ज्यो।" याने कन्या को स्वदेश की सुविधा का प्रलोभन और अन्य देश की वेदना का भय इतना आदरणीय नहीं है जितना कि वह अपनी जोडी के योग्य वर और जीवन संरक्षक का सम्मान अपने हृदय में रखती है और अपने संरक्षकों से से कहती है कि आप मेरे लिये देश-विदेश का फिकर न करके मेरे योग्य वर को खोज कर अपने सच्चे संरक्षता के कर्त्तव्य का पालन कीजिए।

कन्या यह भी अर्ज करती है कि आप मेरे लिये अपने से विशेष वैभवशाली घराने की तलाश न कीजिए बल्कि आपकी बराबरी के सगे को देखकर मुझे उस घर में दीजिये। कन्या के शब्द यह हैं—"राव उमराव की होड न कीजे जोड़ी को सगो मने देख न दीजे।" जिस कन्या के जीवन को सुखी बनाने के लिये आप अपने से विशेष वैभवशाली व्यक्ति से व्याहते हैं परन्तु कन्या अपने पीयर के पक्ष को अपने कारण तंगदस्ती के महान् कष्ट में नहीं डालना चाहती है कि मुझे बराबरी वालो को दी जायगी तो मेरा वहाँ सम्मान होगा और अपने संरक्षकों को व्यर्थ में तंग न होना पडेगा।

योग्य वर कौन ?

विद्या से विभूषित, शौर्य से सुशोभित, धनी, गुणी, युवा, सुन्दर, आचार शील, सतकुलवान, मधुर भाषी, दानी, दयावान,

भोगी (कन्जूसी का त्याग करने वाला), बड़े कुटुम्ब वाला, स्थिर बुद्धिवाला, निष्पापी, बलवान, ऐसे गुणों से युक्त वर योग्य वर है।

पुरुषों !

कन्याओं की नम्रता, सरलता और लज्जा से अनुचित लाभ मत उठाओ, कन्या के माता-पिता भाई उनके परम हितैषी हैं परन्तु अनेक अपना, सुख, सुविधा, लाभ के लिये कन्या का विवाह ऐसे पुरुष से कर देते हैं जो कन्या के रूप, गुण, स्वभाव, धर्म और आयु में अनुकूल नहीं होते, अपने स्वार्थ के लिये उनके सुख-स्वभाव का बलिदान मत करो, कन्या के नहीं चाहते हुए जबरदस्ती उनके पति मत बनो, वे भावी माता हैं वे राम, कृष्ण, महावीर आदि की जननी हैं उनका सन्मान करो वर्तमान स्त्री-स्वातन्त्रय आन्दोलन तुम्हारे अन्याय का ही परिणाम है।

वर-वधु की खोज में हमारी प्रकाशित पुस्तक "भूल सुधार" अर्थात "जाति उन्नति का मूल मन्त्र" मूल्य दो आने को पढ़िये आप को सही मार्ग बतला देगी, इसमें सगाई की अनेक उलझी हुई गुत्थीयो को सुलझाया गया है।

गृहणियों !

शिक्षित व परदा विहीन होने का यह अर्थ नहीं है कि तुम गृह-कार्य से विमुख होकर थियेटर सिनेमा की सैर करो, मीठे, गरिष्ट और चटपटे भोजन, बाजार व होटल का दूषित आहार करके स्वास्थ्य बिगाड़ो, रंग-विरंगे कपड़े पहनकर तित-लियाँ बनो या विलायत की मेम साहिबा बनो, आभूषणों से गुड़िया के समान अपने तन को सजाओ और केवल वासना की पूर्ति का साधन बनो, शील धर्म व लज्जा रत्न जो तुम्हारा भूषण है उसे त्याग बैठो। याद रक्खो गृहस्थाश्रम की आप मूल हैं विवाह करके आप चतुर्भुज बनें न कि चतुष्पद।

सफल पति कौन है ?

जो अपने पति से प्रेम रखे, प्रेम का उचित प्रदर्शन करें, जिसका हृदय 'वैरोमिटर' की तरह उनकी प्रत्येक धड़कन, उनके प्रत्येक दुःख सुख को अंकित करे, जो अपने पति की प्रवृत्तियो और चित्त की अवस्थाओ का अध्ययन करके ही कार्य करे, पति के प्रिय-कार्य के विषय तथा गृह-जीवन की आवश्यकताओं और जिम्मेवारियो के उत्तरदायित्व की ओर यथोचित ध्यान दे। पति की तथा उनके किये हुए कार्यों की उचित बढ़ाई करे, अपने स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य पर पूरा ध्यान दे, पति के आत्मिय जनो को अपने सद्व्यवहार से खुश रखे, अपने पति के आर्थिक सकट का सामना हँसते हँसते कर सकती हो, पति के जीवन मे निश्चिन्तता का भाव लाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। आप जो पति से कुछ करवाना चाहती हो इसके पूर्व उनमें अपना चातुरीतापूर्वक वैसा करने की इच्छा का उद्भव कर सके। जो अपनी चाह पति की चाह को ध्यान मे रखकर ही करे। जो सघर्ष तथा वाद-विवाद से दूर रहे। अपनी गलती को सरलता पूर्वक निसकोच स्वीकार करे। उनके किये हुए कार्य की आलोचना व्यक्तिगत रूप से या सार्वजनिक रूप से न करने के लिए। सतर्क रहे।

सुख दुख का साथी पति ही है, अबला जनकी जान वह।
धर्म अर्थ और काम मोक्ष का, चारों पद का साधक वह॥

कानून में स्त्री–धनाधिकार

जो विवाह के पहिले या पीछे अपनी दस्तकारी मेहनत और बुद्धि से कमाया हो, क्वांरेपन में जो जायदाद (धन) स्त्री के कब्जे मे हो, चाहे वह किसी की दान की हुई हो या किसी तरह से मिली हो, विवाह के समय या अन्य समय भेंटों या पुरस्कार

के तौर पर पिता के घर से, पति, अन्य कुटुम्बी या इष्ट-मित्र आदि से मिला हो, चाहे वह स्थावर या जंगम हो, परवरिश से बचत का धन या उससे खरीदी हुई जायदाद इस पर सधवा व विधवा स्त्री का पूर्ण अधिकार है और पिता पुत्र के बटवाड़े में स्त्री बराबर का हिस्सा पाती है, और माँ बेटो के बटवाडे में भी बराबर का हिस्सा पाती है बटे हुए खानदान मे पुरुष नि.संतान मर जावे तो स्त्री पूर्ण अधिकारिणी होती है।

हिन्दू स्त्री के अलहदा रहने तथा पति से खर्च पाने का
कानून न० १६ सन् १६४६ ई०

पति निर्दयता का व्यवहार करता हो, भय से उसके साथ रहना उचित न हो, पति ने बिना उसकी स्वीकृति के उसे त्याग दिया हो, या दूसरी शादी कर ली हो , या हिन्दू न रहे दूसरा धर्म स्वीकार कर ले, पति का सम्बन्ध किसी वेश्या मे हो, (विशेष असली कानून देखे।)

दुष्ट पति को पत्नी कैसे समझावे

सादर हरिस्मरण, आपका कृपा पत्र मिला। अत्यन्त दुष्ट स्वभाव के जो पुरुष अपनी सती-साध्वी निर्दोष पत्नियों को मारते हैं, उन्हे छोड़ देने की तथा उन्हे ठीक करने के लिए दूसरी स्त्री घर में लाकर रखने की धमकी देते है, पर-स्त्री के पास जाने से रोकने तथा समझाने पर अत्यन्त अनुचित ढंग से डाँटते-फटकारते एवं अपमान करते हैं, वे मूर्ख पुरुष अपने ही हाथों अपने सिर पर प्रहार कर रहे हैं।

बहुत दिन पहिले की बात है, किसी सज्जन ने महात्मा गाँधीजी से पूछा था कि 'निर्दोष सीता को वन मे अकेली छुड़वा देने वाले राम को, साध्वी द्रौपदी को जुए के दाव पर लगा देने

वाले युधिष्ठिर को और सती दमयन्ती को जगल मे अर्धवस्त्रा सोयी छोड कर चल देने वाले नल को मनुष्य समझा जाय या राक्षस ?' इस पर महात्माजी ने उत्तर दिया था कि 'इसका निर्णय तो सीता, द्रौपदी और दमयन्ती ही कर सकती हैं और उन्होंने क्या निर्णय किया तथा अपने-अपने पति को क्या समझा—यह उनके आचरणों से स्पष्ट है।'

ठीक स्मरण नही है, प्रश्नकर्त्ता के और महात्माजी के शब्द क्या थे। पर जहाँ तक स्मरण है, भाव यही था। ऐसी स्थिति मे पत्नी के साथ अनवरत दुष्टता का व्यवहार करने वाले पति को क्या समझना चाहिये इसका यथार्थ निर्णय तो उसकी पत्नी ही करेगी । परन्तु यह निर्विवाद है कि उसका पति अपराधी है और दण्ड का पात्र है।

प्रतिदिन असहाय होकर चुपचाप झिडकियाँ, गालियाँ, थप्पड़ और घूँसे सहकर पतिव्रता बने रहने का उपदेश देना तो सहज है, परतु ऐसी परिस्थिति मे कितनी और कैसी शारीरिक तथा मानसिक यन्त्रणा होती है तथा मन की उस समय क्या दशा होती है—इसका अनुभव तो भुक्तभोगी को ही हो सकता है। कलम चलाने वाला कोई इस पर क्या लिखे, परतु ऐसी स्त्री को कम-से कम इतना तो अवश्य करना चाहिये कि वह ऐसे पति से अलग अपने मैके मे अथवा अन्य किसी सुरक्षित स्थान में रहे और कानूनी कार्रवाई करके निर्वाह का खर्च पति से वसूल करे।

वस्तुत: हिंदू नारी की शोभा और उसका गौरव तो इसमें है कि वह अपने पवित्र सतीत्व के तेज से पति के दुराचारी तथा अत्याचारी स्वभाव को बदल दे और उसके जीवन को पवित्र बना दे। यमराज को जीतने वाली पतिव्रता चाहें तो भगवत्कृपा

के बल पर क्या नहीं कर सकती। ऐसा होना असम्भव नहीं है। कठिन तपःसाध्य अवश्य है।

अब ऐसे पति महाशयों से यह कहना है कि वे अपनी इस दुर्नीति को नहीं छोड़ेंगे तो अपना तथा हिंदू जाति का भी बड़ा अकल्याण करेंगे। स्त्रियों में भी चेतन आत्मा है। उनको भी शारीरिक तथा मानसिक पीड़ा होती है। वे पत्थर की तो हैं ही नहीं जो आपकी डाँट-मार को सहती रहें और बदले में कुछ भी न करें। आप लोगों को अपना जीवन पवित्र बनाना चाहिये और सती-साध्वी निर्दोष पत्नियों को सताने से बाज आना चाहिये। इसी में अपना कल्याण है।

प्राचीन नारी

स्वच्छ रखती है घर-द्वार को बुहार सदा,
धान कूट लेती और चाकी भी चलाती है।
सूत कातती है और माखन बिलोती घर,
भोजन विशुद्ध निज हाथ से बनाती है॥
करती सिलाई है, लडाती लाड लाडले को,
पाठ करती है, निज पति को जिमाती है।
आय और व्यय का हिसाब लिखती है,
हरि गाथा सुनती है पुण्य जीवन बिताती है॥

नारी की पाँच अवस्थाएँ

कन्या, भगिनी, पत्नी, माता, पितामही—ये भव्य महान।
पाँच अवस्थाएँ नारी की सुख आदर्श शान्ति की खान॥

नारी के छः आदर्श

परामर्श मे है मन्त्री सी, सेवा में नित दासी है।
भोजन में माता के सम है, शयन समय रम्भा सी है॥

धर्म-कर्म मे सदा संगिनी, रोष-सहिष्णु धरा-सी है।
छः आदर्श गुणों से शोभित नारी पुण्य की रासी है॥

समता और विषमता

माता भली, पुत्र-कन्या का पालन करती एक समान।
माता बुरी, डांटती कन्या को, सुत का करती सम्मान॥
सास भली, निज कन्या-पुत्र-वधू को करती है समप्यार।
सास बुरी कर वधु अनाहृत, करती कन्या का सत्कार॥

पति-पत्नी और माता-पिता (सास-ससुर)

क्षमा-मूर्ति नारियाँ सब कुछ सहन करके उसी पति के साथ सन्तोष-पूर्वक जीवन व्यतीत करती पाई जाती है। अधिकाश उदाहरण ऐसे ही है जहाँ मन चले पुरुष हैं और साध्वी स्त्री है। स्त्रियो के लिये शास्त्र ने यह आदेश दिया है कि वे दरिद्री, शठ व नपु सक, कोढी पति का भी त्याग न करें तब पुरुष को क्या उनके लिये भी कुछ नही करना चाहिए यह कहाँ का न्याय है? विवाद कलह एक ही ओर से नहीं होता। कुछ न कुछ कारण दोनों की ओर रहता है। यदि दोनो ओर के कारण का ठीक ठीक अध्ययन करके उसे दूर करने की चेष्टा की जाय तो विवाद की जड कट सकती है। कुटुम्ब के सारे सदस्य यदि क्षमा भाव को अपनालें तो केवल एक के झगड़ालू होने से कलह नही हो सकती। माता के लिए जैसे पुत्र है वैसे ही बहू पुत्री है। माता पुत्र और पुत्री को अपनी सगी सन्तान की तरह प्यार करने लगे तो कोई कारण नहीं कि पत्नी के स्वभाव में अन्तर न पड़े। बहू यदि बुद्धिमती और विवेकवती हो तो उसका कर्त्तव्य है कि सास श्वसुर के चरणो पड़कर अपनी भूलों के लिए क्षमा मांगे और निरन्तर उनकी सेवा मे संलग्न रहे, पुत्र का माता-पिता

के न्याय पक्ष में रहना नितान्त धर्म संगत है। यदि बहू सास-श्वसुर का अपमान करे तो पहले उसे समझाने की चेष्टा की जाय, या उसे कुछ काल के लिए अपने पीहर भेज दिया जाय यही उसके लिए दण्ड है। पत्नी को त्याग कर दूसरा विवाह करने के लिये कोई विधान नहीं है। चाणक्य आदि नीतिकारों ने दुष्टा स्त्री उस ही को कहा है जो व्यभिचारणी हो। निरन्तर पति व सास के साथ द्वेष रखती हो।

पर्दा

स्त्री का एडी से चोटी तक ढके रहना पर्दा कहलाता है। खुली वायु का मनुष्य के शरीर के साथ हर समय स्पर्श होना चाहिये, इससे पर्दा करने वाली बहनें वञ्चित रह जाती हैं। पर्दे के कारण चुस्ती-फुरती और भूख की कमी संद्दा का (कब्ज) सफेद पानी और मासिक धर्म आदि के दोष प्रायः हो जाते हैं। यह प्रथा स्वास्थ्य के लिए बडी हानिकारक है। विशेष दुःख की बात तो यह है कि पुरुप स्त्रियों को पर्दे में रखकर गर्व करता है और अपने को हाई क्लास खानदान के होने का वृथा गर्व करता है। ताज्जुब यह है कि पर्दा जिस समाज में है उस समाज के मेम्बर से पर्दा किया जाता है। दुष्चरित्र नौकरों, अपरिचित व्यक्तियों से नहीं ? धिक्कार है इस गौरव को।

वशीकरण मन्त्र

जो पत्नी चाहे कि मेरा पति मेरे वश में रहे वे अपना व्यवहार नीचे मुजब करे।

जो तू चाहे कि पीतम हो अपना, पति नाम की माला सदा जपना।
नहीं अन्य का देखो कभी सुपना, तब जानो यह देह पवित्र भई।
जिसकी है प्रीति सुरीति घनी, वही साजन की है खरी सजनी।

विधवा के साथ मानवोचित वर्ताव करें।

श्री प्रान्तीय जैन नवयुवक कन्वैन्शन के अधिवेशन मे 'विधवा विवाह' की जो चर्चा हुई है उसके कारण ब्यावर का जैन समाज क्षुब्द हो गया है। यदि आपका यह असन्तोष सच्चे दिल से हो तो आपको विधवा बहन के साथ अपना व्यवहार सुधारना होगा। अतः कुछ सुझाव नम्र विनती के साथ उपस्थित करता हूं। विनीत—मोतीलाल रांका

हिन्दू स्त्री का विवाह कोई सौदा नहीं है जो तोड़ा जा सके। वह तो सदा अटूट रहता है।

आज हिन्दू—विधवा की ओर से समाज मे जो एक ओर उदासीनता और दूसरी ओर उत्साह देखा जाता है, वह दोनों ही उसके लिए वस्तुतः महान् विपत्ति स्वरूप हैं। एक ओर तो समाज के पुरुषो द्वारा वह भांति भाँति के दुःख देकर दुत्कारी जाती है। पिशाचिन है, आते ही हमारे बच्चे को खा गई, रांड कुभागिन है। किसी से बोलती है तो बड़ी पापिन है, किसी समान उम्र की लड़की से भी हसकर बोलना चाहती है तो बेशर्म है, जुल्म न सह सकने की बात कहीं जीभ पर भी लाती है तो बकवादिन और लड़ाकू, बच्चों को किसी अनुचित बात पर टोकती है तो बच्चों को देखकर कुढ़ने वाली, नौकर चाकर से कोई काम की बात कहती है तो कुलटा, साफ सुथरे कपड़े पहने तो शौकीन, कभी औरों की देखा देखी कुछ खाना चाहे तो चटोरी, हँसकर बोले तो महा पापिन, घर में किसी बच्चे को कुछ बीमारी हो जाय तो डाइन, विवाह-शादी में कहीं खड़ी हो जाय तो अमंगल चाहने वाली और भजन-पूजन करना चाहे तो काम चोर है—यह सब सुनने को मिलता है।

चक्की, चूल्हा, बर्तन, पानी, झाड़ू, घर के सभी काम उस ही को करने होते हैं—छोटे बड़े सभी की चाकरी करना उसका काम है, जरा भी कहीं सुस्ताना चाहे तो लानत मलानत, सास, नणंद, देवरानी, जिठानी, और भौजाई तक के ताने सुनने पड़ते हैं बीमारी हुई तो बहाने बनाती है आदि। उसे धर्म—च्युत करके पथ-भ्रष्ट करते हैं और दूसरी ओर उस पर दया दिखा कर भाँति भाँति के प्रलोभन देकर उसे काम की विषवेलिका सेवन करने को उत्साहित करके पथ-भ्रष्ट करते हैं। जैसे पवित्र विधवाओ को तपोधर्म से च्युत करके उन्हे पाप पङ्कज मे फँसाते हैं और जब पाप प्रगट होता है (यानी) गर्भवती मालूम होती है तब धार्मिक स्थानो की यात्रा के बहाने ले जाकर गर्भ गिरवा कर हत्या का अपराध करते हैं, कहीं जाति मे आगई तो हमारे पच परमेश्वर भी इनके साथ न्याय न करके इन्हें ही जाति-च्युत कर देते हैं। जिस पापी ने इन्हे पतित किया उसे कुछ भी उपालंभन देने के बजाय उल्टे उस विधवा को घर से बाहर निकाल देने की व्यवस्था कर देते हैं। अतः उसकी सब सम्पत्ति छीन कर बाहर निकालदी जाती है जिन्हे विधर्मी या वैश्याओ के यहाँ स्थान मिलता है जो या तो पापाचार बढ़ाती हैं या विधर्मी मांसाहारियों का वश बढ़ाती हैं और नसल दरनसल पाप बढ़ता है। ऐसी अवस्था मे विधवा के जीवन का दुःखमय होना स्वाभाविक है और विधया की दुःख भरी आह से समाज का अमगल ही है। इस विनाश से समाज को बचाना हो तो विधवा के साथ बहुत सुन्दर पवित्र और आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिए और साथ ही उनका जीवन पवित्र साध्वी के जीवन की, भांति त्याग-मय रह सके, इसकी व्यवस्था तथा इसी का प्रचार करना चाहिए। विधवा जीवन को पवित्र तथा सुखी बनाने के कुछ उपाय ये हैं:—

१—विधवा जीवन के गौरव का ज्ञान विधवा को कराना उसको यह हृदयंगम करा देना कि विधवा जीवन घृणित और दुःखमय नहीं है, बल्कि पवित्र देवी जीवन है, जिसमें भोग जीवन की समाप्ति के साथ ही आत्यंतिक सुख और परमानन्द की प्राप्ति कराने वाले आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ होता है। उसे समझना चाहिए कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। विषय सेवन से विषयों में आसक्ति कामनादि बढ़ते है। अतः विषय सेवन करने वाली सधवा स्त्रियों को भगवत्प्राप्ति की साधना का उतना समय प्राप्त नहीं हो सकता जो उसको अनायास ही इस जन्म में मिल गया है। इसलिए वस्तुतः वह पुण्यशालिनी और भाग्यवती है और जैसे विषय विरागी त्यागी सन्यासी सब के पूज्य, आदरणीय और श्रद्धास्पद होते है वैसे ही वह भी पूजनीय और श्रद्धा की पात्र है।

इसी के साथ घर के अन्याय स्त्री-पुरुषों को भी विषय-सम्बन्ध बहुत सावधानी से करना चाहिए जिससे विधवा का ध्यान उधर न जाय।

आपके घर में विधवा बहिनें शील देवियाँ हों तो उनका आदर करो, उन्हें पूज्य मानो, उन्हें दुःखदाई शब्द मत कहो। यह देवियाँ पवित्र हैं, पावन हैं, मंगल रूप हैं। उनके शकुन अच्छे हैं। शील की मूर्ति क्या कभी अमंगलमयी हो सकती है?

समाज की मूर्खता ने कुशीलवती को मंगलमयी और शीलवती को अमंगला मान लिया है यह कैसी भ्रष्ट बुद्धि है।

भोग भोग लेने से मनुष्य शरीर की सार्थकता नहीं होती। भोगों को भोगना तो पाशविक जीवन व्यतीत करना है। भोगों की इच्छा पर विजय प्राप्त करना ही मानव शक्ति की सार्थकता है।

जैसे दीपक के प्रकाश के सामने अन्धकार नहीं रह सकता उसी प्रकार शील के प्रकाश के सामने पाप का अन्धकार नहीं ठहर सकता। मगर पाप के अन्धकार को मिटाने और शील के प्रकाश को फैलाने के लिये दृढ़ता, धैर्य और पुरुषार्थ की आवश्यकता है। —श्रीमद् जवाहराचार्य-संवत्सरी से

विधवाः प्रति कुटुम्बिनां वर्तनम् ॥१६४॥

वर्षत्स्नेह सुधामृता शुभदृशा कौटुम्बिकै सज्जनैः।
सम्प्रेक्ष्या विधवा विशुद्ध चरिता मान्याश्च साध्वी समा. ॥
सामां स्यात्कुपित मनो नहि: पुनर्विघ्नोपि विद्यार्जने।
सत्कार्य प्रतिबन्धनं च न भवेद्वर्त्यं तथा ता प्रति ॥

भावार्थ—श्वसुर वाले या पिता के पक्ष वालों को विधवा के साथ अति कोमल और सदय हृदय से तथा स्नेहसुधा वर्षाने वाली दृष्टि से देखना चाहिए। उसे अनाथ समझ उसका पूर्ण रीति से पालन करना चाहिए। प्रत्येक पवित्राचरण वाली विधवा को एक साध्वी स्त्री के समान सम्मान देना चाहिए। किसी भी समय उसका मन कुपित या व्यग्र न हो, उसके अभ्यास में बाधा न पड़े, और अभ्यास कर लेने के पश्चात् सत्कार्य, समाज सेवा और धर्म सेवा बजाने की तरफ उसकी चित्तवृत्ति झुके उसमें अंतराय न लगे इस तरह उसके साथ वर्ताव करना प्रत्येक कुटुम्बी का परम कर्त्तव्य है।

'कर्त्तव्य कौमुदी' से—

शतावधानी प० मुनि श्री रत्नचन्द्रजी

उसके तप त्याग, ज्ञान-ध्यान में वृद्धि हो ऐसे सात्विक कार्य अधिक से अधिक उसके पास रहने चाहिए, जिससे उसके मन को विषय भोगों की ओर जाने का अवसर ही न मिले।

विधवाओं की धन सम्पत्ति को देव सम्पत्ति मानकर बड़ी ईमानदारी से उनका संरक्षण करना चाहिए। विधवा के हक

को मारना तथा उसकी सम्पत्ति पर मन चलाना और हड़पना महापाप है।

जिस घर मे विधवा है उसका धर्म निभाने के लिए उस घर के कुटुम्बी दश प्रतिशत भी कठिनता से सादा संयमी जीवन वाले मिलेंगे, ऐसे कामुकता के दावानल मे रहते हुए दासता से भी नीचे स्तर पर अपमानित जीवन बिताते हुए भी इन्होंने अपने चरित्र को निष्कलक और निस्सन्देह जनक बना रखा है। उसमे महान् सहायक जैन की साध्वियाँ है। उन्ही के सहयोग के प्रताप से इन देवियों का संयमपूर्वक जीवन प्रकाशमान हो रहा है (जिस समाज को ऐसी साध्वियों का सहयोग प्राप्त नहीं है उस समाज में भी आदरणीय विधवा देवियाँ मौजूद है। क्योंकि लौकिक व्यवहार से यह कार्य नारी समाज मे निंदनीय और घृणास्पद समझा जाता है। हिन्दू समाज मे विधवा विवाह एक्ट नं० १५ सन् १८५६ ही से जायज करार दिये जाने पर भी ब्राह्मण, बनियो के समाज की विधवाये इस प्रवृत्ति मे स्वतः दाखिल होना कभी गवारा नहीं करतीं बल्कि जिस समाज मे विधवा विवाह जारी है उसमें भी ऐसी २ देवियाँ मौजूद हैं जो विधवा होने पर भी शीलवती बनी हुई हैं—यह विशेष गौरव की बात है। विधवा विवाह करने वाले समाज में भी पुनर्विवाह नहीं करने वाली देवियाँ की वृद्धि हो रही है जिस समाज में विधवा विवाह जारी है उस समाज के उसके नजदीकी रिश्तेदार उन्हें जबरन बेच देते हैं उसकी सम्पत्ति संतान की भावी व्यवस्था बिगड़ जाती है। नाता जहाँ कहीं स्वेच्छा से भी होता है तो उसकी रस्म महोत्सव के रूप मे नहीं बल्कि घृणा रूप में पूरी की जाती है।

आपको चाहिए

कि स्वय अपने जीवन को सादा और संयमी बनायें।

जिस किसी कुटुम्ब में विधवाओं को पीड़ित और अपमानित किया जाता हो उसको रोकें, दण्ड दें। जिन विधवाओं के गुजर का साधन न हो उन्हे उनके अनुरूप धंधा दिलावें, हुनर सिखावें जैसा कि स्वनाम धन्य सु० श्रावक मूलचन्दजी मोदी ने किया था। पैसे देते हुये भी उनके चीज वस्तु लाने वाला नहीं है उनके इन कष्टों को दूर करें और उनमे सद्भाव व सद्विचारो की प्रेरणा दें।

हिन्दू विधवा व विधवा पुत्रवधू व विधवा पौत्रवधू के जायदाद सम्बन्धी अधिकार के कानून एक्ट नं० १८ सन् १९३७ का सार

जब कोई ऐसा हिन्दू जिस पर हिन्दू लॉ का 'दायभाग स्कूल' लागू होता हो बिना वसीयत किये मर जावे तो उसकी जायदाद और जब कोई ऐसा हिन्दू जिससे हिन्दू लॉ का दूसरा स्कूल या कस्टमरीलॉ (रिवाजी कानून) लागू होता हो, मुन्किस्मिया जायदाद छोड़कर बिना वसीयत किये मर जावे उसकी बँटी हुई जायदाद नीचे की लाइन वाली औलाद के साथ-साथ उसकी विधवा को ऐसे पहुँचेगा जैसे एक बेटे को पहुँचती है। जैसे "अ"—एक विधवा व १ लड़का छोड़कर मरा तो माँ-बेटे दोनों बराबर हिस्सा पावेंगे। अगर "अ" चार लड़के व एक विधवा छोडकर मरा तो विधवा को पाँचवाँ हिस्सा मिलेगा। अगर "अ" अपनी विधवा १ लड़का, १ पोता, १ परपोता छोड़ कर मरा तो विधवा को चौथा हिस्सा मिलेगा। मगर शर्त यह है कि बाप से पहले मरे हुए लड़के की विधवा को उसके पति के हिस्से के बराबर हिस्सा विधवा सास से पहले मिलेगा। अगर पहले मरे हुए लड़के का कोई लड़का या कोई पोता जीवित

है तो विधवा बहू को एक पोते के बराबर हिस्सा मिलेगा। अगर पोता अपने बाप के पहले मर गया हो और कोई जीवित लड़का न छोड़ा हो ऐसी सूरत में पोते की विधवा को लड़के की विधवा व मूल पुरुष की विधवा से पहले हक मिलेगा। अगर पोते का कोई लड़का या पोता जीवित हो तो पोते की विधवा को उसके एक पोते के हिस्से के बराबर हिस्सा मिलेगा। दायभाग के सिद्धान्त को छोड़ कर हिन्दू लॉ के अन्य सिद्धान्त के आधीन अगर बिना वसीयत किये कोई हिन्दू मर जाय तो मरते समय उसको जो हक मुश्तर्का खानदान की जायदाद में हासिल थे, तो उसकी वेवा को वही हक हासिल होंगे कि जो उसके पति को हासिल थे और विधवा मुश्तर्का खानदान की जायदाद में से बँटवारा कराकर उस जायदाद को अपने जीवनभर भोग कर सकती है। यह कानून १४ अप्रेल सन् १६३७ से लागू है। विशेष विवरण असली कानून मे देखें।

हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह का कानून एक्ट नं० १५ सन् १८५६ ई०

हिन्दुओं के मध्य विधवाओं की शादी नाजायज न होगी और वैसी शादी से उत्पन्न सन्तान गैरकानूनी न होगी। उस सन्तान को उत्तराधिकार में वही समस्त हक मिलेंगे जो पहली शादी की स्त्री से उत्पन्न सन्तान को मिलते हैं। विधवा के वे अधिकार जो मृत पति की जायदाद पर होते हैं पुनर्विवाह के बाद समाप्त हो जाते हैं। नाबालिग विधवा जिसका गोना न हुआ हो, अपने पिता, यदि पिता न हो तो दादा, दादा न हो तो माता की व इनमें से कोई न हो तो भाई की व भाई न हो तो अपने अन्य सम्बन्धी पुरुष की आज्ञा से और जिसका गोना हो गया हो,

खुद की रजामन्दी से पुनर्विवाह कर सकती है। विशेष असली एक्ट में देखें।

भरण-पोषण का खर्च पाने के अधिकारी

(१) पत्नी, बिठलाई हुई स्त्री जो सिर्फ उस ही के लिये रही हो—मृत प्रेमी की जायदाद से उसे परवरिश पाने का हक है। सन्तान जाय्रज या नाजायज जो अपनी परवरिश न कर सकती हो। —हिन्दू लॉ

बीवी-बच्चों का गुजारा

दफा ४८८ जाब्ता फौजदारी देखें।

मुसलमानों के तलाक का कानून नं० ८ सन् १६३६ ई०

चार साल की अवधि तक शोहर का पता न चले, दो साल की अवधि तक शोहर भरण-पोषण का प्रबन्ध न करे, शोहर को ७ साल या इससे ऊपर की कैद की सजा मिली हो, बिना कारण शोहर ३ साल तक अपने वैवाहिक कर्त्तव्यों का पालन न कर सके, विवाह के समय या अब भी नामर्द हो, दो साल की अवधि से पागल रहा हो या कोढ या मूत्र सम्बन्धी महा रोग से बीमार रहा हो, निर्दयता का व्यवहार करता हो, बुरी हरकत की औरतों से मिलता-जुलता हो, अपवित्र जीवन व्यतीत करने के लिये मजबूर करता हो, उसकी जायदाद को मुन्तकिल करता हो या कानूनी अधिकार के इस्तैमाल से रोकता हो, धार्मिक अमल करने से रोकता हो, अगर उसके एक से अधिक स्त्रियां हों और उनके साथ कुरान के आदेशानुसार समानता का बर्ताव न करता हो, उसके पिता ने या अन्य वली ने १५ साल की उम्र से पहले उसको शादी में दिया हो, अगर १८ साल की होने पर वह शादी को नामंजूर करती हो, बशर्ते कि इस जमाने मे शोहर से उसका ताल्लुक न हुआ हो।

उपरोक्त कारणों से मुस्लिम स्त्री तलाक की डिग्री प्राप्त कर सकती है। विशेष असली कानून में देखें।

सिनेमा का आचार पर प्रभाव

(लेखक—आचार्य मश्रुवाला)

एक भाई लिखते हैं—

'नीचे की बात मैंने 'युगधर्म' में पढ़ी थी।'

''दिल्ली की एक महिला कार्यकर्त्री ने दिल्ली की स्त्रियों की नैतिकता की जाँच करने का प्रयत्न किया। वे अपनी रिपोर्ट में लिखती हैं कि दिल्ली मे १३०० वेश्यायें हैं, जिनमें से ३०० शरणार्थियो मे से हैं। लेकिन दिल्ली की कोई भी सड़क या मुहल्ला ऐसा नही है, जहाँ कुटनखाने न चलते हों। और वहाँ बहुत-सी स्त्रियाँ जाती हैं। यह भी नहीं है कि उनमें सिर्फ निराधार स्त्रियाँ ही जाती हों। जिनके भाई और पति नौकरी करते हैं, ऐसी स्त्रियाँ भी वहाँ जाती हैं। उनके भाई और पति जान-बूझ कर इस बात की उपेक्षा करते हैं, क्योंकि इस महँगाई के जमाने मे इस तरह की गन्दी कमाई होने पर भी घर-गृहस्थी का खर्च बड़ी मुश्किल से चलता है। कालेज में पढ़ने वाली लड़कियाँ भी कभी-कभी वहाँ जाती हैं और अपने शृङ्गार का खर्च निकाल लाती हैं।''

''हमारा देश जो भोगप्रधान सस्कृति की ओर आगे बढ़ रहा है, उसमे आधुनिक शिक्षण का हाथ तो है ही, लेकिन उससे भी ज्यादा सिनेमा का हाथ है। चाहे जैसी हालत हो, बेकारी हो या अकाल, तो भी शहरों मे सिनेमा के टिकिट मिलना मुश्किल होता है। जिस देश में वेश्यायें देवियो की तरह पूजी जाती हों, उस देश की नैतिकता कितनी ऊँची समझी जानी चाहिए? आजकल रेडियो, ग्रामोफोन वगैरा भी सिनेमा के वीभत्स गीतों के प्रचार-केन्द्र बन गये हैं। पुरानी सरकार तो

यही चाहती थी कि लोग ऐश-आराम में रहें, भोग-विलास के कीड़े बने रहे, आपस में झगड़ते रहे और व्यसनों के दास बने रहें। और इसी मे वह अपनी सुरक्षा मानती थी। रूस ने सिनेमा, रेडियो वगैरा प्रचार के साधनो की मदद से अपनी पंचवर्षीय योजनायें चार-चार वर्षों में पूरी कर डाली। लेकिन हम स्वतन्त्र होने के बाद किधर जा रहे हैं ?"

यह बात दिल्ली की है। बम्बई से आये हुए एक भाई ने बम्बई का इससे भी भयंकर वर्णन किया था। 'नारी की प्रतिष्ठा' लेख में नागपुर के विद्यार्थियो के व्यवहार के बारे मे तो लिखा ही गया है। उसे और बढ़ाने के लिए एक भाई लिखते हैं—

"नागपुर का दूसरा एक आघात पहुँचाने वाला किस्सा अखबारों मे पढ़ा। एक १६-१७ साल के लड़के का एक लड़की से प्रेम हो गया। लड़की के माता-पिता ने उसका सम्बन्ध दूसरी जगह कर दिया। इसलिए मौका पाकर लड़के ने लड़की का खून कर डाला और पकड़ा गया। इस उम्र मे प्रेम और वह भी खून करने की हद तक जाय, ये संस्कार उसे कहाँ से मिले होंगे ?"

"शहर की बात छोड़िये। आपका वर्धा तो छोटा कस्बा है। वहाँ पूज्य बापू और सन्त पुरुषों का निवास स्थान है। आज तक वहाँ रात के १२-२ बजे तक भी कोई स्त्री बेखटके घूम सकती थी। थोड़े ही दिन की बात है। सिनेमा-घर के पास से दो बालिग भाई-बहन जाते थे। वहाँ कुछ गुण्डे बैठे थे, उन्होंने इन दोनों को घेर लिया और बहन को भगा ले जाने का प्रयत्न किया। बड़ी कोशिश के बाद उस बहन को गुण्डों के पंजे से छुड़ाया जा सका।"

"शहरो में तो आज लूटना, खून करना, बैंक तोड़ना, रास्ते चलते लोगो को लूट लेना, लड़कियों को भगा ले जाना और उनको बेचना—यह सब बहादुरी का काम माना जाता है।

कालेज और स्कूलों में पढने वाले लडके-लड़कियो का सिनेमा के कारण इतना पतन हो गया है कि आज तो वे जगहे पाठशाला के बजाय प्रेमशाला बन गई हैं। और संतति-नियमन की ढेरो से दवाइयां बिकती हैं और फ्रेंचलेदर आदि का व्यवहार किया जाता है इसलिये छिपा व्यभिचार भी चलता ही होगा। जिस अवस्था में विद्यार्थियो को ज्ञान सम्पादन करना चाहिए, चरित्रनिर्माण करना चाहिए, शरीर को बलवान और तेजस्वी बनाना चाहिए, उस अवस्था मे ये कुसंस्कार उनमें जमते हैं, यह कितने दु ख की बात है।

"भारत मे भुखमरी का पार नहीं है, बेकारी फैली हुई है और गरीबो को अपना पेट पालने के लिए बच्चे तक बेच देने पड़ते हैं। मध्यमवर्ग को अपना गुजर चलाने के लिए अपनी बहनों और पत्नियों को कुटनखाने में भेजना पड़ता है। जब कि दूसरी तरफ सिनेमा के टिकिट नहीं मिलते। नये-नये सिनेमा-घर बनते ही जाते हैं। लाखों रुपये उनके पीछे बरबाद होते हैं। आज गवर्नरो और मन्त्रियों के वेतनो के खिलाफ शोरगुल मचाया जाता है, लेकिन उनसे भी कई गुना ज्यादा वेतन सिनेमा में काम करने वाले अभिनेता-अभिनेत्रियों को दिया जाता है। और उसका उपयोग भोगविलास, व्यभिचार, जुए और शराब में होता है। आज समाज की स्थिति यह हो गई है कि घर में चाहे खाने को न हो, लेकिन सिनेमा देखे बिना नही चलता। मेरे मन में यह सवाल उठा करता है कि क्या राष्ट्रपति और मन्त्रियों के वेतन ही करदाताओं की जेबो से निकलते हैं, और यह सारा पैसा बाहर से आता है? या ज्यादा ऊँचे कार्य के लिये खर्चा जाता है?"

"एक तरफ हिंदू धर्म अपनी संस्कृति का ढिंढोरा पीटता रहता है, महापुरुषों का गुणगान करता रहता है, उनकी पूजा

करता है, जब कि दूसरी तरफ विष्णु, राम, कृष्ण, बुद्ध, नारद वगैरा पवित्र पुरुषों की सिनेमा में हँसी उड़ाई जाती है। इन पवित्र पुरुषो का अभिनय करने वाले एक्टर शराबी, व्यभिचारी सब कुछ होते है। एक तरफ भारत महासती अनुसूया, सीता, सावित्री और पार्वती के कारण गर्व का अनुभव करता है, और अपनी बहन-बेटियों को वैसा बनाने का आदर्श सामने रखता है, दूसरी तरफ इन महासतियो का अभिनय करने वाली नटी सिनेमो की तरह ही समाज में भी थोडे-थोड़े दिनों के बाद नये-नये पति खोजती है और वेश्याओ से भी नीच काम करने मे नही हिच-किचाती। हिन्दू समाज को इससे जरा भी आघात नहीं लगता, उलटे वह आनन्द और गर्व का अनुभव करता है। उनके पीछे लाखों रुपये बिगाड़ता है। नौजवान इन अभिनेत्रियो के पीछे पागल हो जाते है, घरो मे उनके चित्र सजाते है और उनकी पूजा करते हैं!"

"कुछ लोग सिनेमा से होने वाले फायदों का वर्णन करके उसका बचाव करते है। लेकिन आज एक भी चित्र ऐसा नही होता, जिसमे प्रेम और वह भी बहुत निचले स्तर का प्रेम न दिखाया गया हो। गलती से एकाध दूसरे प्रकार का चित्र बन गया, तो वह सफल नहीं होता और निर्माता को नुकसान उठाना पड़ता है। उससे समाज को कितना फायदा होता होगा, यह तो भगवान जाने!"

"शिक्षाशास्त्री, संतपुरुष, वगैरा सिनेमा को धिक्कारते है। उनमें शरीक न होने के लिए समझाते है। और सज्जन लोगों को उनमें काम करने से रोकते भी है। लेकिन दो घड़ी मजा लूटने के खातिर वे भी सिनेमा देखने मे नहीं चूकते। दूसरी तरफ, आज भारत की प्रजा का चरित्र-निर्माण तो सिनेमा, नाटक, रेडियो वगैरा से ही हो रहा है। दिनो-दिन इन चीजो की वृद्धि भी हो

रही है। एक-ओर तो खूब विलास की सामग्री मुहैया करें और दूसरी ओर संयम की शिक्षा दें, तो उससे क्या लाभ होगा ? या तो इस अनीति के धाम सिनेमा को बन्द कर देना चाहिए या शिक्षा शास्त्री, सन्त-पुरुषों वगैरा चरित्रवान लोगों को उस पर अधिकार करके उसमें उचित परिवर्तन करना चाहिए।"

"प्राचीन संस्कृति का अभिमान रखने वाले भारत के नर-नारी आज से यह प्रतिज्ञा लें कि न तो हम सिनेमा में भाग लेंगे, न उस पर पैसे खर्च करेंगे। साथ ही उसके खिलाफ जोर-दार आन्दोलन भी चलाना चाहिए।"

क्या बिना स्त्री काम नहीं चल सकता ?

('खण्डेलवाल' हाथरस फरवरी १९२९ के आधार पर)

भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि इन्द्रियों के काम किसी हालत में भी रुक नहीं सकते। नेचर के काम बन्द नहीं हो सकते। जो खाना खायेगा वह पाखाने जरूर जायेगा, जो जल पियेगा वह पेशाब अवश्य करेगा। भोजन करने से स्त्री-इच्छा अवश्य होगी। यही वजह थी कि वायु और जल पर गुजारा करने वाले विश्वामित्र और पाराशर प्रभृति मुनि भी अपनी तपस्या भंग कर के स्त्री-भोग करने पर आमादा हुए। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शृंगी और नारद प्रभृति भी स्त्री बिना न रह सके, हम और आप जिन *साधु सन्त और महन्तो को जितेन्द्रिय बने हुए देखते हैं, वे वास्तव में जितेन्द्रिय नहीं हैं। अधिकांश स्त्री भोग करते, गर्भपात कराते और अपने पापों पर पर्दा डालते हैं। अगर वे लोग अपना सच्चा हाल बयान करने लगें तो आपकी आँखें खुल जावें। उन्हीं भोगते हुए और पास-

* जैन साधु अब भी संयमी और कनक कामिनी के त्यागी हैं।

वान रण्डियो से आशनाई रखते हुए भी अपनी झूंठ के बल से आपको धर्मात्मा दीख रहे है। ये लोग अपनी-अपनी छातियों पर हाथ धर कर देखें और अपने अपने मनों में विचार करे कि ये बातें कहाँ तक सच हैं। जब आप लोग काम की ज्वाला को एक पत्नी तक ही सीमित नहीं कर सकते, तब आप समाज के निर्धन नवयुवको के विवाह कराने की चिन्ता न करके उन्हें काम-वासना की तृप्ति के लिए किसी अमर्यादित मार्ग पर जाता देख कर उसे जाति-च्युत कर देते है। इसका अभिप्राय यह है कि बलात उन्हे गैर-जाति मे प्रविष्ट होने को मजबूर करते हैं। आप के पास कन्याओं की कमी नही है यदि धन सम्पन्न व्यक्ति के बजाय योग्य वर की खोज करने लगें तो कन्याओ के लिए योग्य वरो की कमी नही है। धनवानो के दहेज की मांग के कारण बड़ी २ उम्र की कन्याएँ हो जाती हैं और मर्यादा भंग करके किसी के साथ सहवास कराने लग जाती हैं यदि पाप प्रकट होता है तो उस ही के साथ स्वतन्त्र विवाह कर लेती हैं। इस से अनाचार, पापाचार बढ़ रहा है। और अखबारो में आए दिन खबरें पढ़ने को मिलती हैं कि कोई सहपाठी के, कोई शिक्षक के और कोई नौकर या अन्य के साथ चली गई। विधर्मी होकर मांसाहारियो का वंश बढ़ा रही हैं।

भारतीय पार्लियामेन्ट में—

दहेज पर तीन बिल महिलाओ की ओर से पेश किये गये हैं। उनमे दहेज लेने और देने को दण्डनीय करार दिया है। इन बिलों के पास हो जाने से लेन-देन गुप्त रूप से जारी हो जावेगा और दहेज का काला बाजार शुरू हो जायेगा। कानून तोड़ने वालों को पकड़ना और कानून भग को सिद्ध करना प्रायः असम्भव ही है।

सुझाव

(१) लड़के लड़कियों की खोज को आसान बनाने के लिए सरकार द्वारा 'इम्प्लायमेन्ट-एक्सचेन्ज' जैसी पद्धति पर विवाहा-र्थियों के रजिस्ट्रेशन, जरूरत-मन्दों को उसकी सूचना प्रदान करने से थोड़ा-बहुत विवाह का क्षेत्र बढ़ जावेगा।

(२) वैश्य कॉन्फ्रेन्स बड़ौत में स्वीकृत नियम मंगा कर उन पर अमल करो।

(३) इस ही सुख साधन माला का पुष्प नं० ६ भूल-सुधार मूल्य ≈) मंगाकर पढ़ें उसमे अनेक मार्ग इस संकट से बचने के बताये है। श्रीयुत डारविन महोदय ने कहा है:—

Man sees with scrupulous caie the character and pedigree of his horse, cattle and dogs, before he matches them, but when be comes to his own marriage, he rarely or never takes such care.

अर्थात्—"मनुष्य अपने घोड़ों, मवेशियो और कुत्तों का जोड़ा मिलाने के पेश्तर उनके स्वाभाविक गुण और नसल आदि अनेक बातों पर बड़ी विचार-शक्ति से काम लेता है, लेकिन जब खुद या अपनी सन्तान की शादी का मौका आता है, तो वह इन बातों की कतई परवाह नहीं करता।"

विवाह करना ही होगा

थाईलेण्ड में हरेक कुमारी जिसने ३० वर्ष की उम्र तक विवाह न किया हो, पति के लिये सरकार को अर्जी भेज सकती है। कानून के अनुसार सरकार उसको पति देने के लिए बंधी हुई है। हरेक अविवाहित मर्द पर इच्छा न रहते हुए भी, एक स्त्री से शादी करने के लिये जोर डाला जा सकता है।

'बाल सखा' जनवरी सन् १६

स्वास्थ्य-सन्देश

(लेखक—स्वामी शिवानन्द ऋषिकेश)

"कल्याण" गोरखपुर से साभार

वह कौनसा अनमोल पदार्थ है जो जीवन को रसमय बना देता है ? उत्तर है स्वास्थ्य। क्या आज आप "शरीरमिदं खलु धर्मसाधम्" का गीत नहीं गावेंगे ? चरक-संहिता की उक्ति है:—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

स्वास्थ्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल है। रोग उसके विनाशक हैं। स्वास्थ्य ही जीवन का श्रेय है। इसलिए आपको स्वास्थ्य संरक्षण के नियमो पर सब से पहले और सब से अधिक ध्यान देना चाहिए। स्वास्थ्य के नियम प्रकृति के नियम हैं। इनका उल्लंघन करने पर दण्ड भोगना ही पड़ता है। इन नियमो पर न चलने से आदमी रोगो का शिकार हो जाता है और उसकी जिंदगी में कोई खुशी नही रह जाती।

सात्विक अर्थात् उत्तम, स्वास्थ्य-वर्द्धक, विटैमिन-युक्त आहार, नित्य यौगिक आसन, पवित्र और सादा जीवन तथा साधु विचार—ये स्वास्थ्य-संरक्षण एवं पौरुष और प्राण शक्ति को ठीक रखने के लिए अत्यधिक अपेक्षित हैं। प्राचीन ऋषियो और योगियो की दीर्घायु और शाँत जीवन के आधार ये पवित्र नियम ही थे। पूर्ण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य लाभ करने की यौगिक विधि इन्ही महत्त्वपूर्ण नियमों पर अवलम्बित थी। यदि हम अपनी खोई हुई श्री और शोभा को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं तो इन्हीं का आश्रय लेना पड़ेगा।

स्वच्छ, स्वास्थ्य-वर्द्धक और पौष्टिक भोजन उचित मात्रा में करना चाहिए। नित्य कुछ फल खाना आवश्यक है, क्योंकि

उनसे शरीर का संरक्षण होता है और उनमें विटैमिन तथा खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, जिनसे शरीर का पालन और रोगो से उसकी रक्षा होती है।

दुर्गन्धित बासी, सड़े और 'बूफे' अस्वच्छ तथा दोबारा पकाए पदार्थों को छूना भी असगत है। जिसका जीवन भोजन के लिए है, वह पापी है, जिसका भोजन जीवन के लिए है वह साधु। साधु पूजनीय है। यदि भूख है तो भोजन भली-भांति पच सकता है, यदि भूख न हो तो कुछ मत खाओ, पेट को विश्राम लेने दो।

केवल पद्रह मिनट ही सही, नित्य-प्रति योगिक आसन करने से मनुष्य स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न-चित्त रहता है। इससे यथेष्ट शारीरिक बल मिलेगा पुट्ठे मजबूत होंगे, दृढ़ता मिलेगी, शरीर सुन्दर बनेगा और दीर्घायु की उपलब्धि होगी।

आजकल व्यायाम की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित है। इन सब में हमारे प्राचीन ऋषियों और योगियों की आसन तथा प्राणायाम पद्धति सर्वोत्तम है। यह पद्धति पूर्ण है। इससे मस्तिष्क पुट्ठे, स्नायु, अवयव और तन्तु स्वच्छ तथा शक्तिशाली होते हैं। सब पुराने रोग मूल से नष्ट हो जाते हैं। आसन तथा प्राणायाम के अभ्यास द्वारा शरीर तथा मस्तिष्क दोनों स्वास्थ्य लाभ करते है तथा मनुष्य को आध्यात्मिक अनुभव भी होता है।

मन का शरीर से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर मन की और मन शरीर की सहायता करता है। निस्सन्देह, दोनो का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। यदि शरीर रोगी होता है, तो मन भी बीमार पड़ जाता है। यदि शरीर शक्तिशाली और स्वस्थ हो तो मन भी शक्तिशाली और स्वस्थ रहता है। मन की प्रकृति को समझना और उसको स्वस्थ रखना अत्यावश्यक है। सदा प्रसन्न रहो। प्रसन्नता सर्वश्रेष्ठ मानसिक बलवर्धक औषध है।

क्रोध से अपनी रक्षा करो। जल्दबाजी, चिंता, आकुलता, भय उत्सुकता और मानसिक खिचाव से बचो। शांति, स्वास्थ्य, विश्राम और प्रसन्नता-प्राप्ति की सेवा करो।

एकाग्रचित्त और शांत मन, स्वास्थ्यकारी संतुलित भोजन हर वस्तु में संयम, नित्य पर्याप्त विश्राम और निद्रा, सम्यक् जीवन तथा सम्यक् विचार से स्वास्थ्य लाभ और दीर्घायु प्राप्त होती है। उग्र क्रोध, विकार, अस्वास्थ्य कर, अनुचित, दोषयुक्त तथा आवश्यकता से अधिक मात्रा में भोजन, मद्यपान और ब्रह्मचर्य के अभाव से अस्वस्थता आती एवं अकाल मृत्यु हो जाती है।

बन्धुओ! आप लोग मांस खाकर अपना स्वास्थ्य क्यों बिगाड़ते हैं? मांसाहार से विकार उत्पन्न होते और चित्त अशांत रहता है। फलाहार का मन पर शांतिकारक प्रभाव पड़ता है और विकारों का दमन होता है। वर्तमान सभ्यता तथा वैज्ञानिक प्रगति के आजकल के समय में मनुष्य-जीवन कृत्रिम हो गया है। वह पेटेंट खाना खाता है, शराब पीता है, कसकर कालर बाँधता है, थियेटर-में तमाशा देखता है, होटलो और जल-पान-गृहों मे दुनिया भर की चीजें खाता है, ईश्वर तथा जीवन के ध्येय को भूल जाता है, दुराचार पूर्ण कृत्रिम जीवन व्यतीत करता है और तरह-तरह की बीमारियो का शिकार होकर अकाल में ही परलोक सिधार जाता है।

भोजन की पवित्रता से मन की पवित्रता आती है। वह शक्ति जो शरीर और मन का सम्बन्ध जोड़ती है, हमारे भोजन में विद्यमान है। विभिन्न प्रकार के भोजन का मन पर अलग-अलग असर पडता है। कुछ भोजन ऐसे हैं जिनसे मन और शरीर को अत्यधिक स्वास्थ्य लाभ होता और उनसे शक्ति तथा सहन-शीलता की प्राप्ति होती है। अतएव यह नित्ता-

न्त आवश्यक है कि हम शुद्ध और सात्विक भोजन किया करें। भोजन का ब्रह्मचर्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि भोजन पर भली-भांति ध्यान दिया जाय तो ब्रह्मचर्य निर्वाह सुगम हो जाता है।

ब्रह्मचर्य अमरता का आधार है। इससे भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक विकास होता है। आत्मिक शांति की यह नींव है। काम, क्रोध, लोभ आदि आंतरिक असुरों से लड़ने का यह शक्तिशाली अस्त्र है। इससे नित्य आनन्द और अविच्छिन्न तथा अक्षीयमाण परम सुख की प्राप्ति होती है। शारीरिक शक्ति, मस्तिष्क की स्वच्छता, महान् इच्छा-शक्ति, ग्रहण-शक्ति, स्मरण-शक्ति और विचार-शक्ति में इससे बड़ी वृद्धि होती है। केवल ब्रह्मचर्य के द्वारा ही जीवन में आपकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है।

खाओ कम, चबाओ ज्यादा, बोलो कम, विचारो ज्यादा, बठो कम, चलो ज्यादा, लो कम, दो ज्यादा, पहिनो कम, नंगे रहो ज्यादा, उपदेश कम, आचरण ज्यादा, आज्ञा कम, सेवा ज्यादा—इन स्वास्थ्य नियमों का पालन करो। इनसे स्वास्थ्य, दीर्घायु और नित्य शांति की प्राप्ति होगी।

स्वच्छता

(संस्कार पोथी से साभार उद्धृत)

आओ भैया! करें पढ़ाई, सीखें फिर से चलो सफाई।
जहाँ स्वच्छता का है वास, वही देवता करें निवास।
सफाई! सफाई!! सफाई!!! स्वच्छता! स्वच्छता!! स्वच्छता!!!
बालकों के मुँह साफ, पहरने के कपडे साफ।
काम के बरतन साफ, घर के आंगन साफ।
घर की मोरियाँ साफ, कूचा साफ गली साफ, देह साफ दिल साफ।
सफाई! सफाई!! सफाई!!! स्वच्छता! स्वच्छता!! स्वच्छता!!!

हिंसा से बचो

महावीर बोले—

अशुचि से दूर रहो ! लार, रेंट, कफ, थूक, मल-मूत्र।
जूठन और गन्दा पानी, परठने मे सावधानी रक्खो।

देख लो उत्तराध्ययन सूत्र—

उपयोग में धर्म है। लापरवाही में पाप है॥

देख लो ठाणांग सूत्र—

पंचेन्द्रिय की घात, घोर अधर्म है।
पंचेन्द्रिय की घात नरक का द्वार है॥

चौदह प्रकार के समूर्छिम * पचेन्द्रिय, जीवो की हिंसा से बचो बचो!

हिंसा होती है--पाप होता है

जूठन से जीव पैदा होते हैं, जनमते हैं, मरते हैं।
कीचड़ में डांस-मच्छर पैदा होते है, हैरान करते और हैरान होते हैं।
हिंसा होती है ... ...पाप होता है।

उघाड़े मैले पर मक्खी बैठती है,
फिर उड़कर खुराक पर आ बैठती है।
बदबू आती बीमारी आती,
धर्म-नियम भग होते हैं।
हिंसा होती है... .. ....पाप होता है।

मल-मूत्र और बलगम मे, पाँव भिड़ा कर घर में घुसते,
धर्म के मन्दिर मे घुसते, धर्मस्थान की आशातना होती है,
मनुष्यो का दिल दुखता है, मन में घिनापन होता है।
हिंसा होती है ... पाप होता है।

---

* मनुष्य के मल-मूत्र आदि की गंदगी के कारण अपने आप पैदा हो जाने वाले जीव।

तो क्या करें ?

सफाई से काम करो ! सफाई से बरतो !! सफाई रक्खो !!!

जहाँ पानी हो वहाँ रेत होनी चाहिए

रेत हो तो कीचड़ नहीं होता, रास्ते मे बलगम नही डाला जाता, कोने में डाला जाता है और राख से ढँक दिया जाता है।

राह चलते समय बलगम आवे तो कपडे के छोटे-से टुकड़े में डालकर कचरापेटी में डाल देना ठीक है। कूड़े-कचरे को भी उसी पेटी मे डाल देना चाहिए।

पाखाने के लिए खुली जगह मे बस्ती से बाहर जाया जाय

तो

ताजा हवा मिले, अपच कम हो दिमाग ताजा रहे,
हिंसा टले, पाप टले धर्म फले, नियम फले।

बच्चों को गली में टट्टी जाना पड़े तो एक किनारे बैठे। मल-मूत्र को राख से ढँक दे, बराबर ढँक दे।

सबका आशीष मिले। गाँव के सब रोग टलें।
चारों ओर सफाई ! सफाई !! और सफाई !!!

प्राचीन भारत में मानवीय अधिकार

('नवभारत' से साभार उद्धृत)

सयुक्त राष्ट्रीय शैक्षिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) का जो चौथा साधारण सम्मेलन २६ सितम्बर से पेरिस में हो रहा है, उसमें मानवीय अधिकारो की विश्वव्यापी घोषणा के सिलसिले में एक प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया है। इस प्रदर्शनी के लिये शब्द चित्रों एवं तथ्यात्मक लेखों के रूप में भारत से जो सामग्री भेजी गई है, उससे पता चलता है कि यह

प्राचीन देश किस प्रकार युग-युग मे मूल मानवीय अधिकारों का पक्षपाती एवं प्रबल समर्थक रहा है।

मानवीय अधिकार चार श्रेणिओं मे विभक्त किये जा सकते हैं। भौतिक, नैतिक, मानसिक तथा राजनैतिक। भौतिक अधिकारो के अन्तर्गत दास प्रथा का अन्त, गमनागमन की स्वतन्त्रता, अमानवीय व्यवहार की समाप्ति, स्वेच्छापूर्ण गिरफ्तारी व हस्तक्षेप की मनाही, आदि अनेक बातें हैं। नैतिक अधिकारों मे पारिवारिक जीवन एवं सम्पत्ति की सुरक्षा, स्त्रियो की दशा का सुधार, धर्म व विचार की स्वतन्त्रता आदि आते हैं। मानसिक अधिकारों में शिक्षा, रचनात्मक कार्य स्वतन्त्रता एव सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने के अधिकार व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य, मेल-मिलाप की स्वतन्त्रता, न्याय सम्बन्धी अधिकार शासन व्यवस्था मे हर व्यक्ति के भाग ले सकने का अधिकार, आदि से सम्बन्धित हैं।

इन मूल मानवीय अधिकारों की सुरक्षा आदि के सम्बन्ध मे किस देश में क्या हुआ है, इसे उदाहरण के साथ प्रदर्शन करने के लिये विभिन्न सदस्य राष्ट्रों ने अपने अपने यहाँ से सामग्री भेजी है। प्रदर्शनी में यह सामग्री १७ विभिन्न स्तम्भो पर प्रदर्शित की जा रही है, और हर हते प्रकाते के आविष्कार के लिये पृथक स्तम्भ रखा गया है।

भारत ने इन अधिकारो के सांस्कृतिक पक्ष पर अधिक जोर दिया है। चन्द्रगुप्त के दरबार के यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने ईसा से पहले की चतुर्थ शताब्दी में लिखा था कि 'यूनान में जो दास प्रथा प्रचलित है; भारत मे कहीं उसका नाम-निशान तक नहीं है।' चाणक्य ने भी लिखा है कि किसी भी स्वतन्त्र व्यक्ति को दासता के बन्धन मे न बांधा जाय।' जहाँगीर काल के प्रधान न्यायाधीश शाह नूरूल हक ने लिखा है कि हमारा

कानून यह कदापि स्वीकार नहीं कर सकता कि ईश्वर ने मनुष्यों को गुलाम के रूप में पैदा किया। ये सारी बातें भारत द्वारा प्रदर्शनार्थ भेजी गयीं सामग्री मे वर्णित है।

भारत द्वारा प्रदर्शित अन्य सामग्री के द्वारा दिखाया गया है कि भारत बहुत पहले से ही गमनागमन की स्वतन्त्रता का समर्थक रहा है। यही कारण है कि भारतीय इतिहास में हमें आर्यो, द्रविड़ों, हुणों, तुर्को, मुसलमानों, यूरोपियनों, आदि के भारत मे आगमन का विस्तृत व्यौरा देखने को मिलता है। यही नहीं स्वयं भारत से भी अनेक यात्री तथा शिष्ट मण्डल विदेशों को जाते रहे हैं।

महात्मा बुद्ध के एक चित्र द्वारा बताया गया है कि भारत बहुत प्राचीन काल से अमानवीय व्यवहार का विरोधी रहा है। इस चित्र में महात्मा बुद्ध, अपने भाई देवदत्त द्वारा घायल किये गये एक पक्षी की रक्षा कर रहे हैं।

दलित वर्गो के उद्धार के लिये महात्मा बुद्ध ने जो आन्दोलन आरम्भ किया था, वह महात्मा गाँधी के जीवन एव कार्यों द्वारा अपने चरम एवं उत्कर्ष को पहुँचा। भगवान् कृष्ण की इस उक्ति का भी स्मरण कराया गया है कि 'बुद्धिमान वह है जो ब्राह्मण शूद्र को एक दृष्टि से देखता है।' उन धार्मिक सन्तों का भी एक समूह दिखाया गया है। जो दलित जातियों के होते हुए भी उन्नत पद प्राप्त कर सकें। इसमें रैदास (चमार), नामदेव (दर्जी) और कबीर (जुलाहा) का उल्लेख है।

स्त्रियों के दशा-सुधार एवं उद्धार के लिए दिखाया गया है कि भारतीय इतिहास इस दशा में अनेक उदाहरणों से भरा हुआ है। चाँद बीबी और झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई के उदाहरण, इस सिलसिले में दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त काश्मीर के एक मन्दिर पर का शिलालेख भी दिखाया गया है, जो अक-

बर के आदेश से अबुलफजल द्वारा प्रस्तुत हुआ था। इस लेख का तात्पर्य है कि "मन्दिर, मसजिद अथवा गिरजाघर में सर्वत्र एक ही ईश्वर या खुदा विद्यमान है।"

इसी प्रकार, मूल मानवीय अधिकारों की ओर भारत के चिरकालीन झुकाव के अनेक अन्य तथ्य भी दिखाये गये हैं। आधुनिक भारत समस्त संसार का स्वागत करता है, इस बात की पुष्टि मे राष्ट्र पिता गांधी के ये श द उद्धृत किये गये हैं 'मैं नहीं चाहता कि मेरे घर के चारो ओर दीवारें खड़ी की जायें और खिडकियाँ बन्द रहे। मै चाहता हूँ कि सभी देशों की सुसंस्कृतियां स्वतन्त्रता पू क मेरे घर के चारो ओर बहती रहे। किन्तु साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि वे मेरे ही पैर न उखाड़ दें।' "ब्रह्मचारी" शीर्षक अमृत शेरगिल का एक चित्र भी दिखलाया गया है, जिसमे शिक्षा सम्बन्धी अधिकार के प्रति भारतीय मनोवृत्ति का निर्देश कराया गया है। न्याय विषयक अधिकार राजनीतिक अधिकारों में सर्वोच्च है और इसका निर्दर्शन दिल्ली के लाल किले में खुदे हुए 'न्याय तुला' के चित्र में कराया गया है।

संयुक्त राष्ट्र और मानव अधिकार

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा

(लेखक—रामनारायण यादवेन्दु)

समस्त राष्ट्रों और समस्त जातियों के लिये सामान्य स्तर की प्राप्ति के हेतु समाज की प्रत्येक सस्था तथा प्रत्येक व्यक्ति को इस घोषणा को सदैव ध्यान में रख कर शिक्षण व शिक्षा द्वारा इन अधिकारों के लिए आदर व सम्मान की अभिवृद्धि के लिए उद्योग करना चाहिए और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतिशील

उपायों द्वारा संयुक्त राष्ट्रसघ के सदस्य राष्ट्रों के देश मे तथा उनके अधीन प्रदेशो मे इनके व्यापक तथा प्रभावकारी पालन का प्रयत्न होना चाहिए। इस उद्देश्य से साधारण परिषद ने निम्न लिखित मानव अधिकारों की घोषणा की है।

१—समस्त मानव अधिकारो तथा गौरव मे समान एवं स्वतन्त्र उत्पन्न हुए हैं। उन्हें विवेक एवं बुद्धि भी प्राप्त है और उन्हें एक दूसरे के साथ बन्धुत्व भाव से व्यवहार करना चाहिए।

२—(१) प्रत्येक को वे समस्त अधिकार एवं स्वतंत्रताएं प्राप्त हैं, जिनका इस घोषणा में उल्लेख है और इसमें जाति, वर्ण, स्त्री पुरुष का भेद, भाषा, धर्म तथा राजनीतिक मत, राष्ट्रीय व सामाजिक उत्पत्ति, जन्म तथा अन्य स्थिति का कोई भी भेदभाव नहीं होगा।

(२) इसके अतिरिक्त उस देश या प्रदेश की राजनीति के, अधिकार सीमा सम्बन्धी तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के आधार पर उस व्यक्ति के साथ भेद भाव नहीं किया जायगा, चाहे यह राज्य स्वतन्त्र हो, राष्ट्रमघ के सरक्षण में हो, अथवा पराधीन राष्ट्र हो।

(३) प्रत्येक को जीवन स्वतन्त्रता तथा व्यक्ति की सुरक्षा का अधिकार है।

(४) किसी भी व्यक्ति को दासता में नहीं रखा जायगा, प्रत्येक रूप में दासता एव दास-व्यवहार का निषेध होगा।

(५) किसी भी मन्त्रणा, या अमानवीय, अपमानजनक या क्रूरता पूर्ण दण्ड नहीं दिया जायगा और न ऐसा व्यवहार ही किया जायगा।

(६) प्रत्येक को सर्वत्र कानून के समक्ष एक व्यक्ति के रूप में स्वीकार कराने का अधिकार है।

(७) कानून की दृष्टि में सब समान है और बिना किसी भेद-भाव के उन्हें कानून का समान रक्षण प्राप्त है। इस घोषणा के उल्लंघन मे किसी भी भेदभाव के विरुद्ध सब को समान संरक्षण प्राप्त है।

(८) किसी भी राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को उसके विधान या कानून द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों की रक्षा के लिए राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा व्यवस्था प्राप्त करने का अधिकार होगा।

(९) किसी को मनमाने ढंग से न गिरफ्तार किया जायगा, न नजरबन्द और न उसे निर्वासित ही किया जायगा।

(१०) प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारो के आरोपित अपराध के लिए स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष न्यायालय द्वारा सुनवाई की समान एवं समुचित सुविधा होगी।

(११) १. प्रत्येक व्यक्ति को जिस पर दण्डनीय अपराध का दोषारोप लगाया गया है उस समय तक सार्वजनिक सुनवाई के कानून के अनुसार निर्दोष मानने का अधिकार है, जब तक कि उसका अपराध सिद्ध न हो जाय, जिसमें उसे अपनी सफाई के लिये सब प्रकार की आवश्यक गारटी दी गई हो।

२. किसी भी व्यक्ति को किसी ऐसे दण्डनीय अपराध का दोषी नहीं ठहराया जायगा जो उस समय राष्ट्रीय या अन्तरा-ष्ट्रीय विधान के अधीन अपराध नहीं था जब कि वह किया गया और न उनके लिये उसे उससे अधिक दण्ड दिया जायगा जो उस समय किये गए अपराध के लिए लागू थी।

(१२) किसी भी व्यक्ति की गोपनीयता, परिवार गृह या पत्र व्यवहार के साथ मनमाना हस्तक्षेप नहीं किया जायगा और न उसकी मानहानि की जायगी। इसके लिए उसे कानून की रक्षा प्राप्त होगी।

(१३) १. प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक राज्य की सीमा के भीतर निवास तथा गति का अधिकार है।

२. प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी देश का, अपने भी देश का, त्याग करने तथा अपने देश मे वापस जाने का अधिकार है।

(१४) १. प्रत्येक व्यक्ति को अत्याचार से रक्षा पाने के लिए दूसरे देश मे आश्रय पाने का अधिकार है।

२. किन्तु इस अधिकार का प्रयोग उन दोषारोपण के मामलो में नहीं किया जायगा जिनका सम्बन्ध उन राजनीतिक अपराधों तथा उन कार्यों से है जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के सिद्धान्तों व उद्देश्यों के विरुद्ध है।

(१५) १. प्रत्येक व्यक्ति को जातीयता (Nationality) का अधिकार है।

२. किसी को मनमाने ढंग से उसकी जातीयता से वंचित नहीं किया जायगा और न किसी को अपनी जातीयता से परिवर्तन करने के अधिकार से वचित किया जायगा।

(१६) १. स्त्री और पुरुष को जो वय-प्राप्त हैं जाति, जातीयता या धर्म के बन्धन के बिना, वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने तथा संतानोत्पादन का अधिकार है।

२. विवाह दोनों पक्षों की पूर्ण तथा स्वतन्त्र सम्मति से होगा।

३. कुटुम्ब समाज की स्वाभाविक तथा आधारभूत सामुदायिक इकाई है और वह समाज तथा राजा द्वारा रक्षा का अधिकारी है।

(१७) १. प्रत्येक को अकेले या किसी दूसरे के साथ सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार है।

२. कोई भी व्यक्ति मनमाने ढग से सम्पत्ति से वचित नहीं किया जायगा।

(१८) प्रत्येक व्यक्ति को विचार-स्वातन्त्र्य, विवेक स्वातन्त्र्य तथा धर्म-स्वातन्त्र्य का अधिकार है, इसमें अपने धर्म तथा धार्मिक विश्वासों के परिवर्तन तथा स्वधर्म का प्रचार, पालन, पूजा-प्रार्थना आदि सम्मिलित है।

(१६) प्रत्येक व्यक्ति को मत-स्वातन्त्र्य तथा अभि-व्यक्ति का अधिकार है। इस अधिकार में बिना किसी हस्तक्षेप के मत रखने का अधिकार सम्मिलित है और बिना किसी सीमा के विचार के प्रत्येक माध्यम द्वारा विचार-प्रकाशन का अधिकार इसमें सम्मिलित है।

(२०) १. प्रत्येक व्यक्ति को शान्ति-पूर्वक सभा करने तथा संगठन का अधिकार है।

२ किसी को किसी सभा का सदस्य बनने के लिये बाध्य नहीं किया जायगा।

(२१) १. प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश के शासन में प्रत्यक्ष या स्वतन्त्र रीति से निर्वाचित प्रतिनिधि द्वारा भाग लेने का अधिकार है।

२. प्रत्येक को अपने देश की सरकारी नौकरियों में समान सुयोग प्राप्त करने का अधिकार है।

३. शासन का आधार जनता की आकांक्षा होगी। यह आकांक्षा समय-समय पर सच्चे निर्वाचनों द्वारा प्रगट होगी और यह निर्वाचन समान मताधिकार के आधार पर होंगे और मत-दान गुप्त रीति से होगा।

(२२) प्रत्येक व्यक्ति को, समाज के सदस्य के रूप में सामाजिक सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है और वह उसे राष्ट्रीय उद्योग तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से अपने राज्य की सामर्थ्य के अनुसार प्राप्त करने का अधिकारी है।

२३ (१) प्रत्येक व्यक्ति को काम करने का, अपने धन्धे या व्यवसाय को स्वतन्त्र रूप से चुनने का तथा काम की समुचित स्थिति व अवस्थाओं का अधिकार है तथा बेकारी से रक्षा पाने का भी अधिकार है।

(२) प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी भेद के समान काम के लिए समान वेतन पाने का अधिकारी है।

(३) प्रत्येक व्यक्ति जो काम करता है, उसे समुचित पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार है जिससे वह तथा उसका परिवार मानवोचित गौरव के साथ रह सके और यदि आवश्यक हो तो सामाजिक रक्षण के दूसरे साधनो से भी सुविधाएँ पा सकेगा।

(४) प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों के लिए मजदूर संघ स्थापित करने तथा उनमें सदस्यता प्राप्त करने का अधिकार है।

२४ प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम तथा अवकाश का अधिकार है। इसमें काम के नियत घण्टे तथा समय पर सवेतन अवकाश भी सम्मिलित है।

२५ (१) प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवन-स्तर का अधिकार है जो उसके तथा उसके परिवार के स्वास्थ्य तथा कल्याण के लिये यथेष्ट हो। इसमें भोजन, वस्त्र, निवास-गृह, चिकित्सा तथा आवश्यक सामाजिक सेवाएँ तथा बेकारी, रोगावस्था, निर्योग्यता वैधव्य, वृद्धावस्था तथा जीविका के अभाव मे सुरक्षा का अधिकार भी सम्मिलित है।

(२) माताओं तथा शिशुओ की विशेष देखभाल होनी चाहिए। समस्त बालको को, चाहे वे औरस सन्तान हो या विवाह-बाह्य सन्तान, समान सामाजिक रक्षण प्राप्त होगा।

२६ (१) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। प्राथमिक शिक्षा नि.शुल्क होगी और वह अनिवार्य भी होगी।

औद्योगिक तथा उच्च शिक्षा के लिए सभी को समान सुयोग प्राप्त होगा।

(२) शिक्षा के द्वारा मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास किया जायगा, और इसके द्वारा मानव अधिकारों तथा आधारभूत स्वाधीनताओं के प्रति सम्मान को पुष्ट किया जायगा।

(३) माता-पिता को अपने बालकों के लिए यह निश्चित करने का अधिकार है कि उन्हे किस प्रकार की शिक्षा दी जाय।

२७ (१) प्रत्येक व्यक्ति को अपने समाज के सांस्कृतिक जीवन में स्वतन्त्रता से भाग लेने का अधिकार है, कला से लाभ उठाने तथा वैज्ञानिक प्रगति में भाग लेना व उसके आविष्कारों से लाभ उठाने का प्रत्येक को अधिकार है।

(२) प्रत्येक लेखक को उसके द्वारा प्रस्तुत किसी भी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति से उत्पन्न नैतिक तथा भौतिक स्वार्थों को रक्षित करने का अधिकार है।

२८ प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसी सामाजिक एव अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अधिकार है जिसमे इस घोषणा मे उल्लिखित अधिकारो की प्राप्ति हो सके।

२९ (१) प्रत्येक व्यक्ति का उस समाज के प्रति कर्त्तव्य है कि जिसमे उसके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र एवं पूर्ण विकास सम्भव है।

(२) अपने अधिकारों व स्वाधीनता के भोग में प्रत्येक को उन मर्यादाओं का पालन करना होगा जो कानून द्वारा दूसरों के अधिकारो तथा स्वाधीनता के लिए समुचित आदर प्राप्त करने के लिए निर्धारित होगी। ये मर्यादाए नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था, तथा प्रजातांत्रिक समाज के साधारण कल्याण के लिए ही होंगी।

(३) इन अधिकारों का प्रयोग किसी भी दशा में राष्ट्र-संघ के उद्देश्यों के विरुद्ध नहीं किया जायगा।

३० इस घोषणा में उल्लिखित किसी धारा का किसी राज्य या व्यक्ति के लिए ऐसा प्रयोजन कदापि नहीं लिया जायगा कि वह ऐसे कार्य करे जिससे इन अधिकारों का नाश हो।

इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ की साधारण परिषद ने ये तीस मानव अधिकार स्वीकार किये हैं। हमने ये सब अधिकार ज्यों के त्यों दे दिये हैं, जिससे पाठक पूर्ण रूप से उन्हे समझ सकें।

भारत का मानवीय विधान

(साप्ताहिक 'अर्जुन' से सधन्यवाद उद्धृत)

नाम

इस देश का नाम भारत अर्थात् इण्डिया रहेगा। यह विभिन्न राज्यो का संघ होगा।

नागरिक

इस विधान के प्रारम्भ होने के समय इस देश में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसका नागरिक होगा। जो इस देश में पैदा हो चुका होगा, अथवा जिसके माता-पिता इस देश में पैदा हुए होंगे, वे भी इस देश के नागरिक कहलायेंगे। पाकिस्तान से आने वाले भी अपना नाम रजिस्टर्ड कराकर इस देश के नागरिक हो सकते है। यहाँ से जाकर जिन लोगों ने किसी विदेश की नागरिकता स्वीकार कर ली है, वे इस देश के नागरिक नहीं हो सकते।

मौलिक अधिकार

१—कानून की दृष्टि में सब नागरिक एक समान होंगे। कानून प्रत्येक नागरिक की रक्षा समान रूप से करेगा।

२—धर्म, जाति, वर्ण, लिंग आदि के कारण कोई भेद-भाव नहीं किया जायगा।

३—कोई नागरिक धर्म, वर्ण, जाति आदि के कारण अस्पृश्य नहीं माना जायगा। दुकान, होटल, सार्वजनिक मनोरंजन, कुए, तालाब, घाट, सड़क तथा शिक्षणालय आदि स्थान किसी नागरिक के लिए निषिद्ध नहीं होंगे।

४—सरकारी नौकरी, चुनाव-संस्थाओं की सदस्यता आदि सब नागरिको के लिए एक समान रूप से खुले हैं।

५—सैनिक अथवा शिक्षण योग्यता के अतिरिक्त किसी नागरिक को कोई खिताब नहीं दिया जायगा।

६—प्रत्येक नागरिक को भाषण, विचार, प्रकाशन निःशस्त्र संगठन, समस्त देश में स्वतन्त्र यातायात, विकास, सपत्ति पर अधिकार व क्रय-विक्रय, कोई व्यापार अथवा आजीविका कार्य करने की स्वतन्त्रता होगी।

७—किसी नागरिक को बगैर कानूनी कार्यवाही के कैद न किया जा सकेगा। किसी नागरिक को आर्डिनेन्स के मातहत भी तीन मास से अधिक समय के लिए नजरबन्द न किया जा सकेगा।

८—बेगार कोई न करा सकेगा तथा स्त्री-पुरुष का विक्रय भी सर्वथा गैरकानूनी होगा।

९—१४ साल से कम उम्र का कोई बालक कारखाने में नहीं लगाया जा सकेगा।

१०—प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अपना सगठन करने, अपनी सम्पत्ति रखने, अपनी संस्थायें खोलने में स्वतन्त्र रहेगा, किन्तु सार्वजनिक शान्ति, चरित्र और स्वास्थ्य की अवहेलना कोई न कर सकेगा।

११—सरकारी खर्च पर चलने वाली किसी शिक्षण-संस्था में किसी सम्प्रदाय की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायगी।

१२—नागरिकों का कोई समूह अपनी संस्कृति, भाषा और लिपि के आधार पर अपनी स्वतन्त्र शिक्षण-सस्था खोल सकेगा परन्तु सरकारी सहायता प्राप्त संस्था में किसी भी नागरिक को धर्म, जाति और लिंग के आधार पर प्रविष्ठ होने से रोका नहीं जा सकेगा।

१३—किसी नागरिक की सम्पत्ति पर बिना कानूनी कार्रवाई के कब्जा नहीं किया जा सकेगा। यदि कोई जायदाद, फर्म या कारखाना आदि सरकार लेगी तो उसे उचित मुआवजा भी देना पड़ेगा।

१४—सुप्रीमकोर्ट को यह अधिकार है कि वह नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए सरकारी अधिकारियों को आदेश दे सके।

शासन-नीति के लिए निर्देश

१५—सरकार को निम्नलिखित नीतियों का सदा ध्यान रखना चाहिए—

(क) प्रत्येक नागरिक को अपनी उचित आजीविका का अधिकार है।

(ख) देश के प्राकृतिक साधनो का इस रूप मे वितरण करना कि जिससे अधिकतम का हित हो सके।

(ग) धन का ऐसा वितरण की वह एक स्थान मे केन्द्रित न हो सके।

(घ) स्त्री व पुरुषों को एक समान कार्य के लिए समान वेतन।

(ङ) कारीगरों व मजदूरों का स्वास्थ्य नष्ट न होने पावे और जनता का शोषण न किया जा सके।

१६—सरकार पचायतो का संगठन करने व उन्हे उचित अधिकार देने की व्यवस्था करे।

१७—बुढ़ापे, बेकारी, बीमारी या असमर्थता आदि की स्थिति में सरकार द्वारा अपनी सामर्थ्य के अनुसार लोगों की सहायता।

१८—गुजारे के लायक वेतन, अच्छी कार्य-स्थिति, सामाजिक व सांस्कृतिक विकास की सुविधाएँ सरकार सबको दे।

१६—दस साल के अन्दर-अन्दर १४ वर्ष तक के बालकों के लिये अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था।

२०—शराब बन्दी।

२१—दूध देने वाले तथा खेती के पशुओं और विशेष कर गौओं व बछड़ों की उन्नति तथा उनका वध रोकने के लिए विशेष प्रयत्न किया जाय।

२२—प्राचीन ऐतिहासिक व कलापूर्ण स्मारकों की रक्षा।

२३—शासन और न्याय विभागों की पृथकता।

२४—आन्तरिक शान्ति, सब सम्प्रदायो मे सद्भावना, तथा अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को पच द्वारा हल करने का प्रयत्न।

केन्द्र या सघ की सरकारी भाषा हिन्दी, लिपि नागरी होगी मगर पहले १५ साल तक अग्रेजी भाषा चलेगी।

प्रत्येक नागरिक को, अंग्रेजी हिन्दी और उर्दू भाषा में अपनी शिकायत सरकार को भेजने का अधिकार है।

हकीम लुकमान की सौ नसीहतें

(अनुवादक—श्री कन्हैयालालजी गार्गीय ब्यावर)

१—सर्व व्यापक सर्व-शक्तिमान ईश्वर को पहचान।

२—शिक्षा और सीख की बात पर ध्यान दे और अभ्यास कर।

३—अपनी पहुँच विचार कर बात मुँह से निकाल।

४—दूसरे मनुष्य का उचित सम्मान कर।

५—सब के अधिकारो का ध्यान कर।

६—अपने भेद को दूसरों पर प्रकट न कर।

७—मित्र को बुरे दिनों मे परख।

८—हानि लाभ में मित्र की परीक्षा कर।

९—मूर्ख और नादान से दूर रह।

१०—समझदार और बुद्धिमान को मित्र कर।

११—अच्छे काम चेष्टा और परिश्रम से कर।

१२—स्त्रियों पर भरोसा न कर।

१३—सलाह और मशवरा केवल भले और बुद्धिमान मनुष्यो से ही कर और कह।

१४—बात पक्की और सोच विचार कर निकाल।

१५—जवानी को ईश्वर की सुन्दर किन्तु क्षणिक देन समझ कर उसका सदुपयोग कर।

१६—जवानी में दोनो दुनिया को सुधार।

१७—अपने इष्ट मित्र को प्यारा बनाये रख।

१८—मित्र और वैरी दोनों से प्रसन्नता पूर्वक बोल।

१९—माँ बाप को थोडे समय का ही सहारा जान कर उनसे उचित शिक्षा ग्रहण कर और उनकी सेवा कर।

२०—शिक्षक को पिता से ऊँचा मान।

२१—आमदनी के हिसाब से खर्च कर।

२२—हर एक काम मे मध्यस्थ रह। (दरिम्याना)

२३—अपने काम पर हावी हो।　　　(दक्ष)

२४—अतिथि की उचित सेवा सत्कार कर।

२५—दूसरे के घर में जाकर नेत्र और जिह्वा पर नियंत्रण रख।

२६—शरीर और वस्त्रो को स्वच्छ रख।

२७—मित्रों की संख्या अधिक रख।

२८—बच्चों को विद्या और सभ्यता सिखा।

२६—यदि संभव हो तो सवारी और तीर चलाना भी सीख।

३०—मौजे, जूते सीधे पैर से पहिन और बायें से उतार।

३१—मनुष्य की योग्यता और हैसियत के अनुसार ही उससे व्यवहार कर।

३२—रात में बात धीरे और मुलायमियत (नर्मी) से और दिन को आँख खोलकर कर।

३३—कम खाने, कम सोने और कम बोलने की आदत डाल।

३४—जो चीज स्वयं को पसन्द न हो, दूसरों को न दे।

३५—समझ और परिश्रम से काम कर।

३६—बिना पढ़े उस्तादी न छाँट।

३७—स्त्री और बच्चे से अपना भेद न खोल।

३८—लोगों की खैरात (दान) पर भरोसा न कर।

३६—कमीनो से भलाई की आशा न रख।

४०—किसी काम में बिना सोचे समझे हाथ न डाल।

४१—बिना किये काम को किया हुआ न समझ।

४२—आज के काम को कल पर न टाल।

४३—अपने से बड़ों के सामने ढिठाई और शेखी न दिखा।

४४—बड़े बूढो के सामने बढ़-बढ़ कर बाते न बना।

४५—लोगों की झकझक और लज्जा न खुला।

४६—जरूरत मन्द को निराश न कर।

४७—पिछले वैर को याद न कर।

४८—अन्य लोगों की अच्छाई को अपनी न बता।

४६—अपने धन को मित्र और वैरी किसी पर भी प्रकट न कर।

५०—अपनों से अपनापन ही बनाये रख।

५१—सज्जन की पीठ पीछे बुराई न कर।

५२—अपने आप को देख।

५३—बहुमत के अनुसार ही कार्य्य कर।

५४—उँगली के इशारे से किसी को न बता।

५५—लोगो के सामने दाँत मत कुचर।

५६—थूकने और नाक छिनकने मे अधिक आवाज न कर।

५७—खाँसी और छींक के समय मुँह पर हाथ रख।

५८—लोगों के सामने सुस्ती और आलस्य न दिखा।

५६—नाक में उँगली न डाल।

६०—निर्लज्ज और असभ्य बात मुँह से न निकाल।

६१—किसी को तीसरे व्यक्ति के सामने लज्जित न कर।

६२—आँख और भौंह से कुकर्ती (निन्दा) न कर।

६३—कही हुई बात को न दोहरा।

६४—ऐसी बात, जिसकी हँसी उड़े मुँह से न निकाल।

६५—अपनी और अपनों की बड़ाई दूसरों से न कर।

६६—स्त्रियो की भांति शृङ्गार न कर।

६७—सन्तान के लिये ईश्वर से याचना न कर।

६८—जुबान पर नियन्त्रण रख।

६६—बोलते समय हाथ न हिला।

७०—सब लोगो की इज्जत का ध्यान रख।

७१—लोगो की निंदा में सम्मिलित न हो।

७२—मरे हुये की बुराई न कर। क्योंकि यह निरर्थक है।

७३—यथासम्भव लड़ाई और वैर न कर।

७४—अपनी शक्ति के घमण्ड मे न रह।

७५—परीक्षित मनुष्य से भला बरताव कर।

७६—अपनी रोटी दूसरे के घर न खा।

७७—काम में जल्दबाजी न कर।

७८—दुनियाँ भर की चिन्ता अपने सर पर न ले।

७९—जो तेरा मान करे उसका तू मान कर।

८०—क्रोध मे सोच समझ कर बात कर।

८१—बाहों से नाक साफ न कर।

८२—सूर्योदय के समय न सो।

८३—लोगो के सामने न खा।

८४—रास्ते में बड़ों से आगे न चल।

८५—लोगों की बात काट कर न बोल।

८६—किसी के सामने अपने घुटनो में सर न रख।

८७—दायें-बायें देखकर न चल, किन्तु जमीन की ओर देख।

८८—यदि हो सके तो नंगी पीठ घोड़े पर न बैठ।

८९—अतिथि के सामने किसी पर क्रोध न कर।

९०—अतिथि को कोई काम न बता।

९१—पागल और शराबी से बात न कर।

९२—लुच्चो और लफंगो के साथ मोहल्ले की हताई पर न बैठ।

९३—हानि-लाभ में अपनी इज्जत का ध्यान रख।

९४—अभिमान और फिजूल खर्ची से दूर रह।

९५—लोगो की दुश्मनी अपने ऊपर न ले।

९६—लड़ाई झगड़े से दूर रह।

९७—चाकू, अंगूठी और पैसा सदैव अपने पास रख।

९८—खैरात कर, मगर अपनी हैसियत के हिसाब से।

९९—सदैव नम्र रह।

१००—निम्न लिखित बातों पर अमल करके जिन्दगी बिता—
(१) ईश्वर के साथ सच्चाई से। (२) इन्द्रियों के साथ दमन से।
(३) दुनियां के साथ न्याय से। (४) बड़ों के साथ सेवा से।
(५) छोटों के साथ प्रेम से। (६) साधुओं के साथ उदारता से।
(७) इष्ट मित्रों के साथ सहृदयता से।
(८) वैरी के साथ सहनशीलता से।
(९) मूर्खों के साथ खामोशी से।
(१०) विद्वानों के साथ आदर सत्कार से।

इस प्रकार से अपनी आयु को व्यतीत कर, किसी के माल पर लालच न कर, पर जो सामने आये उसे स्वीकार कर, यदि अधिक आ जावे तो जमा न कर।

हकीम साहब फरमाते हैं कि उनकी ३००० शिक्षाओं में से ३ शिक्षा जो उनको अत्यधिक पसन्द है वह यह हैं:—

(१) ईश्वर को याद रख। (२) मृत्यु को याद रख।
(३) अपने किये हुए उपकारों को भूल जा।

खामोशी के सात फायदे—

(१) बिना अच्छी पोशाक के खूबसूरती।
(२) बिना डाँट के दबदबा।
(३) बिना परिश्रम ईश्वर की आराधना।
(४) बिना दीवार का किला।
(५) बिना माफी से माफी प्राप्त।
(६) बुराइयों का सुन्दर ढकना।
(७) लेखकों की शरारत से बचाव।

१– कम बोलने से भ्रम बना रहता है और लोग-बाग उसको अच्छा ही समझते हैं।
२– (१) अधिक बोलने में बुराई और गाली भी निकल सकती है।

(२) चुप रह कर मन से ईश्वर का हर समय ध्यान किया जा सकता है।

३– एक चुप आदमी पर किसी दुश्मन को भी हमला करने की हिम्मत नहीं पड़ सकती।

४– एक खामोशी हजार हजार वैरियों को शान्त करती है।

५– चुपचाप बैठे मनुष्य पर क्रोध अधिक समय तक नहीं रह सकता।

सरदार पटेल का अन्तिम सन्देश

(सरदार पटेल)

अपनी मृत्यु से दो दिन पहिले सरदार पटेल ने १३ दिसम्बर सन् १९५० ई० को बम्बई में एक सन्देश पर हस्ताक्षर किये थे जो स्वायत्त शासन संस्था–सम्मेलन देहली को भेजा उसमें कहा था:—

ऐसे समय में जब जनता मौलिक अधिकारों के प्रति बहुत अधिक तथा मौलिक कर्त्तव्यों के प्रति बहुत कम जागरूक है। आपका कर्त्तव्य है कि आप स्वयं नागरिक जीवन के मूल उत्तरदायित्व और कर्त्तव्यों का पालन करें, तथा अपने सम्पर्क में आने वाले नर-नारियों को वैसा करना सिखायें। यथासम्भव अपनी मदद आप करना और आवश्यकता होने पर मिल-जुल कर प्रयत्न करना ही नागरिक की कुञ्जी है। सच्चा नागरिक वह है जो कैसी भी कठिन परिस्थिति क्यों न हो दूसरों पर आश्रित रहने के बजाय स्वय अधिक से अधिक काम कर डाले और दूसरों के लिए कम से कम काम छोड़े।

मिलजुल कर काम करने के क्षेत्र में नागरिक स्वभावतः अपनी आवश्यकता को पूरी करने के लिए नगरपिताओं तथा

जिला बोर्डों के अपने प्रतिनिधियों की ओर देखेंगे। किन्तु इस क्षेत्र में भी जबानी जमा-खर्च की अपेक्षा ठोस प्रयत्नों से ही निश्चित फल प्राप्त हो सकते हैं। नगरपालिका अथवा स्थानीय बोर्ड के प्रबन्ध का कोई विवरण सदस्यों के ध्यान से हटना नहीं चाहिए। उनके रवैये का मुख्य मन्त्र निजी प्रधानता की अपेक्षा सहकारी जीवन होना चाहिए।

मैं महसूस करता हूँ कि इन संस्थाओं के संचालन में आर्थिक कठिनाइयाँ हैं, लेकिन अधिकारियों से आर्थिक सहायता माँगने से पूर्व, जो तुम्हारी जैसी सीमाओं में ही कार्य कर रहे हैं, तुम्हे यह आश्वासन प्राप्त कर लेना चाहिए कि करदाता की एक-एक पाई का, जिसके तुम सरक्षक हो, अधिक से अधिक उपयोग हो। यदि बर्बादी को अधिक से अधिक रोक सको और प्रत्येक रुपये को अधिकतम लाभ के साथ खर्च कर सको तो तुम सारी दुनियां को चुनौती दे सकते हो और मुझे विश्वास है कि तब तुम्हारी धन की मांग का अधिक स्वागत किया जावेगा।

नगरपालिकाओं तथा स्थानीय बोर्डों के बारे में भी मैं कुछ शब्द कहूँगा जो कि जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में हैं। जब कि स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्ष और सदस्य अपने व्यवहार के परिणामों के लिए उत्तरदायी हैं अथवा अपने प्रयत्नों से होने वाले स्वस्थ और लाभदायक नतीजों के लिए श्रेय के भागी हैं। कर्मचारियों को सेवा-भावना से कार्य करना चाहिए। उनकी सुरक्षा और सन्तोष का ध्यान रखना जनता के प्रतिनिधियों का कार्य है। उन्हें कर्मचारियों में अनुशासन और निष्पक्षता की समुचित भावना बनाने का भी प्रयत्न करना चाहिए। कर्मचारी कभी दलगत राजनीति के मुहरे न बनें, किसी भी प्रकार दलगत राजनीति में पड़ना कर्मचारियों का काम नहीं है।

जब जब भारत स्वतन्त्र रहा उसकी स्वतन्त्रता को खतरा

सब से ज्यादा दोस्तों से हुआ है और दुश्मनो से कम। इसलिए आप लोगों को बहुत सावधानी से काम करने की जरूरत है।

मुसलमानो को विश्वास दिलाना चाहिए कि वे भारत के नागरिक व सच्चे वफादार बनकर ही रहेगे।

कोई बहिन या बालक जा रहा है और उसके पीछे से पीठ में छुरी घुसेड़ दी जावे ऐसा करने से किसी भी कौम की आबरू नहीं बढ़ती।

देश मे शान्ति रहे, हड़ताल न पड़े, उत्पादन बढ़े तब ही देश आबाद रह सकता है।

स्वराज्य वह है कि किसान, मजदूर, मध्यवर्ग इन सब के जीवन में सुख शान्ति रहे।

पापों का पछतावा

(र०—मोतीलालजी पहाड्या, कोटा)

अपने पापों का पछतावा, मन वच से मैं करता हूँ।
पुन: पाप मुझसे न कभी हो, यही भावना रखता हूँ।
दीन किसानो या श्रमिको पर गहरा ब्याज लगाया हो।
रोकड़ खाते बही आदि में, झूठा जाल रचाया हो।
न्यायालय में रिश्वत देकर, प्रतिवादी झुठवाया हो।
झूठी साक्षी के बल पर, दीनों का माल बिकाया हो।
अपने पापो का०

असली मे नकली का मिश्रण, करके जगत ठगाया हो,
ब्लेक बजारी सट्टेबाजी, से यदि वित्त कमाया हो।
दम्भ कपट छलरिश्वत से, यदि धन को खूब बढ़ाया हो,
साहुकारी व्यापारों को मैंने भ्रष्ट बनाया हो।
अपने पापों का०

देने में कम तोला हो, लेने मे अधिक तुलाया हो।
तोल जोख के बाटों को, कम बेशी अगर बनाया हो,
इसी भांति देने लेने में, न्यूनाधिक नपवाया हो,
'फिक्स्डरेट' का बोर्ड लगा ग्राहक को अगर ठगाया हो।
अपने पापों का०

बैठ जाति के बीच गरीबों से मृत-भोज कराया हो,
ब्याह आदि की रस्मों में, उनका घर द्वार बिकाया हो।
मैंने अपने जाति जनों पर, ठाकुरपन दिखलाया हो,
निरपराध भाई बहनों का, बहिष्कार कराया हो।
अपने पापो का०

पंच चौधरी बन विधवाओं, का यदि धन हड़पाया हो,
निरपराध जाति के लोगों, को यदि कभी सताया हो।
पर धन सम्पत्ति हरने को, षडयन्त्र अनेक रचाया हो,
पंचायत के न्यायासन पर, मैंने दाग लगाया हो।
अपने पापों का०

वृद्ध विवाह किया हो मैंने, या पर का करवाया हो,
बाल ब्याह कर निज सतति को, पौरुषहीन बनाया हो।
विधवाएँ बढ़ाकर मैंने उनका भाग्य फुड़ाया हो,
उनका पुनर्विवाह कराने मे रोडा अटकाया हो।
अपने पापो का०

क्रय-विक्रय करवा कर यदि, अनमिल व्याह कराया हो,
या कि कभी विधवा का मैंने, कच्चा गर्भ गिराया हो।
अन्तर्जाति विवाहों को यदि, मैंने पाप बताया हो,
या समाजहित के कामो में, मैंने शूल बिछाया हो।
अपने पापो का०

जाति पांति के अहंकारवश, निज को ऊंच बताया हो,
पर को नीच बताकर मैंने, अगर कभी ठुकराया हो।

भेद भाव गोरे काले का, मेरे मन में आया हो,
मै शासक हूँ वह शासित हैं, ऐसा भाव समाया हो।
अपने पापो का०

हरिजन और अछूतों को यदि, हीन जाति बतलाया हो,
मन्दिर और धर्मस्थानो मे, आने से रुकवाया हो।
उनके मानवीय अधिकारों, को मैंने कुचलाया हो,
साम्यदृष्टि से नहीं देखकर, उन्हे अगर ठुकराया हो।
अपने पापों का०

देश-जाति हित-बाधक रस्म, रिवाजो को अपनाया हो,
परम्परागत उनको कह कर, विष को अगर घुलाया हो।
यदि सुधार करने में मैंने, दब्बूपन दिखलाया हो,
जाति सुधारक नवयुवकों को, साहसहीन बनाया हो।
अपने पापों का०

सार्वजनिक सम्पत्ति पर मैंने, निज अधिकार जमाया हो,
भूली हुई किसी की वस्तु, को यदि कभी उठाया हो।
पर की रखी धरोहर को यदि मैने कभी दबाया हो,
हितकारी संस्थाओ का यदि, मैंने धन हड़पाया हो।
अपने पापों का०

कभी किसी की सेवा करके, मन में घमण्ड बुलाया हो,
कभी दिया हो दान अगर तो, जगह २ प्रकटाया हो।
करके परउपकार किसी पर, यदि एहसान जताया हो,
आत्म प्रशसा कर के यदि, झूठा मान बढ़ाया हो।
अपने पापों का०

स्वामी की सेवा करने में, जी को कभी चुराया हो,
उसके घर की गांठ काटने, में मन को ललचाया हो।
उसके प्रति विश्वासघात कर यदि ईमान गुमाया हो,

पूरा वेतन लेकर के भी, निज कर्त्तव्य भुलाया हो।
अपने पापों का०

नर से नारि जाति को मैंने अधम कभी ठहराया हो,
'पग की जूती' उसे बना अपमानित किया कराया हो।
परदे या घूंघट में रखकर बुरके में लिपटाया हो,
समानाधिकारों के पद से नारी को गिरवाया हो।
अपने पापो का०

विद्या के मद मे आकर यदि निज का गर्व बढ़ाया हो,
अपमानित पर विद्वानों को मैंने किया कराया हो।
खुद को ज्ञानी पडित कह कर पर को मूर्ख बताया हो,
पहन धुरंधरता का जामा मैंने ढोंग मचाया हो।
अपने पापो का०

साधुजनों का तिरस्कार भी मैंने किया कराया हो,
सत्य, अहिंसा के पालन मे, पीछा पाँव हटाया हो।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित, रत्नो को अगर गुमाया हो,
तीव्र कषायो के वश होकर, आत्म स्वभाव नशाया हो।
अपने पापो का०

सम्प्रदायवादी बनकर यदि, ज्ञान विज्ञान भुलाया हो,
शास्त्र वाद के चक्कर मे फँस, सत्य विवेक गुमाया हो।
हठी दुराग्रही ऐकांती बन, सत्पथ को बिसराया हो,
पर-पंथी पर-धर्मी के प्रति, द्वेष भाव दरसाया हो।
अपने पापों का०

मै कहता हूँ वही सत्य है, ऐसा हठ मन आया हो,
मेरी पुस्तक ही सच्ची है, पर की को झुठलाया हो।
अपने सम्प्रदाय के मद में जग को यदि अंधराया हो,
पर को काफिर नास्तिक अरू मिथ्यात्वी आदि बताया हो।
अपने पापों का०

धन होने पर भी दीनों के, हित मे नहीं लगाया हो,
रोगी शोकी दुखियो को यदि कभी नहीं अपनाया हो।
देश जाति के गुणी जनो का, कभी न मान बढ़ाया हो,
विद्वानो की सेवा से भी, धन को अगर छिपाया हो।
अपने पापों का०

राष्ट्र और साम्राज्यवाद के, मद में युद्ध लड़ाया हो,
तीर तुपक तलवारो से यदि, नर का रक्त बहाया हो।
वैज्ञानिक विषमयी कलों से, मानव को मरवाया हो,
प्रति पक्षी की सस्थाओ अरु, नगरो को जलवाया हो।
अपने पापो का०

विश्व शांति में भग डालने, का यदि जाल रचाया हो,
राष्ट्रो और समाजों को यदि, फूट डाल भड़काया हो।
पर को लड़ा भिड़ाकर मैने यदि निज स्वार्थ बनाया हो,
निज ललाट पर देश द्रोह का, काला तिलक लगाया हो।
अपने पापों का०

जाने या अनजाने मैंने, पर को दुख पहुँचाया हो,
काटा पीटा मारा हो या, व्यर्थ ही उसे सताया हो।
लेकर ओट धर्म की मैने, पशु बलि यज्ञ रचाया हो,
या मांसाहारी बन मैने, पशु वध कहीं कराया हो।
अपने पापो का०

मानव हित मे मैंने अपना, जीवन नही बिताया हो,
भोग विलासादिक मे रह निज, को भूभार बनाया हो।
देश विघातक व्यसनो में निज जीवन अगर खपाया हो,
देश जाति के प्रति निज कर्त्तव्यों को अगर भुलाया हो।
अपने पापो का०

आवश्यकता की सीमा से, संग्रह अधिक जमाया हो,
वातावरण जगत का मैंने, क्षुब्ध, अशाँत बनाया हो।

पिछड़े हुए देश अपने को, आगे नहीं बढ़ाया हो,
सोती हुई जाति अपनी को, मैंने नहीं जगाया हो।
अपने पापो का०

हो पापों को निर्जरा, प्राप्त होय सद्ज्ञान।
निजानन्द पद पायके, करूँ आत्म—कल्याण ॥

रत्नाकर पच्चीसी

भगवान् से पापों की क्षमा-याचना

र० च०—श्री रत्नाकर सूरि, अनुवादक—रामचरित उपाध्याय

शुभकेलि के आनन्द के, धन के मनोहर धाम हो,
नरनाथ से सुरनाथ से, पूजित चरण, गतकाम हो।
सर्वज्ञ हो, सर्वोच्च हो, सब से सदा संसार में,
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में।
ससार दुख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो,
जय श्रीश ! रत्नाकर प्रभो, ! अनुपम कृपा-अवतार हो।
गतराग ! है विज्ञप्ति मेरी, मुग्ध की सुन लीजिये,
क्योंकि प्रभो ! तुम विज्ञ हो, मुझको अभय वर दीजिए।
माता पिता के सामने, बोली सुना कर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञ बालक, बाल्य-वश लीलावली।
अपने हृदय के हाल को त्यो ही यथोचित रीति से,
मैं कह रहा हूँ, आपके, आगे विनय से प्रीति से।
मैंने नहीं जग मे कभी कुछ दान दीनों को दिया,
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं, मैंने नहीं तप भी किया।
शुभ भावनाएँ भी हुईं, अब तक न इस संसार मे,
मैं घूमता हूँ व्यर्थ ही भ्रम से भवोदधि-धार में।
क्रोधाग्नि से मैं रातदिन हा ! जल रहा हूँ हे प्रभो,
मैं लोभ नामक साँप से, काटा गया हूँ हे प्रभो !

अभिमान के खल ग्राह से, अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,
किस भांति हो स्मृत आप माया-जाल से मैं व्यस्त हूँ।
लोकेश ! पर-हित भी किया; मैंने न दोनों लोक में,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, चींखता हूँ शोक में।
जग में हमारे से नरों का, जन्म ही बस व्यर्थ है,
मानों जिनेश्वर ! वह भावों की पूर्णता के अर्थ है।
प्रभु ! आपने निज मुख सुधा का, दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है पर चित्त ने, उसका न कुछ भी फल लिया।
आनन्द-रस में डूब कर, सद्वृत वह होता नहीं,
है वज्र-सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही।
रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैंने लिया,
बहुकाल तक बहु बार जब, जग का भ्रमण मैंने किया।
हा ! खो गया वह भी विवश, मैं नींद आलस मे रहा,
अब बोलिये उसके लिए, वैराग्य को धारण किया।
संसार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया,
जग को रिझाने के लिये, उपदेश धर्मों का दिया।
झगड़ा मचाने के लिये, मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाऊं, हे प्रभो ! अपनी हंसी।
पर दोष को कह कर सदा, मेरा वदन दूषित हुआ,
लख कर पराई नारियों को, हा ! नयन दूषित हुआ।
मन भी मलिन है सोच कर, पर की बुराई हे प्रभो,
किस भांति होगी लोक में, मेरी भलाई हे प्रभो।
मैंने बढ़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई, उत्पन्न जो दुख राक्षसी।
हा ! आपके सम्मुख उसे, अति लाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ ! हो सब जानते, स्वयमेव संस्कृति क्रिया।
अन्यान्य मन्त्रों से परम, परमेष्ठि-मन्त्र हटा दिया,

सच्छास्त्र वाक्यों को, कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया।
विधि-उदय को करने वृथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया,
हे नाथ यों भ्रमवश अहित, मैंने नहीं क्या क्या किया।
हा तज दिया मैंने प्रभो! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
अज्ञान-वश मैंने किया, फिर देखिए किस पाप को।
वामाक्षियों के कुच-कटाक्षों, पर सदा मरता रहा,
उनके विलासों के हृदय में, ध्यान को करता रहा।
लख कर चपलहग युवतियों के, मुख मनोहर रसमई,
जो मन पलट पर राग, भावो की मलिनता बस गई।
वह शास्त्रनिधि के शुद्ध जल से भी न क्यो धोई गई,
बतलाईए यह आप ही, मम बुद्धि तो खोई गई।
मुझमें न अपने अग के, सौन्दर्य्य का आभास है,
मुझमें न गुणगान है विमल, न कलाकलाप विलास है।
प्रभुता न मुझमें स्वप्न को भी, चमकती है देखिए,
तो भी भरा हूँ गर्व से मैं, मूढ़ हो किसके लिए।
हा! नित्य घटती आयु है पर पाप मति घटती नहीं,
आई बुढौती पर विषय से, कामना हटती नहीं।
मैं यत्न करता हूँ दवा मे, धर्म में करता नहीं,
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूँ, नाथ! बच सकता नहीं।
अघ पुण्य को, भव, आत्म को, मैंने कभी माना नहीं,
हा! आप आगे हैं खडे, दिननाथ से यद्यपि यही।
तो भी खलो के वाक्य को मैंने सुना कानो वृथा,
धिक्कार मुझको है, गया मम जन्म ही मानो वृथा।
सत्पात्र पूजन देव पूजन, कुछ नहीं मैंने किया,
मुनिधर्म श्रावक धर्म का, भी नहीं सविधि पालन किया।
नर जन्म पाकर भी वृथा ही, मैं उसे खोता रहा,
मानों अकेला घोर वन मे, व्यर्थ ही रोता रहा।

प्रत्यक्ष सुखकर जैनमत में, प्रीति मेरी थी रही,
जिननाथ! मेरी देखिये, है मूढता भारी यही।
हा! कामधुक कल्पद्रुमादिक, के यहाँ रहते हुए,
हमने गंवाया जन्म को, धिक्कार दुख सहते हुए।
मैंने न रोका रोग-दुख, संभोग-सुख देखा किया,
मन में न माना मृत्यु-भय, धन-लाभ ही लेखा किया।

हा! मैं अधम युवतीजनों के, ध्यान नित करता रहा,
पर नरक कारागार से, मन में न मै डरता रहा!
सद्वृत्ति से मन मे न मैंने, साधुता हा साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी, मैंने नही कुछ अर्जिता।
शुभ तीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाये नहीं,
नर जन्म पारस तुल्य निज, मैंने गवाया व्यर्थ ही।
शास्त्रोक्त विधि वैराग्य भी करना मुझे आता नहीं,
खल-वाक्य भी गत क्रोध हो, सहना मुझे आता नहीं।

अध्यात्म-विद्या है न मुझ मे, है न कोई सत्कला,
फिर देव! कैसे यह भवोदधि, पार होवेगा भला।
सत्कर्म पहले जन्म में, मैंने किया कोई नहीं,
आशा नहीं जन्मान्य में, उसको करूँगा मैं कहीं।
इस भांति का यदि हूँ जिनेश्वर, क्यो न मुझको कष्ट हो?
संसार में फिर जन्म तीनो, क्यों न मेरे नष्ट हो?।
हे पूज्य! अपने चरित्र को, बहुभांति गाऊँ क्या वृथा,
कुछ भी नहीं तुम से छिपी है पापमय मेरी कथा।

क्योंकि त्रिजग के रूप हो तुम ईश हो, सर्वज्ञ हो,
पथ के प्रदर्शक हो तुम्ही सब चित्त के मर्मज्ञ हो।
दीनोद्धारक धीर आपसा अन्य नहीं है,
कृपा पात्र भी नाथ! न मुझसा अपर कहीं है।

तो भी मांगूं नहीं धान्य, धन कभी भूल कर,
अर्हन् ! केवल बोधिरत्न, होवें मंगलकर।
श्री रत्नाकर गुण गाण यह, दुरित दुःख सब के हरे,
बस एक यही प्रार्थना, मंगलमय जग को करे॥

मेरी भावना (राष्ट्रीय नित्य-पाठ)

(श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार)

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवो को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध वीर जिन हरि हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी मे लीन रहो॥
विषयो की आशा नहीं जिनके साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन मे जो निशि दिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत् के दुःख समूह को हरते है॥
रहे सदा सत्सग उन्हीं का ध्यान उन्ही का नित्य रहे।
उन्ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊं किसी जीव को झूंठ कभी नहीं कहा करूं।
पर धन वनिता पर न लुभाऊ सन्तोषामृत पिया करूं॥
अहंकार का भाव न रक्खूं नहीं किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की वढ़ती को कभी न ईर्ष्या भाव धरूं॥
रहे भावना ऐसी मेरी सरल सत्य व्यवहार करूं।
बने जहाँ तक इस जीवन मे औरो का उपकार करूं॥
मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।
दीन दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा श्रोत वहे॥
दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतों पर क्षोभ न मेरे को आवे।
साम्य भाव रखूं में उन पर ऐसी परिणति हो जावे॥

गुणी जनों को देख हृदय मे मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे॥
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मै द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे॥

कोई बुरा कहे या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखो वर्षों तक जीवूं या मृत्यु आज ही आजावे॥
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे॥

होकर सुख मे मग्न न फूले दुःख मे कभी न घबराये।
पर्वत नदी श्मशान भयानक अटवी से नहीं भय खावे॥
रहे अडोल—अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्टयोग मे सहनशीलता दिखलावे॥

सुखी रहे सब जीव जगत् के कोई कभी न घबराये।
वैर पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे॥
घर घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान चरित्र उन्नत कर अपना मनुष्य जन्म फल सब पावे॥

ईति भीति व्यापे नही जग में वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का किया करे॥
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत् मे फैल सर्व हित किया करे॥

फैले प्रेम परस्पर जग मे मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय, कटुक कठोर शब्द नहीं कोई मुख से कहा करे॥
बनकर सब "युग-वीर" हृदय से देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से सब दुःख संकट सहा करे॥

महात्मा गाँधी के नित्यपाठ के कुछ पद

(गांधी चित्रावली में से)

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः ।

परोपकार के काम करते करते ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥

जो सब जीवों को अपने में और अपने को सब जीवों में देखता है, वह उनसे त्रास नहीं पाता।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम् ॥

न तो मैं राज्य की इच्छा करता हूँ, न स्वर्ग की। मोक्ष की भी मुझे इच्छा नहीं है। दुःखी जीवों का दुःख दूर हो, इतनी ही मेरी इच्छा है।

विपदो नैव विपदः संपदो नैव संपदः ।
विपद्विस्मरणं विष्णोः संपन्नारायणस्मृतिः ॥

जिसे हम दुःख समझते हैं वह दुःख नहीं है और जिसे हम सुख समझते हैं वह सुख नहीं है। दुःख तो यह है कि हम भगवान् को भूल जायँ और सुख यह है कि हम भगवान् को साक्षी समझ कर सभी काम करें।

श्री भगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

भगवान् बोलेः—हे अर्जुन, जब मनुष्य अपने मन में उत्पन्न होने वाली सब कामनाओं का त्याग करता है, और अपनी आत्मा द्वारा ही सन्तुष्ट रहता है, तब उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

दु खेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

दु.खो मे जिसका मन उदास नहीं होता, और सुखों की जिसके मन में इच्छा नहीं होती, राग, भय और क्रोध जिसके छूट गये हैं, उसको स्थितप्रज्ञ मुनि कहते हैं ।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

जो सब जगह आसक्तिरहित होता है, और शुभ या अशुभ प्राप्त होने पर न तो शुभ का स्वागत करता, न अशुभ से द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वश. ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

जिस प्रकार कछुआ अपने सब अवयव समेट लेता है, उसी तरह जब यह पुरुष इन्द्रियों के विषयो से अपनी सब इन्द्रियों को समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है ।

श्रूयता धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मन. प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥५९॥

धर्म का रहस्य सुनो और सुनकर उसे दिल मे उतारो। वह रहस्य यह है कि जो बात हमारे प्रतिकूल हो उसका हम दूसरे के प्रति आचरण न करें ।

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।

परोपकार करना महा. पुण्य है और दूसरो को सताना यही पाप है ।

नाम-जपन क्यों छोड़ दिया

क्रोध न छोड़ा, झूठ न छोड़ा, सत्य वचन क्यों छोड़ दिया ।
झूठे जग मे दिल ललचा कर असल वतन क्यों छोड़ दिया ॥
कौड़ी को तो खूब संभाला, लाल रतन क्यो छोड़ दिया ?

जिहि सुमिरन से अति सुख पावे, सो सुमिरन क्यों छोड़ दिया ?

महात्मा गांधीजी के प्यारे भजन

(१)

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे कोई पीर पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तो ये, मन अभिमान न आणे रे ॥
सकल लोक मां सहुने वंदे, निन्दा न करे केनी रे।
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे ॥
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर-स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे ॥
मोह माया नहीं व्यापे जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।
राम नामशुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तन मां रे ॥
वण लोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे।
भणे नरसैयो तेनुं दरशन करतां, कुल एकोतेर तार्या रे ॥

(२)

उठ जाग मुसाफिर भोर भयी, अब रैन कहाँ जो सोवत है ?
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है।
टुक नींद से अँखियां खोल जरा, ओ गाफिल प्रभु से ध्यान लगा।
यह प्रीति करन की रीति नहीं, प्रभु जागत है तू सोवत है ॥
ऐ जीव भुगत करनी अपनी, ओ पापी ! पाप में चैन कहाँ ?
जब पाप की गठरी सीस धरी, अब सीस पकड़ क्यो रोवत है।
जो काल करे वह आज कर ले, जो आज करे वह अब करले।
जब चिड़ियन खेती चुग डारी, फिर पछताये क्या होवत है ॥

संत तुलसीदासजी के पद

परहित सरिस धरम नहीं भाई, पर पीडा सम नहिं अघ भाई।
सुमति कुमति सबके उर बसहीं, नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तह संपत्ति नाना, जहाँ कुमति तहं विपत्ति निदाना।
परहित बस जिनके मन माही, तिन्ह कहं जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

परम कल्याण मन्त्र

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिन ।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः ॥

अर्थ—बिन्दु सयुक्त जो ॐ है, वह सब काम तथा मोक्ष देने वाला है। इससे योगिजन इसी का ध्यान करते रहते हैं और इसी का वदन (नमस्कार) किया करते हैं।

धर्मों में ॐकार का आदर (१) जैन धर्म

"जैनियों का महा मन्त्र"

नवकार सूत्र—

नमो अरिहताणं, नमो सिद्धाण (अशरीराण),
नमो आय-रियाणं, नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्व साहूणं (मुणीणं), एसो पंच नमुक्कारो,
सव्व पावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं।

ॐकार में पाँच परमेष्ठी हैं अर्थात् इसी में अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं।

जैन मन्त्रवेत्ता महात्मा पुरुषों के मतानुसार इस महान् मन्त्र का "अ अ आ उ म्" इन पाँच आद्याक्षरों के संयोजन से प्रणवाक्षर (ॐ) का स्वरूप बना है। अतएव इस मन्त्र का जप-ध्यान करने से नमस्कार महा-मन्त्र का जप करने जितना ही फल प्राप्त होता है।

(२) हिन्दू धर्म

माण्डूक्य उपनिषद् में कहा है:—

यह भूत, भविष्यत, वर्तमान जो कुछ है सब ओंकार ही है और तीनों कालों की सीमा से जो बाहर है वह भी ओंकार ही है। खं० १। मन्त्र १।

मुण्डकोपनिषद् २।२।६ में लिखा है:—

अंधेरे के समुद्र से पार उतरने के लिये आत्मा का "ओम्"

इस प्रकार ध्यान करो। तुम्हारा कल्याण होगा।

श्रीमद्भागवत् में लिखा है:—

> हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घंटानादं बिसोर्णवत्।
> प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत स्वरम्॥ ११। १४। ३४।

हृदय में घण्टनाद के समान ओंकार का अविच्छिन्न पद्म नालवत् (अखण्ड) उच्चारण करना चाहिए।

श्री कृष्णजी गीता में लिखा है:—

> तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।
> प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥

ब्रह्मवेत्ता पुरुषों की विधिपूर्वक यज्ञ दान तपस्यादिक क्रियायें सदा ओम् पद उच्चारण करके होती है। इस प्रकार वेदो से लगाकर गीता और पुराणो तक ने ओम के जप को ही सब से श्रेष्ठ बतलाया है।

अन्य धर्मों में ओम् का आदर

"ओंकार निर्णय" नाम की पुस्तक मे लिखा है कि मुसलमानों और क्रिस्तानों की प्रार्थना के अन्त मे जो "आमीन" अंग्रेजी में "Amen" शब्द लिखा है वह ओम् शब्द का ही रूपान्तर है। मनुष्य जाति की जो शाखाएं भारतवासी आर्यों से पृथक् होकर भिन्न-भिन्न देशों में जा बसी, वे बहुत काल व्यतीत हो जाने से इस परम पवित्र परमात्मा के निज नाम को भूल गई और उसका रूप कुछ का कुछ बना लिया। ऐसे ही तिब्बत, चीन, जापान आदि देशो में प्रचलित बौद्ध धर्म का परम पवित्र मन्त्र है।

ओं मनी पदमो होम।

अर्थात—हृदय कमल मे ओम् रूप मणि है। कैसा सरल और सुहावना मन्त्र है।

जप विधि

परमात्मा के नाम का स्मरण गरीब और धनवान, बाल, जवान और वृद्ध, सुखी और दुखी, सभी जीव कर सकते हैं, जिनको समय कम मिलता हो वे चलते, फिरते, सोते बैठते और काम काज करते हुए भी प्रभु का स्मरण कर सकते हैं। वस्त्र या शरीर शुद्ध न हो, तो भी होठ न हिले, इस प्रकार मन में जप करने में कोई हानि नहीं है, चलने का कार्य पैर का है, उस समय भी यदि मन को जपके काम मे लगाया जावे तो भी जप हो सकता है। रेल या जहाज में भी जप कर सकते हैं। बिछौने पर सोते २ निद्रा न आवे तब तक जप हो सकता है और अगर जप करते २ निद्रा आवे, तो स्वप्न भी अच्छे आते हैं। तात्पर्य यह है कि किसी समय और किसी भी जगह रहकर जप करने में हर्ज नहीं है।

ओंकार के जप को गायन का रूप दे दिया जाये तो अति उत्तम है। युक्ति पूर्वक भजन के साथ ही मनोरञ्जन भी होता है।

वह गायन यह है:—

ओम् ओम् ओम् ओम् ओम् ओम् ओम्
ओम् ओम् ओम् ओम् ओम् ओम् ओम्
ओम् ओम् ओम् ओम् ओम् ओम् ओम्
भज मन ओम् ओम् ओम् ओम् ओम्

इससे एक ही समय में चौबीस बार ओम् का जाप होता है और गीत के नाद से मन सदा सर्वदा आनन्द से नृत्य करता रहता है।

गम्भीर और उपयोगमय जीवन

('जैन प्रकाश' में से)

प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य, अर्थात् मननशील व्यक्ति। लेकिन मनन उसी विषय पर किया जाता है जिस बात को कि सुना हो, पढ़ा हो, या देखा हो। इसलिये अपने आपको मनन करने के योग्य बनाने के लिए श्रवण की पहली सिढ़ी को पार करना पड़ता है।

"श्रु" अर्थात् श्रवण करना और श्रवण क्रिया करने से मनुष्य, श्रावक बन जाता है।

श्रावक और स्त्री दोनों मे साम्यता है। श्रावक गुरु के ज्ञान को अपने पेट में रखता है, और स्त्री पुरुष के वीर्य को अपने पेट में धारण करती है। पुरुष शास्त्रों को पढकर अपने ज्ञान में वृद्धि करता है और स्त्री भी अपनी शक्ति को पुरुष की शक्ति मे जोड़ती है।

स्त्री कुछ काल तक अपने पेट में गर्भ को धारण कर दोनों से भिन्न एक नये स्वरूप को जन्म देती है, और पुरुष अब मनन अर्थात् क्रिया करता है। अर्थात् मनुष्य और श्रावक से मिटकर अब वह "ज्ञान" और "क्रिया" से युक्त "जैन" कहलाता है।

जैन अर्थात् ज्ञान और क्रिया से युक्त पुरुष विशेष। और इस बात की साक्षी भगवान् महावीर का जीवन है। भगवान् महावीर की जीवनी अर्थात् गुप्त शिक्षा भण्डार।

अर्थात् ज्ञान और क्रिया से युक्त मनुष्य अब जैन हो जाता है। प्रत्येक क्रिया के लिये अब वह स्वतन्त्र है। बच्चे की तरह जैन भी हँसते २ दुःखों और कष्टों को नष्ट कर देता है। अब उसका जीवन गम्भीर और उपयोगमय हो जाता है।

जीवन के रहस्यों को जाने वही जैन।

चौबीस सौ वर्ष पहिले जैन समाज ऐसे ही पुरुष-सिंहों से

भारत मे उन्नति के शिखर पर था। धीरे २ समय पलटने लगा, मनुष्यो की इच्छाये बढीं और क्रियाये शून्य हुईं, अब तो जैन लोग महावीर के उपदेश को भूलकर देवत्व को ढूंढने लगे, ईश्वरत्व की खोज पहाड़ो मे शुरूहुई, और शास्त्र अर्थात् प्रकाश उसका क्या दोष?

प्रकाश किसी वस्तु को बतलाकर लुप्त हो जाता है, लेकिन वस्तु को देखने के लिए व समझने के लिए आँखें व हृदय चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य मे शक्ति भरी हुई है, यदि उस शक्ति का उपयोग किया जाय तो वह शक्ति मनुष्य में वीरता उत्पन्न कर सकती है। और वीरता वही दिव्यता है।

महावीर का शुभ सन्देश

धर्म वही जो सब जीवों को भव से पार लगाता हो।
कलह द्वेष मात्सर्य भाव को कोसों दूर भगाता हो॥
जो सबको स्वतन्त्र होने का सच्चा मार्ग बताता हो।
जिसका आश्रय लेकर प्राणी सुख समृद्धि को पाता हो॥
जहाँ वर्ण से सदाचार पर अधिक दिया जाता हो जोर।
तर जाते हों निमिष मात्र मे यमपालादिक अञ्जन चोर॥
जहाँ जाति का गर्व न होवे और न हो थोथा अभिमान।
वही धर्म है मनुज मात्र को हो जिसमे अधिकार समान॥
नर नारी पशु पक्षी का हित जिसमें सोचा जाता हो।
दीन हीन पतितों को भी जो हर्ष सहित अपनाता हो॥
ऐसे व्यापक जैन धर्म से परिचित कर दो सब संसार।
धर्म अशुद्ध नहीं होता है खुला रहे यदि सबको द्वार॥
प्रेम भाव जग में फैलाओ और सत्य का हो व्यवहार।
दुरभिमान को त्याग, अहिंसक बनो यही जीवनका सार॥
तंगदिली को त्याग, धर्म अपना फैला दो देश विदेश।
'दास' ध्यान देना इस पर यह 'महावीर का शुभ संदेश'॥

जैन-जीवन

(जैन प्रभात अङ्क २ भाग २ के आधार पर)

जिन शब्द का अर्थ जीतने वाला है। और उसके अनुयायी को जैन कहते है। दूसरे शब्दो मे कहे तो सेनापति को जिन कह सकते हैं और योद्धाओ को जैन। जो मनुष्य अपने जीवन को योद्धा के समान व्यतीत करता है उसका जीवन जैन-जीवन कहलाता है।

संसारी प्राणी परभव में लिप्त है, जड़त्व मे भूले है। चैतन्य का और जड़त्व का लालन पालन न्यारा २ होता है। अतएव अपने ही अधिकार की वस्तु के आत्म धर्म के मिलने मे कठिनता है और उसके तन्मय होने का कार्य तो और भी कठिन है। कठिन कार्य योद्धाओ से होते है। विजयी पुरुष ही सेनापति का पद पाते हैं जिन्होंने इस कठिन कार्य को सिद्ध कर लिया है। संसार की रणभूमि जिन्होने परभाव रूप शत्रुओ को पछाड़ दिया, उन्हे ही सेनापति का पद जिन, जिनेश जिनेन्द्र जिनवर का पद मिला। वे संसार के आदर्श योद्धाओ में कृत-कृत्यो में-सिद्धो मे शामिल हुए। संसार ने उन्हें अपना अध्यक्ष माना और इनकी आज्ञानुसार चलने वाले सेनापति के जिनेन्द्र के अनुयायी योद्धा जैन कहलाये। इन जैनो का जीवन ही जैन जीवन है। सार यह है कि जैन एक योद्धा का, वीर का, सुभट का नाम है और वीरतापूर्ण आत्माभिमान युक्त तेजस्वी जीवन जैन जीवन है। सांसारिक योद्धाओं को शत्रुओं के साथ अपना अपने स्वामी का राज्याधिकार सुरक्षित रखने के लिये युद्ध करना पड़ता है और धार्मिक योद्धाओ को भी अपना स्थान अपना अधिकार, अपना पद प्राप्त करने के लिए परचक्र मे, परभाव मे, जड़ता मे युद्ध करना पड़ता है ऐसे ही योद्धा का नाम जैन है।

संसार में क्रोध, मान, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, कपट, मत्सर आदि अतरंग परभाव रूप शत्रु इतने अधिक बलवान हैं कि उनसे युद्ध करना, उन्हे वश में करना, बड़ा ही कठिन है, यह आस्तीन के सांप हैं। इन सांपो को न काटने देना और काट लेने पर उसका असर न होने देना ऐसे वैद्यों का काम नहीं है योद्धा ही का काम है ऐसे ही योद्धा को जैन कहते हैं।

जैन का जीवन एक विलक्षण प्रकार का होता है। वह जहाँ तक बनता है और जिस तरह भी होता है अपने अन्तरंग शत्रुओ को बढ़ने नहीं देता—उनका नाश करना ही उसका ध्येय लक्ष्य रहता है। सांसारिक विकल्प उस पर असर करने नहीं पाते वह किसी के प्रभाव के चक्र मे नहीं आता, उस पर अपनी आत्मा का ही प्रभाव-छाया रहता है। वह सब कुछ करते हुए भी सब से अलिप्त रहता है। उसके मन, वचन, काया से स्वयं ही ऐसी कोई क्रिया नहीं होती जिससे संसार की, देश की, समाज की व जाति की शांति भग हो। वह संसारिक अवस्था मे—गृहस्थावस्था में सब में अपने को और अपने मे सबको देखता है। उसके प्रत्येक कार्य ऐसे होते हैं जिनसे कभी किसी को हानि की संभावना ही नहीं होती। सारांश यह है कि संसार मे पवित्र, शांत, शुद्ध, उत्साही, परोपकारी और आनन्दी जीवन एक जैन-जीवन है। दुःख-सुख के विकार उसके पास नहीं फटकने पाते, वह-सदा सबसे प्रसन्नतापूर्वक मिलता और अपने से मिलने वालो को भी प्रसन्नचित्त बना लेता है। परोपकार उसकी गृहस्थावस्था का मूलमन्त्र रहता है।

जैनधर्म के कर्मवाद का व्यावहारिक रूप

(जैनत्व की झाँकी में से)

मनुष्य जब किसी कार्य को आरम्भ करता है, तो उसमें कभी-कभी अनेक विघ्न और बाधाए उपस्थित हो जाती हैं। ऐसी

स्थिति में मनुष्य का मन चचल हो जाता है, और वह घबरा उठता है। इतना ही नहीं, वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ सा बनकर अपने आस पास के संगी-साथियो को अपना शत्रु समझने की भूल भी कर बैठता है। फल-स्वरूप अंतरंग कारणों को भूल कर बाहरी कारणो से ही जूझता रहता है।

ऐसी दशा मे मनुष्य को पथभ्रष्ट होने से बचाकर सत्पथ पर लाने के लिए किसी सुयोग्य गुरु की बड़ी भारी आवश्यकता है। यह गुरु और कोई नहीं, कर्म सिद्धान्त ही हो सकता है। कर्मवाद के अनुसार मनुष्य को यह विचार करना चाहिए कि जिस अन्तरग भूमि में विघ्न रूपी विष वृक्ष अंकुरित और फलित हुआ है, उसका बीज भी उसी भूमि में होना चाहिए। बाहरी शक्ति तो जल और वायु की भांति मात्र निमित्त कारण हो सकती है। असली कारण तो मनुष्य को अपने अन्तर में ही मिल सकता है, बाहर नहीं। और वह कारण अपना किया हुआ कर्म ही है और कोई नहीं। अस्तु जैसे कर्म किए हैं, वैसा ही तो उनका फल मिलेगा। नीम का वृक्ष लगाकर यदि आम के फल चाहे तो कैसे मिलेंगे? मैं बाहर के लोगों को स्वयं ही दोष देता हूँ। उनका क्या दोष है? वे तो मेरे अपने कर्मों के अनुसार ही इस दशा में परिणत हुए हैं। यदि मेरे कर्म अच्छे होते तो वे भी अच्छे न हो जाते? जल एक ही है, वह तमाखू के खेत मे कड़वा बन जाता है तो ईख के खेत मे मीठा भी हो जाता है। जल अच्छा बुरा नहीं है। अच्छा बुरा है ईख और तमाखू। यही बात मेरे और मेरे संगी साथियों के सम्बन्ध में भी है। मैं अच्छा हूँ तो सब अच्छे हैं और मैं बुरा हूँ तो सब बुरे हैं।

मनुष्य को किसी भी काम की सफलता के लिये मानसिक शान्ति की बड़ी आवश्यकता है और वह इस प्रकार कर्म-सिद्धान्त से ही मिल सकती है। आंधी और तूफान में जैसे हिमाचल

अटल और अडिग रहता है, वैसे ही कर्मवादी मनुष्य भी अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शान्त तथा स्थिर रहकर अपने जीवन को सुखी और समृद्ध बना सकता है। अतएव कर्मवाद मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में बड़ा उपयोगी प्रमाणित होता है।

कर्म सिद्धान्त की उपयोगिता और श्रेष्ठता के सम्बन्ध में डा० मैक्स मूलर के विचार बहुत ही सुन्दर और विचारणीय हैं। उन्होंने लिखा है:—

"यह तो सुनिश्चित है कि कर्मवाद का प्रभाव मनुष्य-जीवन पर बेहद पड़ा है। यदि किसी मनुष्य को यह मालूम पड़े कि वर्तमान अपराध के सिवाय भी मुझ को जो कुछ भोगना पड़ता है, वह मेरे पूर्वकृत कर्म का ही फल है, तो वह पुराने कर्म को चुकाने वाले मनुष्य की तरह शान्त भाव से कष्ट को सहन कर लेगा। और यदि वह मनुष्य इतना भी जानता हो कि सहनशीलता से पुराना कर्ज चुकाया जा सकता है, तथा उसी से भविष्यत् के लिए नीति की समृद्धि एकत्रित की जा सकती है, तो उस को भलाई के रास्ते पर चलने की प्रेरणा आप ही आप होगी। अच्छा या बुरा कोई भी कर्म नष्ट नहीं होता। यह नीति-शास्त्र का मत और पदार्थ शास्त्र का बल संरक्षण सम्बन्धी मत समान ही है। दोनों मतों का आशय इतना ही है कि किसी का नाश नहीं होता। किसी भी नीति शिक्षा के अस्तित्व के सम्बन्ध में कितनी ही शङ्का क्यों न हो, पर यह निर्विवाद सिद्ध है कि कर्म सिद्धान्त सब-से अधिक जगह माना गया है। उससे लाखों मनुष्यों के कष्ट कम हुए हैं। और उसी मत से मनुष्यों को वर्तमान संकट झेलने की शक्ति पैदा करने तथा भावी जीवन को सुधारने में भी उत्तेजना, प्रोत्साहन और आत्मिक बल मिलता है।"

दिशा-पूजन

(श्रीमद् जवाहराचार्य की उदाहरणमाला में से)

राजगृही के वेणुवन में सिगाल नामक एक सद्गृहस्थ रहता था। उसने अपने पुत्र को शिक्षा दी कि यदि तुम कुलधर्म की रक्षा करना चाहो तो छह दिशाओं की पूजा करते रहना।

पुत्र पितृभक्त था। वह पिता की बात का मर्म तो समझा नहीं, मगर दिशाओं की पूजा करने लगा। वह चारो दिशाओ में तथा ऊपर और नीचे फूल और पानी उछाल देता और समझता कि मैंने कुलधर्म का पालन यिया।

एक बार उसे कोई महात्मा मिले। उन्होंने फूल और पानी उछालते देखकर पूछा—यह क्या करता है? तब उसने कहा—मैं पिता के आदेशानुसार छह दिशाओ की पूजा करता हूँ।

महात्मा बोले—तुझे दिशाओ की पूजा करना नहीं आता। जो पूजा तू कर रहा है वह उन्नति का साधन नही है।

लड़का सरलहृदय था। उसने कहा—मैं नहीं समझा तो आप समझा दीजिए। जैसा आप कहेंगे, वैसा करूँगा।

महात्मा बोले—पहले तू छह दिशाओं को समझ ले। माता, पिता और धर्मगुरु पूर्व दिशा हैं। विद्यागुरु दक्षिण दिशा हैं। स्त्री पश्चिम दिशा है। सगे सम्बन्धी उत्तर दिशा हैं। उर्ध्व दिशा सन्त महात्मा हैं और अपने से नीचे नौकर-चाकर आदि अधोदिशा हैं। इनकी पूजा करना ही छह दिशाओं की पूजा करना कहलाता है।

थोड़े शब्दों में इस व्याख्या को याद रखकर तदनुसार बर्ताव करे तो तेरा इस लोक और परलोक में कल्याण होगा।

माता-पिता पूर्वदिशा हैं और इनकी पूजा पाँच प्रकार की है; क्योंकि माता-पिता, पुत्र पर पाँच प्रकार का अनुग्रह करते हैं।

इनकी पूजा का अर्थ है—इनकी सेवा-सुश्रूषा करना, मान-सन्मान करना और कुलधर्म का पालन करते हुए मर्यादा में चलना। दो भाई हो तो उनके हिस्से की सम्पत्ति आप ही न हड़प जाना, उनका हिस्सा उन्हें देना। बहिन सुसराल चली गई हो तो उनके लिए भी कुछ भाग लगा देना।

सचमुच कुलीन पुत्र वही कहलाता है जो पिता की सम्पत्ति को मौज मजा-मौजा मे नहीं उड़ा देता, किन्तु ऐसी व्यवस्था करता है जिससे धर्म की भी रक्षा हो। ऐसा पुत्र पिता का आशीर्वाद प्राप्त करता है। पिता का आशीर्वाद, पिता के धर्म का पालन करने से ही मिलता है। पिता, पुत्र का पालन-पोषण करता है, शिक्षित-दीक्षित बनाता है, विवाह-शादी करके ऐसी व्यवस्था करता है कि जिससे पुत्र बाद मे भी सुखी रह सके। अतएव पिता की पूजा न करना अनुचित है। मगर पूजा का अर्थ यह नहीं कि उसके सामने धूप जला दी जाय और फूल चढ़ा दिये जाएँ। पिता के प्रति सदैव आदर का भाव रखना और कभी उनकी अवज्ञा न करना, पिता की सच्ची पूजा है।

दक्षिण दिशा विद्यागुरु है। विद्यागुरु का भी बड़ा उपकार है। वह एक तरह से पशु से मनुष्य बना देते हैं। हृदय में विद्या की ज्योति जगाते हैं। अतएव विद्यागुरु का सन्मान-सत्कार करना, उनको अन्न-वस्त्र आदि देना, शक्ति के अनुसार धन से उनकी सहायता करना उनकी सच्ची पूजा है। स्त्री पश्चिम दिशा है। स्त्री की पूजा का अर्थ यह नहीं कि उसके पैरों मे मस्तक रगड़ा जाय या उसे हाथ जोड़े जाएँ। स्त्री का सन्मान करना, कभी अपमान न करना ही स्त्री की पूजा है। मनु ने कहा है:—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

जहाँ नारी का सन्मान किया जाता है, अपमान नहीं किया जाता है, वह स्थान देवलोक बन जाता है। शास्त्र में स्त्री

को देवानुप्रिया, धर्मशीला, धर्मसहायिका, कहकर संबोधन किया गया है। जो धर्म की सहायिका है, उसका अपमान करना कहाँ तक उचित है ? स्त्री का अपमान करना मानव-जाति की महत्ता का अपमान करना है। अतएव अपनी पत्नी का कदापि अपमान न करके उसकी सुख-सुविधा की चिन्ता रखना स्त्री-पूजा है।

जो लोग अपनी पत्नी के प्रति दुर्व्यवहार करते हैं, उन्हें उसका बदला पत्नी की ओर से मिलता है। आप कठोर रहेंगे तो क्या आपकी छाया कठोर नहीं रहेगी ? फिर स्वयं कड़े बने रह कर संसार को कोमल कैसे बना सकते हो ? आप स्त्री का सन्मान करेंगे तो वह आपकी गृहस्थी का उत्तम प्रबन्ध करेगी।

सगे-सम्बन्धी उत्तर दिशा है। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने सम्बन्धी और स्नेही जनों पर समभाव रखता हुआ उनके सुख-दुःख मे सम्मिलित रहे, उन्हे आपत्ति से बचावे। यही उनकी पूजा है। अपने कुटुम्बी जनों को बोझ न समझे। उनकी पूरी तरह सार-सम्भाल करे। उन्हे अपने ही समान समझे। ऐसा होने पर वे प्राणों को सकट में डाल कर भी तुम्हारी सहायता करेंगे। कुटुम्बियो और सगे-सम्बन्धियो को अपनाये रहने से समय पर उनसे बडी सहायता मिलती है।

प्राचीन काल के समधी (व्याई) यह समझते थे कि हमने अपनी पुत्री देकर पुत्र लिया है और पुत्री लेकर पुत्र दिया है। दोनो, दोनों घरो की जिम्मेवारी समझते थे। ऐसी भावना थी तो आनन्द रहता था। मगर आज वह आनन्द कहाँ नजर आता है ? लड़की वाले ने अच्छी पहरावणी दे दी, तब तो गनीमत है, नहीं तो लडके वाला लड़ता और वैरी बन जाता है।

नीची दिशा नौकर-चाकर आदि हैं। लोग उन्हें हल्की और घृणा की दृष्टि से देखते है, मगर इन लोगो की सेवा पर ही बड़े कहलाने वालो की जिन्दगी निर्भर है।

पहला नौकर भंगी है। कठोर से कठोर सेवा भंगी करता है। गन्दगी तो आप फैलाते हैं और उसे साफ वह करता है भंगी। प्रकृति से वह भी आपके ही समान है। उसके कुल में भी हरिकेशी जैसे महान पुरुष ने जन्म लिया है। वह भी आपकी ही तरह धर्म का अधिकारी है।

दूसरे नौकर-चाकर भी आपको सुख पहुँचाते हैं। स्वयं कष्ट सहते हैं, मगर आपको कष्ट से बचाते है। अतएव उन पर भी स्नेह की दृष्टि होनी चाहिए। इस प्रकार महत्तर, पानी वाला, रसोई वाला आदि कोई भी नौकर क्यो न हो, उसका उचित सम्मान करना अधोदिशा की पूजा करना है। स्मरण रखना चाहिए कि नौकर-चाकर आदि जो नीचे समझे जाते हैं, उन्ही पर तुम्हारी ऊँचाई टिकी है। आकाश से बातें करने वाला महल पृथ्वी के सहारे ही खड़ा होता है। आप नौकर के सुख-दुख का विचार करेंगे तो वे आपका काम भी ज्यादा करेंगे। आपका काम करता-करता कोई नौकर बीमार हो जाए और आप उसकी सार,सँभाल न करे और ऊपर से वेतन काट लें तो यह बेवफाई है। मालिक वफादार रहेगा तो नौकर भी वफादार रहेगा।

छठी ऊर्ध्व दिशा है। यह दिशा मनुष्य को ऊँचा उठाने वाली है। श्रमण, निर्ग्रन्थ, साधु, सन्यासी आदि किसी भी शब्द से कहो, परन्तु जिन्होंने संसार त्याग दिया है, मोह-ममता का परित्याग कर दिया है, उनकी सेवा-पूजा करना ऊर्ध्वदिशा की पूजा है। उनकी पूजा का अर्थ यह है कि उनको यथोचित नमस्कार-वन्दन करना, उन पर श्रद्धा रखना और जब वे भिक्षा के लिए आवे तो भोजन-पानी आदि धर्म-सहायक वस्तुएँ देकर उनका सहायक बनना।

इस प्रकार गृहस्थों से आदर-सम्मान लेने वाले साधु का धर्म क्या है ? साधु पर उत्तरदायित्व है कि वह अपने भक्तों को सच्चा कल्याण का मार्ग दिखलावे । उन्हें किसी प्रकार का सन्देह हो तो शास्त्र के अनुसार उसका निवारण करे । ऐसा न हो कि:—

दस वोगे दस बोगले दस वोगों के बच्चे, गुरु जी बैठे गप्पें मारे चेले जानें सच्चे ।

शिष्यों को आत्मा, परमात्मा, नीति, धर्म, संसार, मोक्ष, गृहस्थ धर्म आदि का स्वरूप समझाना धर्मगुरु का कर्त्तव्य है ।

यह छः दिशाएँ हैं । इनकी यथाविधि पूजा करते रहने से कोई बेपरवाह नहीं होगा और सब अपने-अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहेंगे । पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, स्वामी-सेवक आदि सबका कुलधर्म अक्षत रहेगा ।

जीव-दया

बायां थे एक चित्त करि सुनिजो, जीवदया दिलधरजो जी ।
जीव दया सम धर्म नहीं है, पुन्य खजाना भरजो जी ॥बा० १॥
प्रातः उठ सामायिक कीजे, नवपद ध्यान धरीजे जी ।
बिन छाण्यो पाणी नवि पीजे, जीवांनी यत्न कराजो जी ॥बा० २॥
बिन पूज्या देख्यां बिन चक्की, युंही नांही चलावो जी ।
बिन छाण्यो नहीं चून वापरणो पहले देख लिरावोजी ॥बा० ३॥
ईंधन छाणां बिन देख्यां कभी, चूला मे नहीं धरना जी ।
साग पात केइ खोरबा खेलरा, जीव सहित नहीं करनाजी ॥बा० ४॥
बिन चन्दर वे रसोई करती आहिज मोटी खोड जी ।
माथो कुचरे रसोई करती, सिर लटिया दे छोड़ जी ॥बा० ५॥
जुं मारी ईलारु कमारी, लट सुल मलियां देखी जी ।
बिन जोया दोनूं भव बिगड़े । राखो पूरो विवेक जी ॥बा० ६॥
पहिरन ओढन बढ़िया कपड़ा, गहणो चिदगल राखे जी ।
अनुकम्पा बिन मोक्ष तना सुख, कहो किस विधसे चाखेजी ॥बा० ७
दाख, छाछ, गुड़, शक्कर अरु तेल मिठाई केरा जी ।
उघाड़ा बरतन मत राखो, सुधरे नरतन तेरा जी ॥बा० ८॥

पहला नौकर भंगी है। कठोर से कठोर सेवा भंगी करता है। गन्दगी तो आप फैलाते हैं और उसे साफ वह करता है भगी। प्रकृति से वह भी आपके ही समान है। उसके कुल मे भी हरिकेशी जैसे महान पुरुष ने जन्म लिया है। वह भी आपकी ही तरह धर्म का अधिकारी है।

दूसरे नौकर-चाकर भी आपको सुख पहुँचाते हैं। स्वयं कष्ट सहते है, मगर आपको कष्ट से बचाते हैं। अतएव उन पर भी स्नेह की दृष्टि होनी चाहिए। इस प्रकार महत्तर, पानी वाला, रसोई वाला आदि कोई भी नौकर क्यो न हो, उसका उचित सम्मान करना अधोदिशा की पूजा करना है। स्मरण रखना चाहिए कि नौकर-चाकर आदि जो नीचे समझे जाते हैं, उन्ही पर तुम्हारी ऊँचाई टिकी है। आकाश से बातें करने वाला महल पृथ्वी के सहारे ही खड़ा होता है। आप नौकर के सुख-दुख का विचार करेंगे तो वे आपका काम भी ज्यादा करेंगे। आपका काम करता-करता कोई नौकर बीमार हो जाए और आप उसकी सार,सँभाल न करें और ऊपर से वेतन काट लें तो यह बेवफाई है। मालिक वफादार रहेगा तो नौकर भी वफादार रहेगा।

छठी ऊर्ध्व दिशा है। यह दिशा मनुष्य को ऊँचा उठाने वाली है। श्रमण, निर्ग्रन्थ, साधु, सन्यासी आदि किसी भी शब्द से कहो, परन्तु जिन्होंने ससार त्याग दिया है, मोह-ममता का परित्याग कर दिया है, उनकी सेवा-पूजा करना ऊर्ध्वदिशा की पूजा है। उनकी पूजा का अर्थ यह है कि उनको यथोचित नमस्कार-वन्दन करना, उन पर श्रद्धा रखना और जब वे भिक्षा के लिए आवें तो भोजन-पानी आदि धर्म-सहायक वस्तुएँ देकर उनका सहायक बनना।

इस प्रकार गृहस्थों से आदर-सम्मान लेने वाले साधु का धर्म क्या है? साधु पर उत्तरदायित्व है कि वह अपने भक्तों को सच्चा कल्याण का मार्ग दिखलावे। उन्हें किसी प्रकार का सन्देह हो तो शास्त्र के अनुसार उसका निवारण करे। ऐसा न हो कि:—

दस योगें दस भोगते दस योगों के बदले, गुरुजी बैठ गये नावें ऐसे जावें सबै ।

शिष्यों को आत्मा, परमात्मा, नीति, धर्म, संसार, मोक्ष, गृहस्थ धर्म आदि का स्वरूप समझाना धर्मगुरु का कर्त्तव्य है।

यह छः दिशाएँ हैं। इनकी यथाविधि पूजा करते रहने से कोई बेपरवाह नहीं होगा और सब अपने-अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहेंगे। पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, स्वामी-सेवक आदि सबका कुलधर्म अक्षत रहेगा।

जीव-दया

बायां थे एक चित्त करि सुनिजो, जीवदया दिलधरजो जी ।
जीव दया सम धर्म नहीं है, पुन्य खजाना भरजो जी ॥बा० १॥
प्रातः उठ सामायिक कीजे, नवपद ध्यान धरीजे जी ।
बिन छाण्यो पाणी नवि पीजे, जीवांनी यत्न कराजो जी ॥बा० २॥
बिन पूंज्या देख्यां बिन चक्की, युं ही नांही चलावो जी ।
बिन छाण्यो नहीं चून वापरणो पहले देख लिरावोजी ॥बा० ३॥
ईंधन छाणां बिन देख्यां कभी, चूला मे नहीं धरना जी ।
साग पात केइ खोरवा खेलरा, जीव सहित नहीं करनाजी ॥बा० ४॥
बिन चन्दर वे रसोई करनी आहिज मोटी खोड जी ।
माथो कुचरे रसोई करती, सिर लटिया दे छोड़ जी ॥बा० ५॥
जुं माखी ईलारु कमारी, लट सुल सलियां देखी जी ।
बिन जोयां दोनूं भव बिगडे । राखो पूरो विवेक जी ॥बा० ६॥
पहिरन ओढ़न बढ़िया कपड़ा, गहणो चिदगल राखे जी ।
अनुकम्पा विन मोक्ष तना सुख, कहो किस विधसे चाखेजी ॥बा० ७
छाछ आछ, गुड़, शकर अरु तेल मिठाई केरा जी ।
उघाड़ा बरतन मत राखो, सुधरे बरतन तेरा जी ॥बा० ८॥

रामायण से शिक्षा

टेक—शिक्षा दे रही जी हमको रामायण अति प्यारी।

एक समय मे एक पुरुष ने व्याही ज्यादा नारी।
वृद्धावस्था में दशरथ की इसने बात बिगारी ॥शिक्षा०॥
राज छोड़ वन गये राम ने पितु आज्ञा शिर धारी।
अब तो पिता के लिए पुत्र जन चाहते हैं गिरफ्तारी ॥शिक्षा०॥
राजमहल के सब सुखों पर एकदम ठोकर मारी।
बन गई थी संग पति के सीता पतिव्रता नारी ॥शिक्षा०॥
विपत्ति समय में संग राम के की लछमन त्यारी।
अब तो पीयें खून भ्रात का रहते मुकदमें जारी ॥शिक्षा०॥
राज तिलक को गेंद बनाकर खेलन लगे खिलारी।
इधर राम उस तरफ भरत दोनो ने ठोकर मारी ॥शिक्षा०॥
चरण भाई का धरी शीश पर यही बात विचारी।
साधु बनकर रहा भरत नहीं बना राज-अधिकारी ॥शिक्षा०॥
राम लखन ने सूर्पनखा को क्या कह कर ललकारी।
अब जहाँ चिकनी मिट्टी देखे फिसल जाय व्यभिचारी ॥शिक्षा०॥
लक्ष्मण शीश झुकाता था कह सीता को महतारी।
हाय आजकल तो भाभी को कहते आधी नारी ॥शिक्षा०॥
था पण्डित विद्वान वह रावण जाने दुनिया सारी।
मद्य मांस पर-त्रिया हरण के राक्षस हुआ था भारी ॥शिक्षा०॥
तन मन से रहा सेवा करता हनुमान बलधारी।
अब तो मुँह पर करें खुशामद पीछे देते गारी ॥शिक्षा०॥
लालच और तलवार से डरकर सिया न हिम्मत हारी।
थोड़े भय से धर्म गवाएँ हाय आज कल नारी ॥शिक्षा०॥
भक्त विभीषण ने भाई की संगत दूरी निवारी।
अच्छी संगत में तुम जाओ कहे 'चन्द्र' पुकारी ॥शिक्षा०॥

बहादुर की अहिंसा

('विश्ववात्सल्य' गुजराती साप्ताहिक हिन्दी हरिजन, सेवक से)

एक गाँव की सीमा पर हम थोड़ी देर ठहरे। यह गाँव हमारे रास्ते में पड़ता था। जिस लिए उसके बारे में विस्तार से जानकारी पाने का लोभ हो आया। ज्यों ही ठहरे कि तुरन्त गाँव के लोग दौड़ कर हमारे पास आये। दो-चार आदमी तो मानो पलभर में हमारे पास पहुँच गये। हमने उनसे थोड़ी पूछ-ताछ की। समय हो रहा था, इसलिए हमने फिर चलना शुरू किया। गाँव के लोगों में से कुछ ने दूर से हमारा स्वागत किया। कुछ लोग हमारे साथ चलने लगे। एक कुआं आया। उसके पास की जमीन धंस गई थी, इससे कुएं को भारी नुकसान पहुँचा था उसका वर्णन चल रहा था। इतने में एक आदमी की तरफ हमारी नजर गई। उसके हाथ की उंगलियां कटी हुई मालूम होती थीं। हम पूछें उससे पहले ही उस भाई ने अपनी राम-कहानी शुरू की। एक दृष्टि से वह बात छोटी थी, दूसरी दृष्टि से बड़ी थी। 'जिला कर जीओ' इस सूत्र के बनिस्बत 'मरकर जिलाओ' यह सूत्र ज्यादा मूल्यवान है। आज अणुबम या उससे भी ज्यादा भयंकर हथियारों पर श्रद्धा रखने वाले देश लोकशाही और मानवता की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। भारत जब न्याय पक्ष लेकर तटस्थ रहता है, तब उसकी हँसी उड़ाते हैं। ऐसी स्थिति में एक गाँव में घटी हुई छोटी-सी घटना भी हम में कितनी बड़ी आशा का संचार कर देती है!

बात यह थी कि एक शिकारी एक मनोहर मोर पर अपनी बन्दूक का निशाना लगा रहा था। इतने में एक करुण चित्कार सुनाई दी। "ठहरो भाई, ठहरो! तुम अपने शौक के लिए इस निर्दोष, निरीह प्राणी को क्यों मारते हो?" शिकारी

की बन्दूक हिल गई। उसके हृदय को गहरा आघात लगा। लेकिन उसका असर थोड़ी देर ही टिका। उसने फिर से बन्दूक तानी और निशाना लगाया। वह बोलने वाला नजदीक आ गया और कहने लगा—"मुझ में प्राण हैं, तब तक मैं इस मोर को नहीं मरने दूंगा।" यह बोलने वाला गाँवठी आदमी था। ठाकरड़ा (आजकल क्षत्रिय ठाकुर कहलाने वाली) नाम की हलकी मानी जाने वाली जाति का वह एक सीधा, भोला-भाला आदमी था। वह न तो किसी बड़ी संस्था का सदस्य था, न वह कोई अहिंसा का झण्डाधारी सैनिक था। वह तो एक साधारण मनुष्य था। कूदते-खेलते मोर की इस बिना कारण होती हुई हत्या को देखकर उसके भीतर की आत्मा तिलमिला उठी थी। वह शिकारी भी कोई साधारण आदमी नहीं था। वह गुस्से से जल रहा था। ऐसे मनपसन्द शिकार को मारने में गाँव के ऐसे मामूली आदमी के रुकावट डालने से रुक जाना उसे स्वाभिमान के खिलाफ मालूम हुआ। उसका अहं इसे सह न सका। उसने चुनौती देते हुए कहा—"ऐ बेवकूफ हट जा सामने से। वर्ना अपने को मरा हुआ ही समझ लेना।" बस फिर क्या था? वह बहादुर ग्रामवासी उसकी बन्दूक और मोर के बीच आकर खड़ा हो गया और बोला—"चलाओ बन्दूक।" और बन्दूक छूटी। मोर बच गया और वह आदमी गोलियों से छिद गया। शिकारी द्वारा इतना ही नहीं, बल्कि निष्प्राण जैसा हो गया। उसके पश्चात्ताप का पार न रहा। लेकिन अब क्या हो सकता था? बन्दूक तो छूट चुकी थी। दूसरा कोई होता तो इस घटना से होने वाली प्रतिक्रिया से पहले ही भाग जाता। लेकिन वह शिकारी नहीं भागा। वह उस ग्रामवासी की भक्तिपूर्ण हृदय से सेवा करने लगा। गाँव के लोग दौड कर आ पहुँचे। छर्रे तो बहुत से लगे थे। लेकिन सौभाग्य से वह बहादुर ग्रामवासी बच गया।

उसने उत्तेजित बने हुए अपने गाँव के लोगों को इकट्ठा किया। शिकारी के दिल पर इसका गहरा असर क्यों न हो ? घायल हुआ साधारण मनुष्य उसे कितना महान लगा होगा। घायल मनुष्य ने शिकारी को विदा किया। शिकारी गया और घायल की सार सम्भाल के लिये पैसे देता गया। घायल थोड़े ही समय में अच्छा हो गया। उंगलियों, हाथ वगैरा पर छुरों के निशान रह गये। वे निशान 'अहिंसक के जीवन' के जीते-जागते प्रतीक ही थे न ?

मैंने सोचा, कुदरत कितनी रहस्यमयी है ! शहर में ऐसा हुआ होता, तो इस कहानी के बहादुर नायक की अखबारों में कितनी तारीफ होती, उसकी बहादुरी का कैसा आकर्षक वर्णन छपता ! लेकिन इस बहादुर ग्रामवासी के लिए ऐसा कुछ भी नहीं हुआ होगा। गाँवों में ऐसे कितने ही रत्न छिपे पड़े होंगे ! हमारे कुछ देर के लिये रुक जाने से कितना लाभ हो गया ! ऐसा सोचते हुए हम आगे बढ़े।

भारतीय देवियों के चार देव

गृहस्थी की गाड़ी स्त्री और पुरुष दोनों से चलती है। पुरुष यदि बाहर से व्यवस्था करके द्रव्य का उपार्जन करता है, तो स्त्री घर के भीतर ही रह कर कुछ ऐसे व्यवसाय कर सकती है कि जिससे यदि द्रव्य की आमदनी न होगी, तो खर्च में बचत तो अवश्य ही हो जायगी। आजकल, अँग्रेजी सभ्यता के जमाने में, प्रायः देखा जाता है कि हमारे घरों की स्त्रियां मामूली गृहकार्य के अतिरिक्त और कोई ऐसे कार्य नहीं करती हैं कि, जिनसे कुछ द्रव्य उत्पन्न हो, अथवा खर्च में ही कुछ बचत हो। प्राचीन काल की स्त्रियों के जीवन पर जब हम दृष्टि डालते हैं, तब हमारा उपर्युक्त

कथन बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। पहले हमारे देश में ऐसे कुटुम्ब बहुत ही कम होंगे, जिनमें चक्की और चर्खा न चलता हो। बल्कि चक्की, चर्खा, चूल्हा और चौपाये अर्थात् पशु—यही भारतीय देवियो के चार देव माने जाते थे।

चक्की—जब हमारी माताएं और बहनें चक्की से काम लेती थीं, तब उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता था, और भोजन के पदार्थ भी स्वादिष्ट और पुष्टिकारक होते थे। आजकल स्त्रियाँ परिश्रम से बचने के लिये कल से आटा पिसवा लेती हैं। कल के पीसे हुए आटे में सत्व बिल्कुल नहीं रहता, बिलकुल निर्जीव राख की तरह होता है। इसके सिवाय कल के आटे में मिट्टी, कंकड़ इत्यादि भी पिस कर मिल जाते हैं। उसकी रोटी में स्वाद और बलकारक अंश नहीं रहता। केवल भूख शान्त करने के लिए अवश्य काफी है। चक्की का परिश्रम न करने के कारण ही आजकल स्त्रियां रोगी बनी रहती है। उनमे क्षय का रोग बहुत बढ़ गया है। गर्भ धारण करने की शक्ति नष्ट हो गई है, और यदि गर्भ रह भी जाता है, तो सन्तान उत्पन्न करते समय स्त्रियों को महान् कष्ट का सामना करना पडता है। यह अनुभव की बात है कि जो स्त्रियाँ चक्की पीसने का अभ्यास रखती हैं, उनको संतान जनते समय बिलकुल कष्ट नहीं होता।

चर्खा—चक्की की तरह चर्खा भी गृहस्थी के लिए आवश्यक है। पचीस वर्ष पहले भारत में प्रायः ऐसा कोई घर नहीं था, जिसमें चर्खा न चलता हो। इससे आर्थिक लाभ के अतिरिक्त शारीरिक और मानसिक लाभ भी होता है। जब मनुष्य बेकार बैठा रहता है, तब उसकी मनोवृत्तियां बुरी बुरी बातो की ओर दौड़ा करती हैं, और उसके आचरण पर भी इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। पहले स्त्रियाँ भी पुरुषो की भांति घर में बैठे-बैठे कुछ न कुछ काम ही किया करती थीं। वे बेकार बैठकर

गप्पाष्टक में ही अपना जीवन नहीं खराब करती थीं। भारतीय सभ्यता में स्त्रियों को गृहिणी का पद इसीलिए दिया गया है कि गृह-प्रबन्ध का भार वे पूरा-पूरा अपने ऊपर लें। चर्खे के द्वारा सूत तैयार करके सस्ता कपड़ा तैयार करा लेना घर के प्रबन्ध का एक मुख्य भाग है, और इससे घर-खर्च मे बहुत बचत हो सकती है। विलायती कपडे में करोड़ों रुपया प्रति वर्ष विदेश चला जाता है। इसको बचाकर हमारे घरों में स्त्रियाँ देश की बड़ी भारी सेवा कर सकती हैं।

गौ-सेवा—गौ-भैंस इत्यादि दूध देने वाले पशुओ की सेवा का भी बहुत कुछ भार पहले हमारे घरो की स्त्रियाँ ही सम्हालती थीं। यह तो नहीं कि वे जंगल से पशुओ के लिए चारा काटकर लाती हो, परन्तु हां, कटे हुए चारे में घर की चूनी भूसी और खली इत्याद मिलाकर पशुओ के सामने चारा डाल देती थी। चर्खी ओटकर कपास से रुई और विनौला अलग करती थीं। बिनौला पशुओं को खिलाती थीं, जिससे घी-दूध की वृद्धि होती थी, और रुई को चर्खे से कातकर वस्त्र बुनवाती थी। गौओ की सेवा गृहस्थी मे एक बहुत पवित्र काम समझा जाता था। राजा दिलीप ने गौ की सेवा करके ही पुत्ररत्न उत्पन्न होने का आशीर्वाद पाया था। जिस घर में 'दूध' और 'पूत' नहीं होता था, वह दुर्भाग्यपूर्ण समझा जाता था। गृहस्थों मे "दधि-मंथन" का घोष बड़े सौभाग्य का चिह्न समझा जाता था। दूध का बेचना और खरीदना भी पाप था। स्त्रियाँ दूध दुहती थीं, उसको गरम करके दही जमाती थीं। यह भी उनका एक नित्य का व्यवसाय था। किन्तु आज ये सब बातें हमने छोड़ दी है। इसी से हमारे घरों में नाना प्रकार के रोगो ने अपना अड्डा जमा रखा है।

भोजन बनाना—चूल्हेदेव की उपासना अर्थात् भोजन बनाने का काम भी घर की स्त्रियों का ही है। यदि गृहिणी

अपने हाथ से भोजन बनाकर अपने परिवार को खिलावे, तो उसमें बहुत आनन्द आता है, भोजन स्वच्छ और स्वादिष्ट बनता है, और भोजन करने वालों की रुचि बढती है। भारत में अब भी अनेक परिवार ऐसे है कि जिनमें माता, या घर की कोई बड़ी-बूढ़ी, जब तक भोजन न परोसे, तब तक घरवालों का पेट नहीं भरता। रसोइया चाहे जितना अच्छा भोजन बनावे, पर उसमें वह सफाई और स्वाद नहीं होता, जो घर की स्त्री के बनाये हुए भोजन में होता है।

स्त्रियों का व्यायाम—वास्तव मे स्त्रियाँ यदि आलस्य छोडकर घर के कामकाज में लगी रहा करें, तो उनको दूसरे व्यायाम की आवश्यकता ही नहीं। चक्की चलाना, मूसल चलाना, चर्खा चलाना, दही मथना, इत्यादि ऐसे कार्य हैं कि जिनसे स्त्रियों के सब अंगों की काफी कसरत हो जाती है, पर आजकल ये सब कार्य स्त्रियाँ छोड़ती जाती हैं। सेठ-साहूकारो, अमीरो और पढ़ी-लिखी स्त्रियों में तो गृहकार्य करने की चाल बिलकुल उठ गई है। स्त्रियाँ अधिकांश में अपना समय गपशप में व्यतीत करती हैं, बहुतेरी पलँग पर पड़े सोया करती हैं। कई जगह देखा गया है कि टोले-मुहल्ले की बहुत-सी स्त्रियाँ एक घर में एकत्र होकर ताश-शतरंज या गंजीफा खेला करती हैं। कई जगह अमीर घरों की स्त्रियाँ छिपकर जुआ भी खेलती रहती हैं। शारीरिक व्यायाम न मिलने के कारण सदैव दुर्बल और रोगी बनी रहती हैं। डाक्टर और वैद्यों के बिल चुकाते-चुकाते घर के लोग परेशान हो जाते हैं। मृत्यु-संख्या में स्त्रियो की ही गणना विशेष है। स्त्रियों के निर्बल रहने से भावी सन्तान भी निर्बल ही उत्पन्न हो रही हैं। इसलिए स्त्रियों को व्यायाम की दृष्टि से भी गृह-कार्य अवश्य करना चाहिए।

वर्त्तमान स्त्री शिक्षा और गृह-कार्य—आज कल हमारे देश में स्त्रियों को जो शिक्षा दी जाती है, वह बिलकुल पश्चिमी ढंग की है। इसलिए स्कूल और कालेज में शिक्षा प्राप्त की हुई स्त्रियाँ गृह-कार्य के लिए बिलकुल निकम्मी हो जाती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनको चित्रकला, ऊन और सूत की कारीगरी, सीना पिरोना, रेशम-कलाबत्तू, मोती-मूँगा के काम, जाली, झालर, इत्यादि की कारीगरी आदि बहुत से काम सिखलाये जाते हैं, पर ये सब अमीरी और विलासिता के सामान हैं। मध्यम स्थिति के कुटुम्बों को ऐसे कामों से कोई लाभ नहीं। इन कामों से घर-खर्च में कोई बचत नहीं होती, बल्कि खर्च बढ़ जाता है। इन सुशिक्षित स्त्रियों से यदि देशी तरीके के कपड़े सिलाये जायँ, अथवा दाल, रोटी, कढ़ी, तरकारी, और नाना प्रकार के देशी पकवान बनाने को कहा जाय, तो ये इस काम में बिलकुल अयोग्य होती हैं। ऐसी अंग्रेजी शिक्षा से कोई लाभ नहीं। इससे स्वास्थ्य तो खराब हो ही जाता है, बल्कि स्त्रियाँ सन्तानोत्पादन के योग्य भी नहीं रहतीं, और न "गृहिणी" पद की कोई योग्यता ही उनमें पाई जाती है। इसलिए हमारे देश की स्त्रियों को अंग्रेजी ढंग की, स्कूल और कॉलेज की, पढ़ाई से बहुत बचना चाहिए।

स्त्रियों के कुछ अन्य व्यवसाय—जिस घर में एक ही दो स्त्रियाँ हैं, और गृहकार्य अधिक है, उस घर की स्त्रियाँ ऐसे व्यवसाय बहुत कम कर सकती हैं कि जिनसे कुछ आमदनी हो सके। तथापि जिस घर में कई स्त्रियाँ हैं, और अपने समय को नष्ट नहीं करना चाहतीं, उस घर में स्त्रियाँ घर बैठे कुछ ऐसे काम अवश्य कर सकती हैं, कि जिनसे घर की आमदनी बढ़े। कपास ओंटना, सूत कातना, सूत के लच्छे बनाना, सूत रंगना, पेचक बनाना, कपड़े सीना, कपड़ों पर जाली डालना, जाली के रूमाल बनाना, बेल-बूटा काढ़ना और छापना, तरह-तरह की टोपियाँ बनाना,

कपड़े और कागज के खिलौने बनाना, छोटी-छोटी मशीनों से मोजा, बनियाइन, गुलूबन्द, निवार बुनना, अचार-मुरब्बा डालना, चूरन-चटनी, दाल का मसाला, शीशियां रखने के लिये कागज के पैकेट बनाना, कपडे और सूत के बटन बनाना इत्यादि ऐसे काम है कि जिनसे उचित आमदनी हो सकती है। मुसलमानों की स्त्रियाँ परदे में रहकर ही इस प्रकार के बहुत-से काम किया करती हैं, और अपने समय को व्यर्थ नही गँवातीं। हिन्दू घरों की स्त्रियाँ भी यदि फुरसत के समय इस प्रकार के कुछ कार्य किया करें, तो जहाँ वे एक ओर बेकारी के दूषणो से बची रह सकती हैं, वहाँ अपने कुटुम्ब की आमदनी में भी वृद्धि कर सकती हैं।

बुरी आदतें पड़ने के कारण

मन के मते न चालिये; मन का मता अनेक।
जो मन पर असवार है, ते साधु कोई एक ॥

(१) हँसी, कौतूहल मे अथवा अन्य अवसर पर गुप्त अङ्गों पर परस्पर हाथ फेरने से बालक विषयी होते हैं।

(२) एक बिछोने पर दो बालकों को सुलाने से बुरी आदत पड़ जाती है।

(३) एकान्त में या अन्धेरे में खेलने से बच्चे अनेक बार बिगड़ जाते हैं।

(४) खराब लड़के पहले छोटे बालकों को बिगाडते हैं, यह देख वे छोटे बालक भी वैसे ही कुकर्म सीख जाते है। अनमेल मैत्री अर्थात् छोटे लड़कों के साथ बड़े लडको की मित्रता, निवास या अति परिचय भी दुराचार का कारण हो जाता है।

(५) खराब लड़कों को हस्तमैथुन करते देख कर या

आपस में अथवा कन्या के साथ सोने, खेलने या शरीर के चिपटाने से अनेक लड़के बिगड़ जाते हैं।

(६) नाचने वाली, गाने वाली वेश्याओं या अन्य स्त्रियों के तथा होली के विषयी गीत, नाच रूप, शृंगार, फैशनेबिल कपड़े, नखरे और अश्लील मूर्तियाँ एवं शृंगार रस के चित्र देख व सुनकर लड़कों में विषय जगता है। इनसे आयु और धन में समर्थ लड़के वेश्यागामी होकर गर्मी आदि प्राणघातक रोगों के शिकार बन जाते हैं। जो असमर्थ हैं, वे हस्तमैथुन करके जीवन को नष्ट कर देते हैं।

(७) माता-पिता के भोग करते समय बालक की एकदम नींद उड़ जाने से भी बालकों में काम प्रवृत्ति की जागृति होती है और वे बिगड़ते हैं।

(८) आस पास के मकानों में स्त्री-पुरुष, भाई-भौजाई, पड़ौसी आदि को भोग करते देखकर या इससे सम्बन्ध रखने वाले कोई शब्द सुनकर बालक को भोगेच्छा पैदा होती है तथा उस इच्छा पूर्ति के लिये हस्तदोषादि बुरा मार्ग बिना सीखे ही ढूंढ लेते हैं।

(९) नाटक, सिनेमा, लग्न, प्रसग, तीर्थ-यात्रा या अन्य अवसरों पर स्त्रियों के हाव-भाव, शृंगार, नखरे आदि देखने से विषय जागता है और वे किसी भी उपाय से इस विषयेच्छा को तृप्त कर लेते हैं।

(१०) विकारी उपन्यास, विकारी बातें, खेल-तमाशे, सुनने-पढ़ने और देखने से युवकों में, विकार जागकर, वे कुमार्ग में पड़ जाते हैं। निरर्थक वार्ता, दिल्लगी व लड़ाई में बहुधा पुरुष और स्त्रियो के गुप्त चिह्नों की बातें सुनने से भी, अनेक युवकों के बिगड़ने की सम्भावना रहती है।

(११) ज्यादा मिठाई, ज्यादा चरपरे पदार्थ, ज्यादा क्षार,

ज्यादा खटाई, 'अथांणे' आदि खाने से भी विषयेच्छा जगती है।

(१२) शराब आदि उत्तेजक पदार्थ भी विषयी बना कर कुमार्ग में डालते हैं।

(१३) माँस का उपयोग करने से स्वभाव और बुद्धि नष्ट होकर विषय-वासना बढ़ती है।

(१४) चाय और कहवा भी उत्तेजना करके विषयेच्छा पैदा करते हैं।

(१५) विषय-भोगी, विलासी जनसमुदाय में रहने, वेश्याओं के बाजार मे जाने, वेश्या या रूप लावण्य वाली स्त्रियों को देखने या उनके सम्बन्ध मे बातें या विचार करने से विषयेच्छा पैदा होती है।

(१६) तंग वस्त्र पहिनने या ऐसे स्थानों में बैठने से जहाँ इन्द्रियो का हिलना व घिसना हो बुरी इच्छायें पैदा होकर बिगाड़ पैदा होता है।

(१७) कोमल बिछौने, तकिये, मखमल के गद्दे तकिये, बढ़िया रेशम और रुई के बिछौने और पर के तकिये विकार बढाने के कारण हैं।

(१८) जिस प्रकार खराब भोजन आमाशय को बिगाड़ता है—कारण, भोजन प्रथम आमाशय में पाचन होने को जाता है। उसी प्रकार खराब पुस्तकें, नाटक, नाच, कथा वार्ता आदि मन को विकारी बनाकर हृदय को बिगाडते हैं—कारण, मन का स्थान हृदय है।

(१९) इन्द्रिय जन्य दोष (Sexual abuses) से होने वाली हानियों की शिक्षा न मिलने से अज्ञानी बालक विषय-वासना बुरी आदतों को खेल या आनन्द का खजाना समझ कर, उनमें पड जाते हैं और शरीर, बल, बुद्धि, सुख, श्रेय, पुण्य, धर्म और वैभव का सत्यानाश कर बैठते हैं।

(२०) धार्मिक ज्ञान का अभाव—जो क्रियाकाण्ड, भेष या उपलक धर्म हैं वे धर्म नहीं हैं। ये तो धर्म के साधन, उप-साधन हैं। उनके आग्रह से ही धर्म कलह होते हैं, परन्तु आत्मा का ज्ञान न होने से अज्ञानी मनुष्य शरीर, इन्द्रियाँ और उनके भोगों को सर्वस्व मानकर तथा उन्हीं के वशीभूत होकर जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। शरीर आत्मा के रहने का विश्राम स्थान है। स्वकर्त्तव्य (धर्म) की शिक्षा नहीं मिलने से मनुष्य पाँचों इन्द्रियों का दुरुपयोग करके विषयी बनकर शारीरिक, मानसिक, कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और आत्मिक अनन्त दुःख भोगता है। इन अनन्त दुःखों से छूटने का एक ही उपाय, विषय-वासना का त्याग है। जहाँ पवित्र धर्म का सत्य ज्ञान है वहाँ विषयादि सब दोष नियम से दूर होते हैं।

यदि सच्चे हित के चाहने वाले माता, पिता या रक्षक उपर्युक्त विकारों से अपनी सन्तान को बचावेंगे तो वे ही सदाचारी होकर आरोग्य, विद्या, बल, बुद्धि, शक्ति, सुख, सम्पत्ति और अनन्त आनन्द को प्राप्त करेंगे।

जैन-संस्कृति के आदर्श

(प्रज्ञाचक्षु पण्डित श्री सुखलालजी, 'जैन-जीवन' में से)

जैन-सस्कृति के हृदय को समझने के लिए हमें थोड़े से उन आदर्शों का परिचय करना होगा जो पहिले से आज तक जैन-परम्परा में एक से मान्य हैं और पूजे जाते हैं। सब से पुराना आदर्श जैन परम्परा के सामने ऋषभदेव और उनके परिवार का है। ऋषभदेव ने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग उन जबाबदेहियों को बुद्धिपूर्वक अदा करने में बिताया जो प्रजा-पालन की जिम्मेवारी के साथ उन पर आ पड़ी थी। उन्होंने

उस समय के बिलकुल अपढ लोगो को लिखना-पढना सिखाया, कुछ काम-धन्धा जानने वाले वनचरों को उन्होंने खेती-वाडी तथा बढ़ई, कुम्हार आदि के जीवनोपयोगी धन्धे सिखाए, आपस में कैसे बरतना, कैसे समाज-नियमो का पालन करना यह भी सिखाया जब उनको महसूस हुआ कि अब पुत्र भरत प्रजा-शासन की सब जवाबदेहियों को निबाह लेगा तब उसे राज्य भार सौंप कर गहरे आध्यात्मिक प्रश्नों की छान-बीन के लिए उत्कट तपस्वी होकर घर से निकल पडे।

ऋषभदेव की दो पुत्रियां ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की थी। उस जमाने में भाई-बहन के बीच शादी की प्रथा प्रचलित थी। सुन्दरी ने इस प्रथा का विरोध करके अपनी सौम्य तपस्या से भाई भरत पर ऐसा प्रभाव डाला कि जिससे भरत ने न केवल सुन्दरी के साथ विवाह करने का विचार ही छोड़ा बल्कि वह उसका भक्त बन गया। ऋग्वेद के यमीसूत्र में भाई यम ने भगिनी यमी की लग्न-मांग को अस्वीकार किया जब कि भगिनी सुन्दरी ने भाई भरत की लग्न-माग को तपस्या में परिणत कर दिया और फलतः भाई-बहन के लग्न की प्रतिष्ठित प्रथा नाम-शेष हो गई, जो युगलियों में चल रही थी।

ऋषभ के भरत और बाहुबली नामक पुत्रों में राज्य निमित्त भयानक युद्ध शुरू हुआ। अन्त मे द्वन्द युद्ध का फैसला हुआ। भरत का प्रचण्ड प्रहार निष्फल गया। जब बाहुबलि की बारी आई और समर्थनर बाहुबली को जान पड़ा कि मेरे मुष्टि-प्रहार से भरत की अवश्य दुर्दशा होगी तब उसने उस भ्रातृविजया-भिमुख क्षण को आत्म विजय में बदल दिया। उसने यह सोच कर कि राज्य के निमित्त लड़ाई में विजय पाने और वैर-प्रति-वैर तथा कुटुम्ब कलह के बीज बोने की अपेक्षा सच्ची विजय अहंकार और तृष्णा जय मे ही है। उसने अपने बाहुबल को

क्रोध और अभिमान पर ही जमाया और अवैर से वैर के प्रति-कार का जीवन-दृष्टान्त स्थापित किया। फल यह हुआ कि अन्त में भरत का भी लोभ तथा गर्व खर्व हुआ।

एक समय था जब कि केवल क्षत्रियों में ही नहीं पर सभी वर्गों में मांस खाने की प्रथा थी। नित्य प्रति के भोजन, सामाजिक उत्सव, धार्मिक अनुष्ठान के अवसरों पर पशु-पक्षियों का वध ऐसा ही प्रचलित और प्रतिष्ठित था। जैसा आज नारियलों और फलों का चढ़ना। उस युग में यदुनन्दन नेमिकुमार ने एक अजीब कदम उठाया। उन्होंने अपनी शादी पर भोजन के वास्ते कत्ल किये जाने वाले निर्दोष पशु-पक्षियों की आर्त मूक वाणी से सहसा पिघल कर निश्चय किया कि वे ऐसी शादी न करेंगे जिसमें निर्दोष पशु-पक्षियों का वध होता हो। उस गम्भीर निश्चय के साथ वे सबकी सुनी अनसुनी करके बरात से शीघ्र वापिस लौट आये। द्वारका सीधे गिरनार पर्वत पर जाकर उन्होंने तपस्या की। कौमारवय में राजपुत्री का त्याग और ध्यान तपस्या का मार्ग अपना कर उन्होंने उस चिर-प्रचलित पशु-पक्षी वध की प्रथा पर आत्म-दृष्टान्त से इतना सख्त प्रहार किया कि जिससे गुजरात भर में और गुजरात के प्रभाव वाले दूसरे प्रान्तों में भी वह प्रथा नाम-शेष रह गई और जगह जगह आज तक चली आने वाली पिंजरापोलों की लोक प्रिय संस्थाओं में परिवर्तित हो गई।

पार्श्वनाथ का जीवन आदर्श कुछ और ही रहा है। उन्होंने एक बार दुर्वासा जैसे सहजकोपी तापस तथा उनके अनुयाइयों की नाराजगी का खतरा उठा कर भी एक जलते साँप को गीली लकड़ी से बचाने का प्रयत्न किया। फल यह हुआ है कि आज भी जैन प्रभाव वाले क्षेत्रों में कोई साँप तक को नहीं मारता।

दीर्घ तपस्वी महावीर ने भी एक बार अपनी अहिंसा-वृत्ति की पूरी साधना का ऐसा ही परिचय दिया। जब जंगल में वे ध्यानस्थ खड़े थे एक प्रचण्ड विषधर ने उन्हें डस लिया, उस समय वे न केवल ध्यान मे अचल ही रहे बल्कि उन्होंने मैत्री-भावना का उस विषधर पर प्रयोग किया जिससे वह "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सनिधौ वैरत्याग:" इस योगसूत्र का जीवित उदाहरण बन गया। अनेक प्रसंगों पर यज्ञ योगादि धार्मिक कार्यों में होने वाली हिंसा को तो रोकने का भरसक प्रयत्न वे आजन्म करते ही रहे। ऐसे ही आदर्शों से जैन-संस्कृति उत्प्राणित होती आई है और अनेक कठिनाइयों के बीच भी उसने अपने आदर्शों के हृदय को किसी न किसी तरह संभालने का प्रयत्न किया है, जो भारत के धार्मिक, सामाजिक और राजकीय इतिहास में जीवित है। जब कभी सुयोग्य मिला तभी त्यागी तथा राजा, मन्त्री तथा व्यापारी आदि गृहस्थो ने जैन-सस्कृति के अहिंसा तप और संयम के आदर्शों का अपने ढंग से प्रचार किया।

जैन संस्कृति का प्रभाव

(लेखक—पण्डित सुखलालजी सघवी, 'जैन जीवन' में से)

यों तो सिद्धान्ततः सर्वभूतदया को सभी मानते हैं, पर प्राणीरक्षा के ऊपर जितना जोर जैन-परम्परा ने दिया, जितनी लगन से उसने इस विषय मे काम किया, उसका नतीजा सारे ऐतिहासिक युग में यह रहा है कि जहाँ जहाँ और जब-जब जैन लोगों का एक या दूसरे क्षेत्र में प्रभाव रहा, सर्वत्र आम जनता पर प्राणिरक्षा का प्रबल संस्कार पड़ा है। यहाँ तक कि भारत के अनेक भागों में अपने को अजैन कहने वाले तथा जैन-विरोधी

समझने वाले साधारण लोग भी जीव-मात्र की हिंसा से नफरत करने लगे हैं। अहिंसा के इस सामान्य संस्कार के ही कारण अनेक दंगाव आदि जैनेतर परम्पराओं के आचार विचार पुरानी वैदिक परम्परा से बिलकुल जुदा हो गए हैं। तपस्या के बारे में भी ऐसा ही हुआ है। त्यागी हो या गृहस्थ, सभी जैन तपस्या के ऊपर अधिकाधिक झुकते रहे हैं। इसका फल पड़ौसी समाजों पर इतना अधिक पड़ा है कि उन्होंने भी एक या दूसरे रूप से अनेकविध सात्विक तपस्याएँ अपना ली हैं। और सामान्य रूप मे साधारण जनता जैनों की तपस्या की ओर आदरशील रही है। यहाँ तक कि अनेक बार मुसलमान सम्राट् तथा दूसरे समर्थ अधिकारियो ने तपस्या से आकृष्ट होकर जैन-सम्प्रदाय का बहुमान ही नहीं किया है बल्कि उसे अनेक सुविधाएँ भी दी हैं, मद्य-मांस आदि सात व्यसनों को रोकने तथा उन्हें घटाने के लिए जैनाचार्यों ने इतना अधिक प्रयत्न किया है कि जिससे वह व्यसनसेवी अनेक जातियों में सुसंस्कार डालने मे समर्थ हुआ है। यद्यपि बौद्ध आदि दूसरे सम्प्रदाय पूरे बल से इस सुसंस्कार के लिये प्रयत्न इस दिशा मे आज तक जारी है और जहाँ जैनों का प्रभाव ठीक-ठीक है वहाँ इस स्वैरविहार के स्वतन्त्र युग मे भी मुसलमान और दूसरे मांसभक्षी लोग भी खुल्लमखुल्ला मांस-मद्य का उपयोग करने में सकुचाते हैं। लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा था कि गुजरात आदि प्रान्तों मे जो प्राणि-रक्षा और निर्मांस भोजन का आग्रह है वह जैन-परम्परा का ही प्रभाव है। जैन विचारसरणी का एक मौलिक सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक वस्तु का विचार अधिकाधिक पहलुओं और अधिकाधिक दृष्टि-कोणों से करना और विवादास्पद विषय मे बिलकुल अपने विरोधी पक्ष के अभिप्राय को भी उतनी ही सहानुभूति से समझने का प्रयत्न करना जितनी सहानुभूति अपने पक्ष की ओर हो।

और अन्त मे समन्वय पर ही जीवन व्यवहार का फैसला करना। यों तो यह सिद्धान्त सभी विचारको के जीवन में एक या दूसरे रूप से काम करता ही रहता है। इसके सिवाय प्रजा-जीवन न तो व्यवस्थित बन सकता है और न शान्तिलाभ कर सकता है। पर जैन विचारकों ने उस सिद्धान्त की इतनी अधिक चर्चा की है और उस पर इतना अधिक जोर दिया है कि जिससे कट्टर-से कट्टर विरोधी सम्प्रदायो को भी कुछ न कुछ प्रेरणा मिलती ही रही है। रामानुज का विशिष्टाद्वैत उपनिषद् की भूमिका के ऊपर अनेकान्तवाद ही तो है।

जैननीति और जीवदया

(लेखक—डॉ० राजबलि पाण्डेय, बनारस)

जैन-धर्म के नीतिवाद का केन्द्र मानव और उसकी अभिव्यक्ति समस्त प्राणिमात्र में समदृष्टि से प्रेरित जीव-दया है। इस धर्म के कुछ एकांगीण पथिकों को देखकर कतिपय विद्वानों में इस धर्म के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। प्रसिद्ध प्राच्यविद्या-विशारद श्री हॉपकिन्स ने अपने ग्रन्थ 'रेलिजन्स ऑफ इण्डिया' (पृ० २६७) मे लिखा है—"जैन-धर्म एक ऐसा धर्म है जिसके मुख्य सिद्धान्त, जिन पर विशेष बल दिया गया है, ये हैं—(१) ईश्वर मे अविश्वास, (२) मानवपूजा और (३) कीडो-मकोड़ों का पोषण।" ये शब्द व्यंग में लिखे गये हैं। मैंने इस पुस्तक को प्रथम आज से अठारह वर्ष पहले पढ़ा था। अपनी आधुनिक बाह्य रूपरेखा की प्रतिक्रिया से मुझ को भी जैन-धर्म कुछ ऐसा ही दिखाई पड़ता था। परन्तु आज बल-पूर्वक कह सकता हूँ कि उपर्युक्त आलोचना जैन-धर्म की मूल भावना के सम्बन्ध में अज्ञान का परिणाम है। जिसको हॉपकिन्स महोदय जैन-धर्म की

दुर्बलता समझते हैं, मैं उसको जैन-धर्म की शक्ति मानता हूँ। वास्तव में जिसको संसार में राजनैतिक, धार्मिक या बौद्धिक साम्राज्य की स्थापना करना है उसको महा-मानव (सुपरमैन) अथवा ईश्वर की आवश्यकता होगी। क्योंकि उसकी कल्पना भी तो देवाधिपति या विश्वपति के रूप में है, जिसे ससार के असख्य मनुष्यो को लघु-मानव (सब ह्यूमन) अथवा पशु या यन्त्र समझकर उनका शोषण और सत्त्वापहरण करना है उनके लिये मानव और मानव-पूजा का क्या महत्त्व ? और जिनके कोटि-कोटि जीवधारियों के शरीर के लिए नित्य कब्रगाह और श्मशान बन रहे हैं उनके सामने जीव-दया की क्या उपयोगिता ? परन्तु जैन-धर्म तो धर्म और श्रेय का मार्ग है, प्रेय, संघर्ष-कलह, युद्ध और इनसे उत्पन्न दुःख का प्रवर्तक नहीं। यदि मनुष्य को एक तरफ देवत्व और दूसरी तरफ दानवत्व छोड़ कर 'मानव' बनना है तो उनको जैन-धर्म की उपयोगिता स्पष्ट दिखाई पड़ेगी।

जैन सिद्धान्त और वैज्ञानिक अन्वेषण

(श्री हेमचन्द्र भाई के भाषण से, 'जिनवाणी' मे से)

जैन समाज में विच्छिन्नता आ गई है। हम युवक और वृद्ध दो विभिन्न केम्पों में बट गये है और एक दूसरे के विरोधी हो गये हैं। युवक विज्ञान और तर्क के बल पर चलता है। वृद्ध आस्था के बल पर जीता है। एक का विज्ञान और दूसरे का धर्म सबल है। किन्तु गहराई में उतरें तो दोनों की बाह्य असमानता के अन्तर मे समन्वय के दर्शन होते हैं, और श्रेयस्कर के भी। तथा उसी स्थिति मे हमारी प्रगति है।

वृद्ध का अनुभव और आस्था उतनी ही आवश्यक है जितनी तरुण की तार्किकता। हमारी प्रगति और विचार

विश्वासो की पूर्णता इसी मे है कि जो तर्कगम्य है उसे विचार पूर्वक समझे और जो ऐसा नहीं है उसे श्रद्धागम्य करें। विचार के साथ श्रद्धा का रहना अनिवार्य है। निरी विचारकता के आधार पर हम दूर तक नहीं पहुँच सकते।

प्रत्येक बात को प्रमाणित करना सम्भव नहीं है। लौकिक जीवन मे पिता का पितृत्व सिद्ध करना ही कठिन है। केवल-ज्ञानी की समस्त बातों को हम समझ नहीं सकते। हमारी शक्ति सीमित है।

अनन्त ज्ञान के अधिकारी होना हमारे वश की बात नहीं। हमारी समझदारी तो इसमे है कि जो बुद्धिगम्य है उसकी महत्ता और प्राचीनता को स्वीकार करें और शेष को आस्था के आधार पर ग्रहण करें। विज्ञान ने जो कुछ जैन सिद्धान्त और मान्यताओं के सत्य को प्रकट किया है उनका किंचित आभास उपस्थित करता हूँ।

जैन-शास्त्रों मे वर्णित वायु, पानी और अग्नि के जीव अनेक वर्षों से अजैन समुदाय के उपहास का कारण बने हुए थे। उनकी धारणा में यह कल्पना मात्र थी किन्तु स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बसु की गम्भीर गवेषणा ने प्रयोगो द्वारा यह साक्षात् दिखा दिया है। यही क्यो, वनस्पति मे रही भावनाए और उनमे मादकता से झूमने की संभावना भी प्रयोगो द्वारा सिद्ध कर दी है। ये जीव सर बसु के जीवन काल मे ही उत्पन्न नहीं हुए। इनका जन्म तो वनस्पति के साथ हुआ था। ये तो चिरकाल से हैं नए तो इनके प्रमाण हैं। हमे उस समय की प्रतीक्षा करना चाहिए जब शास्त्रकारों की पृथ्वी आदि सम्बन्धी मान्यताओं पर विज्ञान का प्रकाश पडेगा और वे सत्य निकलेंगे।

हम मानते रहे है कि आत्मा-परमात्मा सर्वव्यापी हैं। आज का वैज्ञानिक हमें इसका प्रमाण देता है। भौतिक पुद्गल

इतने व्यापक हैं कि अमेरिका में बैठे [illegible]
जा सकता है। इस व्यापकता को [illegible]
हम समझ सकते हैं। शरीर स्थूल और [illegible]
का सर्व व्यापक होना सम्भव है।

अनन्त दूरी की वस्तु को देखने [illegible]
यथावत् देखने लगा है। अतः [illegible]
को देखते रहे हों तो आश्चर्य क्या? [illegible]
असम्भव नहीं जान पड़ता। विज्ञान ने [illegible] किया
है। ज्ञान का पुरावा होता है, [illegible] अर्थात् आत्मा का [illegible]
हम आँखें मून्द लें तो सूर्य का अस्तित्व भी प्रमाणित नहीं किया
जा सकता।

शास्त्रकारों ने अनन्त और असंख्य शब्दों का स्थान [illegible] प्रयोग किया है। अनन्त अर्थात् अन्त से रहित। और असंख्य वह जो गिने न जा सकें। यह व्यवहृत शब्द शास्त्रकारों की कल्पना नहीं वास्तविकता है। दो समानान्तर आईनों के मध्य में रखी हुई, वस्तु के बनने वाले प्रतिबिम्ब दोनों आईनों में विज्ञान के विचार से अनन्त होते हैं। उन्हें न देख पाने में कौन सा दोष और स्वयं हमारी दृष्टि की दुर्बलता है। अतः यदि हम अनन्त ज्ञानी की अवज्ञा करें तो वह स्वयं हमारी वक्रता होगी।

एटम बम जैन-धर्म के लिए कोई नई वस्तु नहीं। शास्त्रों में अणु की अनन्त शक्ति कथित की गई है। यदि एक एटम बम जापान को थर्रा सकता है तो वह उस शक्ति का परिणाम है। इसका द्रव्यानुयोग में विस्तार से वर्णन है। और इस पर से हम विचार कर सकते हैं कि यदि जड़ वस्तु इतनी शक्तिमान हो तो चेतन आत्मा में अनन्त शक्ति का वास कोई असम्भव बात नहीं।

आज का मनोवैज्ञानिक हिप्नाटिज्म की शक्ति द्वारा अर्ध चेतन व्यक्ति से दूर पर हो रही घटनाओं का वर्णन करवा

सकता है। फिर अनन्त ज्ञानों का सर्वज्ञ होना ही क्यो असम्भव माना जाय ?

किन्तु इन सबके लिए एक निश्चित और नियमित विधि-विधान शास्त्रकारो ने किया है। ठीक वैसे ही जैसे कि एक निश्चित रेखा पर सुई फिराने से ही आप रेडियो प्रोग्राम ले सकते हैं।

मैंने पाँच वर्ष की अवस्था मे अनेक थोकड़े कण्ठाग्रह कर लिये थे। उनमें रहे हुए सत्य को जब मै पूना कालेज के वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सत्य होते पाता तो मेरा जी आनन्द से भर जाता था। मेरा आज भी विश्वास है कि यदि बालक धार्मिक बातें बिना समझे भी याद कर ले तो उसके भविष्य में वैज्ञानिक तथ्यों के परिचय से उसकी धर्मभावना पुष्ट ही होगी। श्रमण वर्ग भी यदि व्यवहारिक और उचित उपायों द्वारा विज्ञान का ज्ञान संपादन कर सकें और उसके परिणाम स्वरूप धर्म को विज्ञान के साथ समझा सकें तो आज की हमारी नास्तिकता बहुत कुछ अंशों में दूर हो सकती है। तथा जैसे ऊँचाई पर चढ़ने से दूर की वस्तु दिखने लगती हैं वैसे ही हमारी विज्ञान की जानकारी से श्रद्धा गहरी और और अडिग ही होगी।

विज्ञान और धर्म का सान्निध्य हमारे समय की पहली आवश्यकता है। आज का विज्ञान धर्म को दृष्टि देगा। योरप में विज्ञान धर्म से रहित होकर ही इतना विध्वंस कर सका है। इन प्रलयकर वस्तुओ से भक्षण नहीं अपितु रक्षण करना है। अतः मनुष्य के दानवी रूप को नहीं किन्तु उसमें रहे हुए मनुष्यत्व को जाग्रत करना हो तो धर्म की शरण लेना नितान्त आवश्यक है।

आज आवश्यकता है कि हम एकांगी प्रवृत्तियो को छोड़ कर हमारे जीवन को ज्ञान, दर्शन, चारित्र के तिकोणे काँच से देखे जिससे सूर्य का प्रकाश विविध रगों से घुलमिला दीखता है, इसी में हमारे जीवन की सफलता है। ———

मैत्री-भावना

(१) मैत्री भावना—

भव्यजनों की हृदय भूमि में, बढता है शुभ मैत्री भाव ।
विश्व प्राणियों पर होता है, जिसमें अनुपम प्रेम प्रभाव ॥

(२) मैत्री का क्रम—

भगिनी, बन्धु, पुत्र, पत्नी, गृहजन, संबंधी जन प्रियतम ।
सहधर्मी, निज जाति जनों पर, बढता, मैत्री भाव प्रथम ॥

(३) ग्राम निवासी, और देशवासी, समस्त जीवों ऊपर ।
बढा पूर्ण मैत्री प्रभाव को, रखना मित्र भाव सुखकर ॥

(४) पशु, पक्षी, कीडी, वृक्षादिक, सभी प्राणियों पर हित धार ।
दयाभाव रख नित्य बढ़ाना, अतिशय मैत्रीभाव उदार ॥

(५) मैत्री भाव का कारण—

आत्म शुद्धि होने से बढता, जग में मैत्री भाव प्रभाव ।
पूर्ण शुद्धि होने पर होता, तीन लोक पर मैत्री भाव ॥

(६) मैत्री भाव क्यों करना ?

जग में कोई जीव न जो, पत्नी, पितु, पुत्र न हुए कभी ।
मैत्रीभाव योग्य बांधव सम, हैं इस जग के जीव सभी ॥

(७) अपकार के सामने मैत्री भाव—

दोष कहे, अपमान करे, या तन पर कोई करे प्रहार ।
पूर्व कर्म का कोप जान कर, रखना मैत्री भाव अपार ।

(८) मैत्री मानुषिक गुण है—

वैरभाव रख, क्लेश बढाना, रखना द्वेष, कपट, अभिमान ।
अति दुखकर यह पशु प्रवृत्ति है, रखते कभी न ज्ञान निधान ॥

(९) मन को मैत्री भाव रखने का उपदेश—

द्वेष, रोष तज सम रस सर में, कर विहार क्षमता ले भर ।
शत्रु न समझ किसी को जग में, रख मैत्री सब जीवों पर ॥

करुणा-भावना

(१) हे करुणे ! आ निकट हमारे, कर तू मेरे हृदय निवास।
हृदयों में सुख साता भर दे, कर जीवों का दुःख विनाश॥

(२) अनाथ बालक।
पिता-हीन बालक अनेक, जिनको मिलता न कहीं स्थान।
धैर्य बधाता जिन्हें न कोई, करुणे ! दे तू आश्रय दान॥

(३) वृद्ध माता-पिता।
पुत्रहीन, तनक्षीण वृद्धजन, करते हैं दिन-रात विलाप।
है जीवन निर्वाह कठिन अति, करुणे ! हर उनका संताप॥

(४) विधवा महिलाएँ।
दुखी बाल-विधवाएँ करतीं, हा ! निशदिन अति रुदन करुण।

(५) अंग-भग।
नेत्रहीन, बहरे, गूंगे, लूले, लंगडे हैं निर्बल तन।
खोल सुभग शाला उनके हित, करुणे ! तू शुभ रक्षक बन॥

(६) रोगी।
रक्त पित्त, कुष्टादि रोग से, ग्रस्त सदा जो मानव दीन।
खोल औषधालय उनके हित, करुणे ! कर तू व्यथाविहीन॥

(७) विद्यार्थियों को ज्ञानदान।
बुद्धिवान, कुलवान, छात्रगण, द्रव्यविहीन बनें अज्ञान।
हैं सहायता रहित हो जो, दिला उन्हे तू विद्यादान॥

(८) पशु-पक्षियों पर करुणा।
पापी जन पशु पक्षीगण का, वध करते, दुख दे गुरुतर।
पशुशालाएँ खोल अनेकों, करुणे ! उनकी रक्षा कर॥

(९) उपसंहार।
दया पात्र लख जग जीवों को, हे करुणे ! उर करुणा धर।
तन, मन, धन से और वचन से, गर्व त्याग नित रक्षा कर॥

प्रमोद-भावना

(१) जीव मात्र का सद्गुण लखकर, रखना हृदय हर्ष का भाव।
गुण पाने की इच्छा रखना, है प्रमोद भावना स्वभाव॥

(२) सर्व गुण शिरोमणि अर्हत भगवान्।
सकल कर्मगण को क्षय करके, पाया निर्मल केवल ज्ञान।
श्रेष्ठ सर्व गुण युक्त देव वह, धन्य, धन्य अर्हत महान्॥

(३) सत पुरुष।
धर्म धुरीण महाव्रत धारी, ध्यान समाधि मग्न गुणवंत।
जग प्रपच से रहित विरागी, धन्य, धन्य-धन्य वह साधु महंत॥

(४) देश सेवक।
देश, धर्म की सेवा में जो, स्वार्थ रहित रहते तत्पर।
न्याय-मार्ग पर चलने वाले, धन्य देशसेवक वह नर॥

(५) श्रावक।
रखते श्रद्धा अडिग धर्म पर, व्रतरत, शुभ गुण मग्न महान।
कभी न लेते धन अनीति का, धन्य धन्य श्रावक मतिमान॥

(६) परोपकारी पुरुष।
सदा सत्यवादी, ब्रह्मचारी, सरल प्रकृति अति भद्र विचार।
गुण-गण भूषित पर-उपकारी, धन्य धन्य वे जन सुखकार॥

(७) मार्गानुसारी।
भ्रातृ भाव रख, नीति मार्ग की, करते जो रक्षा मतिमान।
सत्य मार्ग गामी वे मानव, धन्य-धन्य कुल रीति निधान॥

(८) दातार।
न्याय उपार्जित, निज सपत्ति का, गुप्त रीति से देकर दान।
दीन दुखी की रक्षा करते, वे दानी नर धान्य महान॥

(९) उपसंहार।
मित्र, शत्रु गुणवान बने सब, सुखी बनें हो सब दुख दूर।
जिसे देखकर मेरे मन में, बढ़े प्रमोद भाव भरपूर॥

करुणा-भावना

(१) हे करुणे ! आ निकट हमारे, कर तू मेरे हृदय निवास ।
हृदयों में सुख साता भर दे, कर जीवों का दुःख विनाश ॥

(२) अनाथ बालक ।
पिता-हीन बालक अनेक, जिनको मिलता न कहीं स्थान ।
धैर्य बधाता जिन्हें न कोई, करुणे ! दे तू आश्रय दान ॥

(३) वृद्ध माता-पिता ।
पुत्रहीन, तनक्षीण वृद्धजन, करते हैं दिन-रात विलाप ।
है जीवन निर्वाह कठिन अति, करुणे ! हर उनका संताप ॥

(४) विधवा महिलाएँ ।
दुखी बाल-विधवाएँ करतीं, हा ! निशदिन अति रुदन करुण ।

(५) अंग-भग ।
नेत्रहीन, बहरे, गूंगे, लूले, लगडे हैं निर्बल तन ।
खोल सुभग शाला उनके हित, करुणे ! तू शुभ रक्षक बन ॥

(६) रोगी ।
रक्त पित्त, कुष्टादि रोग से, ग्रस्त सदा जो मानव दीन ।
खोल औषधालय उनके हित, करुणे ! कर तू व्यथाविहीन ॥

(७) विद्यार्थियों को ज्ञानदान ।
बुद्धिमान, कुलवान, छात्रगण, द्रव्यविहीन बनें अज्ञान ।
हैं सहायता रहित हो जो, दिला उन्हे तू विद्यादान ॥

(८) पशु-पक्षियों पर करुणा ।
पापी जन पशु पक्षीगण का, वध करते, दुख दे गुरुतर ।
पशुशालाएँ खोल अनेकों, करुणे ! उनकी रक्षा कर ॥

(९) उपसहार ।
दया पात्र लख जग जीवों को, हे करुणे ! उर करुणा धर ।
तन, मन, धन से और वचन से, गर्व त्याग नित रक्षा कर ॥

माध्यस्थ्य-भावना

(१) भरा हुआ है अति अपूर्व रस, माध्यस्थ भावों के बीच।
जिससे अनुपम समता आती, लाती शांति सुधा को खींच॥

(२) माध्यस्थ्य भाव।
राग द्वेष के करने वाले, जग में भरे पदार्थ अनेक।
सुख दुख से मन नित्य घूमता, पाता कभी न शांति विवेक॥

(३) रागद्वेष किस लिए करना।
कोई वस्तु न स्थिर जग में, फिर क्यों राग भाव धरना।
जग का दृश्य सभी अस्थिर है, फिर क्यों मन मोहित करना॥

(४) सभी बदलने वाले पुद्गल, बन जाते प्रिय, अप्रिय कहीं।
द्वेष भाव लाना न कभी भी, लाना मन में शोक नहीं॥

(५) मनुष्यों पर राग द्वेष न करना।
हैं परिवर्तनशील सभी नर, क्षण में भिन्न भाव रखते।
धर्मी कभी अधर्मी बनते, फिर वह ही धर्मी बनते॥

(६) उदाहरण।
महाक्रूर परदेशी भूपति, बन न गया क्या धर्म निधान।
दृढ़ धर्मी जमालि मुनिवर भी, हुए कुकर्मी मिथ्यावान॥

(७) अच्छे बुरे संयोगो में मध्यस्थता।
हो अनुकूल तथा विरुद्ध हो, प्रिय हो अथवा हो अप्रिय।
रख सब पर माध्यस्थ भावना, है यह सर्व श्रेष्ठ सुखमय॥

(८) कर्म फल का विचार।
शुभ या अशुभ मिला जो कुछ भी, मिला कर्म के ही अनुसार
राग द्वेष कर, व्यर्थ अरे क्यों ? बढा रहा फिर कर्म विकार।

(९) परोपदेश।
पतितो के सुधार हित देना, सदा योग्य शिक्षा का दान।
यदि कोई है नहीं चाहता, रहना मौन सदा हित मान॥

उपसंहार

कही भावना शतक मध्य, यह चतुर्भावना मुकुट स्वरूप ।
आत्म शांति, त्रय रत्न वृद्धि दें, जग में हों जयवंत अनूप ॥
—श्री शतावधानी पण्डित मुनि रत्नचन्द्रजी म० के भावना शतक में से

चतुर्भुज धर्मपुरुष

(श्रीमज्जवाहराचार्यजी महाराज)

दानधर्म—

किसी वस्तु पर से अपनी सत्ता हटा लेने को ही दान कहते हैं। मान, प्रतिष्ठा या यश के लिये जो त्याग किया जाता है, वह दान नहीं है। वह तो एक प्रकार का व्यापार है, जिसमें कुछ धन आदि दिया जाता है और उससे मान सम्मान आदि खरीदा जाता है। ऐसे दान से दान का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। 'अहं-भाव' या ममता का त्याग करना दान का उद्देश्य है। अगर कोई दान अहंकार की वृद्धि के लिये होता है, तो उससे दान का प्रयोजन किस प्रकार सिद्ध हो सकता है? दान से कीर्ति भले ही मिले, पर कीर्ति की कामना करके दान नहीं देना चाहिए। किसान धान्य की प्राप्ति के लिए खेती करता है पर उसे भूसा तो मिल ही जाता है। अगर कोई किसान भूसे के लिए ही खेती करे तो उसे बुद्धिमान कौन समझेगा? इसी प्रकार निष्काम भाव से दान देने से कीर्ति आदि भूसे के समान आनुषंगिक फल मिल ही जाते हैं, पर इन्हीं फलों की प्राप्ति के लिए दान देना विवेक-शीलता नहीं है। इसी प्रकार दानीय व्यक्ति को लघु और अपने आपको गौरवशाली समझ कर भी दान नहीं देना चाहिए।

यह कभी न भूलो कि दान देकर तुम दानीय व्यक्ति का जितना उपकार करते हो, उससे कहीं अधिक दानीय-व्यक्ति तुम्हारा दाता का उपकार करता है। वह तुम्हें दान धर्म के

पालन का सुअवसर देता है; तुम्हारे ममत्व को घटाने में या हटाने में निमित्त बनता है। अतएव वह तुमसे उपकृत है, तो तुम भी उससे कम उपकृत नहीं हो। अगर दान देते समय अहंकार का भाव आ गया तो तुम्हारा दान अपवित्र हो जायगा।

शील-धर्म--

बुरे कामों से निवृत्त होना और अच्छे कामों में प्रवृत्त होना 'शील' कहलाता है। यह शील का सामान्य स्वरूप है। इससे यह प्रश्न स्वतः उत्पन्न हो जाता है कि बुरा क्या है और अच्छा क्या है? संसार के समस्त शास्त्रों का सार अच्छे और बुरे की व्याख्या में ही आ जाता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पाँच बातें बुरी हैं—(१) हिंसा (२) झूठ (३) चोरी (४) व्यभिचार (५) शराब पीना। इन पाँचों बातों से निवृत्त होना चाहिए। पाँच अच्छी बातें हैं—(१) दया (२) सत्य (३) प्रामाणिकता अर्थात् अन्याय से किसी वस्तु को प्राप्त करने की अपेक्षा न रखना (४) पर-स्त्री को माता-बहिन के समान समझना और (५) नशे की किसी वस्तु का उपयोग न करना।

'शील' संसार की उत्तम संपत्ति है। शील-धर्म का अर्थ है—सदाचार का पालन। सदाचार का पालन आत्मबल वाला ही कर सकता है। और आत्मबल वाले में ही सदाचार हो सकता है। शील की महिमा अपरिमित है। उसकी महिमा प्रकट करने वाली अनेक कथाएँ मौजूद है। सुदर्शन सेठ के लिए, शील के प्रताप से ही फाँसी का तख्ता सिंहासन बन गया था। सीता के शील के प्रभाव से अग्नि शीतल हो गई थी। प्रभात होते ही सोलह सतियों का स्मरण क्यों किया जाता है? क्यों उनका यश गाया जाता है? शील के कारण ही।

ऐसी ऐसी अनेक कथाएँ हैं जिनमें शील धर्म की महिमा का बखान है। कई लोग इन कथाओं को कल्पित कहकर उनकी

उपेक्षा करते हैं। पर वास्तव में उन्होंने उनका मर्म नहीं समझा है। आत्मबल के प्रति अनास्था ही इसका प्रधान कारण है।

तपधर्म—

शील-धर्म के पश्चात् तप-धर्म है। तप में क्या शक्ति है, सो उनसे पूछो जिन्होंने छह-छह महीने तक निराहार रहकर घोर तपश्चरण किया है और जिनका नाम लेने मात्र से हमारा हृदय निष्पाप एवं निस्ताप बन जाता है! तप मे क्या बल है, यह उस इन्द्र से पूछो जो महाभारत के कथनानुसार अर्जुन की तपस्या को देखकर काँप उठा था और अर्जुन को एक दिव्य रथ प्रदान किया था।

कहते हैं, अर्जुन की तपस्या से इन्द्र काँप उठा। उसने मातलि को रथ लेकर अर्जुन के पास भेजा। मातलि अर्जुन के पास रथ समेत पहुँचा और बोला—धनञ्जय! इन्द्र आपके तप से प्रसन्न हैं। आप इस रथ के योग्य हैं; अतएव इसमें आप बैठिये। बहुत लोगों ने संसार के बहुत से काम किए हैं, पर यह रथ किसी को नहीं मिला। मगर तप के प्रताप से आज यह रथ आपको भेंट किया जाता है।

इस कथन में अलंकार-भाषा का प्रयोग है। वस्तुतः यह शरीर ही रथ है। इस रथ मे जुतने वाले अश्व इन्द्रियाँ हैं। तप के प्रभाव से अर्जुन को एक विशिष्ट प्रकार के रथ की प्राप्ति हुई, जिसमें तपोधनी ही बैठ सकते हैं।

चक्रवर्ती भरत महाराज के पास सेना, अस्त्र-शस्त्र और शरीर के बल की कमी नहीं थी। लेकिन जब युद्ध का समय आता था, तब वे तेला करके युद्ध किया करते थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तेला का बल चक्रवर्ती के समग्र बल से भी अधिक होता है।

तप से शरीर भले दुर्बल प्रतीत हो, मगर आत्मा असाधारण बलशाली बन जाती है।

भावधर्म- –

प्रत्येक कार्य होने के तीन प्रकार हैं—पहिले विचार होता है, फिर उच्चार होता है, तब अन्त में आचार होता है। इस प्रकार प्रत्येक कार्य के लिए पहले पहल आत्मा मे विचार या संकल्प होता है। संकल्प मे यदि बल हुआ तो कार्यसिद्धि मे सुगमता और एक प्रकार की तत्परता होती है। वास्तविक बात तो यह है कि कार्य की सिद्धि प्रधानतः सकल्प-शक्ति पर अवलंबित है।

संकल्प करना अर्थात् आत्मा को जागृत करना। जो जागृत होता है उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। जो मनुष्य गाढ़ी नींद में सोया पडा हो या डरपोक हो, उसके घर में घुस कर चोर चोरी कर सकते हैं, पर जो मनुष्य जागृत है और साहसी है, उसके घर मे घुमने का साहस चोर को नहीं होता। अगर हम जागृत होगे तो चोर क्या कर सकेंगे ? ऐसा विश्वास तुम्हे है, पर आध्यात्मिक विषय में यह विश्वास टिकता नहीं है। अगर तुम्हारी आत्मा जागृत है तो कर्म-चोर की क्या विसात कि वह तुम्हारी शक्ति का अपहरण कर सके ? तुम्हारी गफलत के ही कारण चोर तुम्हारे आत्मगृह में प्रवेश कर सका है। जिस क्षण तुम्हारी मकल्प-शक्ति जागृत होगी, उसी क्षण चोर बाहर निकल भागेंगे।

> ज्ञान—दीप तप—तेल भर, घर सोधो भ्रम छोर।
> या विधि विन निकसै नहीं, पैठे पूरव चोर ॥

अपनी सकलपशक्ति का विकास करना ही आध्यात्मिक विकास है।

———

श्रमण भगवान् महावीर का धर्मचक्रप्रवर्तन

(लेखक—शा० व० शेठ)

श्रमण भगवान् महावीर का ४३ से ७२ वर्ष तक ३० वर्ष का दीर्घ उपदेशक-जीवन धर्मचक्रप्रवर्तन और सार्वजनिक उद्धार में व्यतीत हुआ था। उनके उपदेशक-जीवन के मुख्य विषय की तालिका निम्नानुसार:—

(१) अहिंसामार्ग—हिंसा के स्थान पर अहिंसा की प्रतिष्ठा की और संयम तथा तप के स्वावलम्बी और पुरुषार्थ-प्रधान मार्ग की महत्ता स्थापित की।

(२) अनेकान्तवाद—एकांगी सत्य के स्थान पर सम्पूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा की और वस्तु के स्वरूप को विविध दृष्टि-बिन्दुओ से देखने की शिक्षा दी। विरोध का मथन करके दार्शनिक संकीर्णता के स्थान पर समन्वयात्मक विराटता की स्थापना की।

(३) कर्मवाद—जीवात्मा दैव, नियति या ईश्वर की कठपुतली नहीं है। वह स्वयं अपने सुख-दुख का निर्माता और भोक्ता है। उसकी मुक्ति उसी के हाथ मे है। इस प्रकार आत्म-स्वातन्त्र्य की शिक्षा देने के लिए कर्मवाद की प्रतिष्ठा की।

(४) गुणवाद—जातिवाद के स्थान पर गुणपूजा की प्रतिष्ठा की। श्रेष्ठता का आधार जाति-पांति नहीं, गुण को प्रधान स्थान देकर गुणपूजा में पवित्रजीवन की महत्ता स्थापित की।

(५) संघस्थापना—वर्णव्यवस्था के स्थान पर चतुर्विध श्री संघ की स्थापना की। जाति और वर्णभेद को मिटाकर प्रत्येक के लिए शूद्र और अतिशूद्रों के लिए भी धर्म के द्वार खोल दिये और गुण के आधार पर चतुर्विध श्री संघ की स्थापना की।

(६) योगमार्ग—भोग के स्थान पर योग की प्रतिष्ठा की। त्याग और तपश्चरण के नाम रूढ शिष्टाचार के स्थान पर सच्चे त्याग व सच्ची तपश्चर्या पर जोर दिया और सयम-मार्ग का प्रचलन किया।

(७) क्रियाकाण्ड—बाह्य रूढ़ कर्मकाण्ड के स्थान पर आत्मस्पर्शी सम्यक् चरित्र की प्रतिष्ठा की जिससे व्यक्ति और समाज का समान रूप से शाश्वत शान्ति प्राप्त हो।

(८) स्त्री-स्वातन्त्र्य—पुरुषों की तरह स्त्रियों के विकास के लिये सम्पूर्ण स्वतन्त्रता तथा विद्या व आचार दोनों में स्त्रियों की योग्यता का स्वीकार कर आध्यत्मिक मार्ग खोल दिया।

(९) लोकभाषा में धर्मोपदेश—विद्वद्भोग्य भाषा मोह को दूर कर जन-साधारण भी समझ सके ऐसी लोकभाषा में (अर्ध-मागधी) में तत्त्वज्ञान व आचार विचार का उपदेश देकर धर्म प्रचार किया।

(१०) आध्यात्मिक धर्मशोध—बाह्य शरीरशुद्धि, बाह्य तप, बाह्य यज्ञयाग, जड़पूजा आदि बाह्याडबर के स्थान पर आत्म-विजय, आत्म-शुद्धि पर जोर देकर अन्तर्मुख होने की आध्या-त्मिक धर्मशोध की।

सर्वोदयी फूलिया

(लेखक—बलवन्तसिंह, गोसेवा आश्रम सीकर, 'हरिजन-सेवक' में से)

खादीका बड़ा निष्ठावान भक्त है। इसके घर मे सब खादी पहनते हैं। अखबार भी मगाता है। अब तक की चर्चा मे भी फूलिया की ओर मेरा कोई विशेष आकर्षण नहीं हुआ था। मैंने पूछा "कौनसा अखबार मंगाता है ?" मैंने समझा था कि कोई साधारण समाचारपत्र मंगाता होगा। फूलिया ने कहा: " 'हरिजनसेवक' मंगाता हूँ।" मैं एकदम चौंका। क्योकि वहां पर कोई 'हरिजनसेवक' पढ़ने वाला आदमी होगा, ऐसी मेरे मन में कल्पना भी नही थी। फूलिया बोलने लगा—"आजकल तो विनोबाजी की हैदराबाद की पैदल-यात्रा का बडा सुन्दर वर्णन आता है।" तब मेरी इच्छा सहज ही फूलिया के जीवन में गहरा उतरने की हुई। मैंने पूछा " तुम नियम से 'हरिजनसेवक' पढ़ते हो ?" उसने कहा: "मै खुद तो नहीं पढ़ सकता हूँ, लेकिन अपने लड़के से पढ़ाकर सुनता हूँ। क्योकि मैं पढ़ा हुआ नहीं हूँ।" यह सुनकर मुझे आनन्द और आश्चर्य हुआ और लगा कि यह कोई विशेष आदमी होना चाहिये, जो खुद न पढ़ सकने पर भी सुनने के लिए 'हरिजनसेवक' मगाता है उसने आगे कहा: "वैसे मैंने पढ़ने की कोशिश तो की, थोड़ासा पढ़ भी लेता हूँ, लेकिन पढ़ते समय मेरी आँखो से पानी निकलने लगता है। इसलिए पढाई का काम बहुत आगे नही बढ़ सका। हाँ, मजदूरी काम मे कभी थकता नहीं हूं। वैसे तो मै कुम्हार हूँ, लेकिन राज (चुनाई) का काम भी कर लेता हूं। बुनाई कर लेता हूं, कताई बुनाई सब जानता हूं और खेती का काम भी करता हूं। पहले सम्वत् ९५ व ९७ मे जब बड़े दुकाल पड़े थे, तब मैंने दो-तीन आदमियों को साझी करके एक छोटा सा चरस बनाकर बैल

जगह आदमियो से पानी खीचकर और जमीन खोदकर खेती की थी। इसमे एक बार ५० और एक बार ५५ मन जौ हुए थे। उससे हमारा दुष्काल कट गया था। जब दूसरा काम नही होता है, तब मैं बैठकर बुनाई करता हूं। बच्चों और पत्नी को कातना और धुनना सिखा दिया है। मैंने निश्चय किया है कि मेरे घर मे मिल का एक धागा भी नहीं घुस सकता। दूध के लिए मैं गाय रखता हूं। मरते समय अपने बच्चो को भी यह कहकर जाऊँगा कि घर मे मिल का कपड़ा और भैंस का प्रवेश न हो। बरतन भी मैं मनुष्य के जीवनोपयोगी ही बनाता हूं। मिट्टी के हुक्के, चिलमें, दावत मे काम आने वाले सिकोरे मैं नही बनाता। क्योंकि इन बरतनो को मैं हानिकर और अनावश्यक मानता हूँ। इससे गांव के लोग मुझसे नाराज भी है। मेरी जो कुम्हारी-वृत्ति थी, वह इसीलिए टूट गई। पानी पीने के मटके, दूध निकालने, जमाने, चलाने के बरतन, साग की हांडी, अनाज रखने के बरतन, जानवरों को दाना देने और पानी पिलाने की नांदें—ऐसे मनुष्य और पशुजीवन के उपयोगी बरतन ही बनाता हूँ।"

"मैंने दो दफे दिल्ली, जाकर महात्माजी का भाषण सुना था। उसमे उन्होने बताया था कि गाय की रक्षा से ही भैंस की रक्षा हो सकती है। दूसरी बात उन्होने कही थी कि अपने बीच मे रहे थोड़े मुसलमानों को मार निकालने मे बहादुरी नहीं, कायरता है। मुझे उनकी दोनो बातें पसन्द आई। जब यहां पंजाब मे हिन्दू-मुस्लिम झगड़े का पागलपन सवार हुआ, तो करीब-करीब सब लोग विवेक खो बैठे थे। उन दिनो गांव-गांव में हिन्दू-मुस्लिम झगड़े का भारी तूफान चल रहा था। उसकी आंधी एक रोज यहां भी आई। उसके नेता ने, जो मेरे आर्य समाजी दीक्षागुरु थे, जो इस इलाके मे एक बड़े विद्वान्, त्यागी तथा एक विद्यालय के आचार्य है, जिनके प्रति मेरी बहुत श्रद्धा

एवं भक्ति थी, कहा. 'फूलिया, चल खड़ा हो। हमारे साथ चल।' उनके हाथ में वन्दूक देखकर मेरा दिल कांप उठा। मैंने कहा: 'महाराज, मेरे से मनुष्य मारने का काम नहीं होगा। इसको मैं धर्म नहीं अधर्म मानता हूँ। गांधीजी ने कहा है कि अपने बीच रहे थोडे आदमियो पर हाथ उठाना कायरता है। अगर आपको मुसलमानों से लड़ना ही है तो पाकिस्तान मे जाकर लड़िये।' वे और दूसरे लोग मेरे ऊपर क्रुद्ध हो उठे और बोले 'अच्छा मुसमानो के साथ-साथ तुझे भी हम मौत के घाट उतारेंगे।' मैंने कहा: 'मेरे घर मे सात प्राणी है हम पति-पत्नी तीन बच्चे, एक गाय और उसका बच्चा। आप हम सातो को ही एक साथ मौत के घाट उतार देंगे तो बहुत अच्छा होगा। लेकिन मैं मनुष्य मारने के काम मे हिस्सा हरगिज नही लूँगा।' वे तो बौखलाये और 'अच्छा तुझे बाद मे देखेंगे', कह कर चले गये। उसी झगडे मे गुरुकुल का एक विद्यार्थी मुसलमान की गोली से मारा गया। उसका दाहसंस्कार करने के लिए प्रत्येक घर से पावभर घी और एक रुपया उगाने की बात आई। मुझसे भी मागा गया मैंने साफ इन्कार कर दिया। क्योंकि वह तो दूसरो को मारने के लिए गया था। पर दूसरे ने उसको मार दिया। ऐसे काम मे हिस्सा नहीं ले सकता। इसके लिए भी लोगों ने मेरे उपर खूब भाले दिखाये। लेकिन मैंने तो निश्चय कर लिया था कि चाहे प्राण चले जायें लेकिन इस काम में हिस्सा नहीं लूँगा।"

"धरी न काहू धीर सबके मन मत्सर हरे। जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुं।" सचमुच ही उस आपस के मत्सर में अच्छे-अच्छे लोग फंस गये। उस बुरे समय में जिनको भगवान ने बचाया, वे ही बच सके। नहीं तो कहां गधा चराने वाला फूलिया और कहां वेदो का ज्ञाता और उच्च कोटि का त्यागी

हिंसा के लिऐ उभाड़ने वाला फूलिया का गुरु ? दैवयोग मे उनसे मेरी मुलाकात फूलिया से मिलने से पहिले ही हो चुकी थी और उनके उस रूप की थोड़ी सी झांकी मुझे भी मिल चुकी थी। इसलिऐ फूलिया की बात पर अपने आप मोहर लग गई। अच्छे गुणो का ठेका विद्वत्ता का तो नहीं है, लेकिन बड़े बड़े त्यागी भी ऊपर से साधारण दीखने वाले आदमी के मुकाबले में फिसड्डी ही साबित होते है। फूलिया और फूलिया के आचार्य गुरु का यह ज्वलंत उदाहरण है।

फूलिया ने आगे कहा-"मैं ६ बरस का था। एक मेरी बडी वहिन थी। तब सवत् ७५ की बीमारी मे मेरे माता-पिता मर गये थे। उस समय मै गधे चराने का काम करता था और अपने काका के पास रहता था। काका ने मेरे साथ बहुत अच्छा सलूक नहीं किया। इसलिए मै दूसरी मजदूरी करने लगा। मजदूरी करके पहिले तो मैंने बहिन की शादी की, फिर अपनी की। फिर धीरे-धीरे घर बनाया। मेरी बड़ी बहिन के एक लड़का है। वह उसकी शादी करना चाहती थी। बहिन ने मुझे खबर दी कि लड़के की शादी है और तुमको उसमे आना पडेगा मैंने कहा: 'अभी लड़के की उमर तेरह साल की है। और अठारह साल से पहले शादी करना नियमविरुद्ध है। फिर शादी मे किसी प्रकार का जेवर या दूसरा किसी प्रकार का खर्चा नहीं होना चाहिये। बरात में पांच आदमी से अधिक नहीं जाने चाहियें। जब तेरा लड़का अठारह साल का हो जायगा, तो उसकी शादी करने की जवाबदारी मै लेता हूं। और मैं अपनी मान्यता के अनुसार ही करूंगा। लेकिन आज उसकी शादी मे हिस्सा नहीं ले सकता।' मेरी बहिन का आग्रह तभी शादी करने का था। मैं उसके लड़के की शादी मे हिस्सा न लूं, यह भी उसके लिए भारी दुःख की बात थी। मेरे लिए भी भारी धर्मसंकट था।

लेकिन मै तो निश्चय कर चुका था कि अपने-सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं जाऊंगा। वहिन भी उसके शादी करने के मोह को नहीं छोड सकी। इसलिए मैंने उस लडके की शादी मे हिस्सा नहीं लिया।"

इस चर्चा से मुझे फूलिया का घर देखने की इच्छा हुई। मैं फूलिया के घर गया। फूलिया के घर मे चार कमरे है। मैंने देखा, पहिले कमरे मे उसका सब बुनाई का सामान था। दूसरे में मिट्टी के बरतनो का सग्रह था। तीसरे मे गाय के लिए भूसा था और चौथे में, जो दूसरी मंजील पर था, कताई-पिंजाई का चरखा, धुनकी आदि सामान था। बीच मे मकान के सामने एक छाया हुआ चौक-सा था, जिसमें उसका सारा कताई, बुनाई व बरतन बनाने का काम चलता था। उसी मे उसका बरतन बनाने का चाक, मिट्टी कमाने का स्थान, चूल्हा चक्की, बुनाई की माग लगी हुई थी जिस पर गाड़ी का पाल बुनाई के लिए चढ़ा हुआ था। मैने फूलिया के घर में न तो रहने का कोई खास कमरा देखा, न कपड़े-लत्तों की कोई पेटी देखी और न खाने-पीने के सामान का ही संग्रह देखा। मैंने आश्चर्य से पूछा: "भाई आखिर तुम्हारा खाने-पीने, सोने-ओढ़ने का सामान कहाँ है?" तब फूलिया ने मुझे दीवार मे बनी हुई एक छोटीसी बुखारी दिखाई, जिसमें करीब-करीब डेढ़ मन जौ-चने पड़े थे। और उसके ओढ़ने-बिछाने के कपड़े तो उसी चौक में खाटों पर रखे थे। फुलिया ने कहा: "मजदूरी करता हूं और थोड़ासा अनाज ले आता हूं, जो इसमें रख लेता हूं। कपड़े के लिए हम कातते है और बुन मैं लेता हूं।" फूलिया की पत्नी एक मोटा खादी का थान कुछ सीने के लिए नाप रही थी। वह फूलिया के सारे घर का दृश्य देखकर उसको कारखाना कहना, आश्रम कहना, श्रमालय कहना, या सर्वोदयी घर कहना, यह फैसला

पाठक करें। मुझे तो फूलिया के सारे परिवार का जीवन सर्वोदय की प्रत्यक्ष तसवीर दिखाई दिया। मैंने फूलिया की पत्नी से बात की: "क्यों बहिन, देखो फूलिया यह क्या खटपट करता है, तुमको और बच्चो को मोटे-मोटे कपडे पहिनाता है। तुमको एक भी जेवर पहिनने को नहीं देता। अरे, चूड़ी तक नहीं पहिनने देता है। तो क्या तुम्हे दूसरी बहिनो के अच्छे-अच्छे कपड़े और गहने देखकर इच्छा नहीं होती है? या तुम्हारी सादगी देखकर दूसरी बहिनो को भी तुम्हारे जैसे रहने कीइच्छा होती है?" उस बहिन ने सरल भाव से कहा: "मुझे तो किसी की इच्छा नहीं होती। लेकिन मुझे देखकर दूसरी औरतो को क्या लगता होगा, यह मै नहीं जानती।" उस बहिन के हाथ में कांच की चूड़ी तक नही थी। क्योकि फूलिया और उसकी पत्नी का निश्चय ही है कि जिन वस्तुओ का जीवन-रक्षण में उपयोग नहीं है, उनका इस्तेमाल नहीं करना।

फूलिया ने बताया "मेरे घर के पास के दस घरों का पानी मेरे काम करने के चौक मे से जाता था। यह मुझे पसन्द नहीं था। कायदे से बरसात का पानी रोका नहीं जा सकता। दूसरी तरफ पानी जा सकता था, लेकिन करीब ४-५ फुट गहरा, १०० फुट लम्बा और २५ फुट चौड़ा एक खड्डा था। उस खड्डे को भरने के लिए वे लोग तैयार नहीं थे, जिनके घरो के सामने वह खड्डा था। मुझे उनसे झगड़ा नहीं करना था। इसलिए जब भी हमे समय मिलता, हम दोनो पति-पत्नी अपने गधों से उसमें मिट्टी डालते। तीन साल से हमारा यह कार्यक्रम चल रहा है। अब यह खड्डा करीब-करीब भर चुका है। इस साल थोड़ीसी मिट्टी और डालनी है।" मैंने वह जगह देखी। सचमुच ही फूलिया का वह भगीरथ प्रयत्न था। उसके तीनो बच्चो से भी मैंने बातें की। मैंने कहा: "क्यों रे, स्कूल मे दूसरे लडके अच्छे-

अच्छे कपड़े पहिनते हैं। तुम खादी पहिनते हो। क्या तुम्हे कभी मिल के चमकीले कपडे पहिनने की इच्छा नही होती है ?" सरल भाव से बच्चे बोल उठे: "कभी नहीं। हमको खादी प्यारी लगती है।" फूलिया के तीनों बच्चे कातना, धुनना जानते है और दूसरे काम मे भी अपने बाप की मदद करते है। तीनो स्थानीय स्कूल मे पढने जाते हैं। वे बड़े ही सुशील और होशियार लडके हैं।

बहुत दिन पहले एक निर्मोही राजा की कथा पढी थी कि उसका सारा परिवार ही निर्मोही था। इसी प्रकार फूलिया का सारा का सारा परिवार ही सर्वोदयी है, यह देखकर आनन्द से मेरा हृदय भर आया और मैंने फूलिया का प्रेम से आलिंगन किया मेरे मुँह से निकल पड़ा: "फूलिया, तुम धन्य हो, तुम्हारा जीवन धन्य है, तुम्हारा जीवन धन्य है।" फूलिया भी आनन्द विभोर हो गया और मुझे एक दिन अपने घर रोककर भोजन के लिये आग्रह करने लगा। मैंने कहा—"तुमसे मिलकर, तुम्हारा घर और परिवार देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ है। आगे जब कभी हरयाना आऊँगा, तो एक दिन जरूर तुम्हारे घर ठहरूँगा और भोजन करूँगा। अभी तो मेरा अगले गाँव का कार्यक्रम तय हो चुका है।" मेरा दूसरे गाँव जाने का समय हो चुका था, इसलिए फूलिया के साथ और अधिक चर्चा करने की इच्छा रहते हुए भी मुझे वहाँ से चल देना पड़ा।

फूलिया ने बताया—"हमको ३ बच्चे हो गये। अब हम पति-पत्नी ने मिलकर निश्चय किया है कि आइन्दा संयम से रहेंगे और अब संतान पैदा नहीं करेंगे, और जितना हमसे हो सकेगा हम इन बच्चों को योग्य बनाने की कोशिश करेंगे। मैं कभी बीमार नहीं पड़ता हूँ। क्योंकि मैं किसी प्रकार का पाप न करूं तो बीमार क्यों पड़ूं, ऐसी मेरी श्रद्धा है। शरीर से खूब काम करता हूँ, फिर भी थकना तो जानता ही नहीं।"

इस समय फूलिया की उमर ३९ साल है। वे दोनों और उनके बच्चे अच्छे स्वस्थ हैं। इस तरह परिवार का परिवार उत्साह से सर्वोदय के लिए सतत प्रयत्न में लगा हुआ है। ऐसा कोई दूसरा उदाहरण मुझे अब तक देखने को नहीं मिला है। रचनात्मक कार्यक्रम के दूसरे अच्छे-अच्छे कार्यकर्ता और साधक है। उनके पास अच्छे-अच्छे साथी और साधन भी है। अपने व्यक्तिगत जीवन मे वे कितना भी सर्वोदय का पालन करते हो, लेकिन सारा परिवार का परिवार सर्वोदय जीवन मे ओतप्रोत हो, ऐसा बहुत कम देखने मे आता है। फूलिया तो एक दूर देहात मे पड़ा है। न उसको बहुत बड़ा सत्संग मिलता है, न वह कुछ पढ़ा-लिखा ही है। लेकिन उसके दिल में सर्वोदय की निष्ठा ऐसी बैठी है कि उसके लिए वह सब कुछ न्यौछावर करने को कटिबद्ध हो गया है। फूलिया का जीवन महाराष्ट्र के सन्त गोरा कुम्हार की याद दिलाता है।

दूसरे भाई ने बताया कि हमने फूलिया को कभी खादी पहिनने का खास आग्रह नहीं किया। इसके मन से ही यह सब उत्पन्न हुआ है। फूलिया ने कहा: "यहां से ३-४ कोस पर बागपुर नामक एक ग्राम है। वहां मेरे गुरु रहते है। उनका नाम है श्योचन्द। मेरे घर मे जो कुछ भी सुधार हुआ है, वह उनकी ही कृपा है। वे सर्व-सेवा-संघ के सदस्य है और जब सर्वोदय की सभा होती है, तो वहाँ जाया करते है। मैं अपने 'हरिजन-सेवक' पढ़कर उन्हे दे आता हूँ।" फूलिया के इस गुरु श्योचन्जी से मेरी इच्छा होने पर भी मैं मिल नहीं सका। क्योंकि उनका ग्राम दूर था और मेरा कार्यक्रम दूसरे ग्राम जाने का बन चुका था।

फूलिया ने बताया:—"मैं कभी किसी विवाह, शादी या भोज आदि में शरीक नहीं होता। जहाँ पर पाँच आमी से अधिक का भोजन और उसमें कुछ पकवान आदि बनाये जायं,

उसमें हिस्सा नहीं लेता। जात-बिरादरी के और दूसरे लोग मेरे ऊपर काफी नाराज हैं और मेरी टीका करते है। लेकिन मुझे जो सत्य लगता है, उस पर अकेला ही चलने मे मुझे किसी का भय नहीं लगता।" इस इलाके मे चमारों ने मृत जानवरो को उठाना व चमड़ा निकालना बन्द कर दिया है। इसलिये लोगों को अपने मृत जानवर स्वयं उठाने पड़ते हैं। लेकिन वे चमडा नहीं निकालते, वैसे ही जमीन में गाड़ देते है। इस पर मै लोगो को समझा रहा था कि चमड़ा निकालना कोई पाप नहीं है। मृत जानवर का चमड़ा न निकाले, तो हमारी बहुत बड़ी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। आखिर तो हमें चमडा इस्तेमाल करना ही पड़ता है। फिर कत्तल किये जानवरो का चमड़ा इस्तेमाल करने से धन और धर्म दोनो जाते हैं। इस पर फूलिया ने बताया कि जब मेरी गाय मरी, तो एक दूसरे भाई की मदद से मैंने तो उसका चमड़ा निकाल लिया था। लोगों ने मेरा विरोध किया। मैंने कहा—"अपने को चमड़े की जरूरत तो रहती ही है, सो अपने पशुओ का चमड़ा इस तरह पशु गाड़ कर बरबाद करना ठीक नहीं है।"

दूसरे सब लोग भी फूलिया के जीवन की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते थे। ऐसे ही जहाजगढ़ में फूलिया के गुरु भाई पीरदान जी अहीर से मिलकर खूब आनन्द हुआ। ये भी बिना पढ़े हैं किन्तु 'हरिजनसेवक' सुनते हैं, और उसमे लिखा हुआ उनके लिये वेद-वाक्य है। जब मै उनसे सुबह मिला, तो वे पीस रहे थे और शाम को मिला तब कात रहे थे। पीरदानजी ने बताया कि आजकल मेरा अपने घर से असहयोग चल रहा है, कारण मेरी पुत्रबधु मिल के कपड़े का व्यवहार करती है। इसलिए जब तक वह खादी नहीं पहनती, मैंने उसके हाथ का खाना-पीना बन्द

कर रखा है। ये भाई खेती करते हैं तथा दूध के लिए घर में गाय रखते हैं। सचमुच ही ऐसे अनेक गुदड़ी के लाल सर्वोदय जीवन के पीछे पागल हैं। इनको कोई नहीं जानता, लेकिन एक दिन उनका प्रकाश तो धीरे-धीरे फैलेगा ही।

सचमुच ही फूलिया मानव-समाज को सुगंधित करने वाला एक सर्वोदयी फूल है।

फूलिया गाँव मारोथ, झज्झर तहसील, जिला रोहतक मे जहाजगढ़ से चार मील दक्षिण में रहता है।

आवश्यकताओं को मर्यादित कीजिये

जिन वस्तुओ का उपभोग किये बिना साधारणतया जीवन-नीर्वाह नहीं हो सकता, उन चीजों के उपभोग परिभोग का त्याग करना चाहिये। अपनी आवश्यकताओं को मर्यादितकर लेने से जीवन बहुत सुखी होता है। जीवन में उपभोग्य परिभोग्य पदार्थ सम्बन्धी अशान्ति नहीं रहती। इसके सिवा, जो अपना खर्च कम रखता है उसे कमाना भी कम पड़ता है और जो अधिक खर्च रखता है उसे कमाना भी अधिक पड़ता है इस लोकोक्ति के अनुसार अपना रहन सहन और खान पान सादा रखिये वरना खर्चीले रहन-सहन एव खान पान के लिए अधिक कमाना पडेगा, जिससे जीवन में अशान्ति रहना स्वाभाविक है। जिनका जीवन खाने पीने तथा ओढ़ने आदि के लिए कमाने मेंही लगा रहता है उसके द्वारा धर्म कार्य कब होंगे। ऐसे व्यक्ति का चित्त आवश्यकता पूर्ति की चिन्ता से अस्थिर रहता है, और जिनका चित्त ही अस्थिर है उसके द्वारा आत्म कल्याण और परोपकार के कार्य कैसे हो सकते हैं।

मानव-धर्म

(श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार)

मानव-धर्म मानवों से नहिं करना घृणा सिखाता है,
मनुज-मनुज को एक बताता भाई-भाई का नाता है।
असली जाति-भेद नहिं इनमें गौ-अश्वादि-जाति-जैसा,
शूद्र-ब्राह्मणी के संगम से उपजे मनुज, भेद कैसा ? ॥ १ ॥
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये भेद कहे व्यवहारिक है,
निज-निज कर्माश्रित, अस्थिर, नहीं ऊंच-नीचता-मूलक हैं।
सब हैं अंग समाज-देह के, क्या अन्त्यज, क्या आर्य महा,
क्या चण्डाल-म्लेच्छ, सब ही का अन्योऽन्याश्रित कार्य कहा ॥२॥
सब हैं धर्मपात्र, सब ही हैं पौरिकता के अधिकारी,
धर्मादिक अधिकार न दे जो शूद्रों को वह अविचारी।
शूद्र तिरस्कार-पीड़ित हो निज कार्य छोड़ दे यदि सारा,
तो फिर जग में कैसे बीते ? पंगु समाज बने सारा ॥ ३ ॥
गर्भवास औ जन्म-समय में कौन नहीं अस्पृश्य हुआ ?
कौन मलों से भरा नहीं ? किसने मल मूत्र न साफ किया ?
किसे अछूत जन्म से तब फिर, कहना उचित बताते हो ?
तिरस्कार भंगी चमार का करते क्यों न लज्जाते हो ? ॥ ४ ॥
जाति-कुमद से गर्वित हो जो धार्मिक को ठुकराता है,
वह सचमुच आत्मीय धर्म को ठुकराता, न लजाता है।
क्योंकि धर्म धार्मिक पुरुषों के बिना कहीं नहिं पाता है,
धार्मिक का अपमान इसी से वृष-अपमान कहाता है ॥ ५ ॥
मानव-धर्मापेक्षिक सब हैं, धर्मबन्धु अपने प्यारे,
अपनों से नहि घृणा श्रेष्ठ है, हैं उद्धार-योग्य सारे।

अतः सुअवसर-सुविधाएँ सब उन्हें मुनासिब देना है,
इस ही से कल्याण उन्हो का औ अपना भी होना है ॥ ६ ॥
बन करके 'युग-वीर' उठा दो रूढ़ि-जनित संस्कारो का—
पर्दा हृदय-पटल से अपने, ढा दो गढ़ हुँकारों का ।
तब होगा दर्शन सुसत्य का, मानवधर्म-पुण्यमय का,
जीवन सफल बनेगा तब हो, अनुगामी हो सत्पथ का ॥ ७ ॥

"लक्ष्मी नहीं, सर्वस्व जावे सत्य छोड़ेंगे नहीं,
अंधे बनें पर सत्यसे सम्बन्ध तोड़ेंगे नहीं ।
निज सुत-मरण स्वीकार है पर वचनकी रक्षा रहे,
है कौन जो उन पूर्वजोंकी शीलकी सीमा कहे ।
आमिष दिया अपना जिन्होंने दैत्य भक्षणके लिए,
जो बिक गये चाण्डालके घर सत्य-रक्षणके लिए ।
दे दी जिन्होंने अस्थियाँ परमार्थ-हित जानी जहाँ,
शिवि, हरिश्चंद्र, दधीचिसे होते रहे दानी कहां ?
सत्पुत्र पुरुष थे जिन्होंने तात-हित सब कुछ सहा,
भाई भरतसे थे जिन्होंने राज्य भी त्यागा अहा !
जो धीरताके, वीरताके प्रौढ़तम पालक हुए,
प्रल्हाद, ध्रुव, कुश, लव तथा अभिमन्यु-सम बालक हुए ।
वह भीष्म का इन्द्रिय-दमन उसकी धरा-सी धीरता,
वह शील उनका और उनकी वीरता, गम्भीरता ।
उनकी सरलता और उनकी वह विशाल विवेकता
है एक उनके अनुकरणमे सब गुणोंकी एकता ।"

[भारत-भारती से]

॥ समाप्तम् ॥

उपदेश-रत्न-माला

('उपदेश-रत्न कोष' नामक संस्कृत ग्रन्थ का अनुवाद)

(अनुवादक—बाबू दौलतरामजी जैन)

जिसने किया है नाश सारे—विश्व के दारिद्र्य का ।
जो है खजाना है स्वय सत्—उपदेश रूपी रत्न का ॥
उस 'वीर-जिन' को मै प्रथम संयुक्त-विनय वंदन करूँ ।
उपदेश रूपी रत्न की शुचि थालि का गूँथन करूँ ॥
सब जगत-जीवों की दया हित मग्न रहना सर्वदा ।
इन्द्रिय दमन भी आत्म-शासन-हेतु करना सौख्यदा ॥
एवं यथोचित-फल-जनक सच बोलना, शुभ धर्म है ।
है धर्म ही क्यों वस्तुतः सत् धर्म का यह मर्म है ॥
सगति कुशीलाचारियों को त्याग देना चाहिए ।
निज शील-व्रत को शक्ति भर खडित न करना चाहिए ॥
एव स्व आत्मा निरत गुरु, के वचन उल्लंघन मत करो ।
यह धर्म का परमार्थ है ऐसी समझ मन मे धरो ॥
तुम चपलता की चाल तजदो भेष उद्भट छोड़ दो ।
अरु दूसरों को वक्र-दृग से देखना भी छोड़ दो ॥
फिर दुष्ट जन भी कह नही सकते तुम्हें कुछ भी कभी ।
इस दोष को ही देख करके रुष्ट होते हैं सभी ॥
तुम जीभ अपनी को करो वश मे न भूलो यह कभी ।
सोचे विचारे बिना कोई काम भी न करो कभी ॥
लोपो न तुम कुल रीति-शुभ तो, अति कुमति कलिकाल भी ।
है कर नहीं सकता, तुम्हारा सुनो ! बांका बाल भी ॥
ऐसा वचन न कहो कि जिस का मर्म भेदी भाव है ।
होता वचन का बाण से भी अति भयकर घाव है ॥
मत क्रोध मनुजों पर करो न कलंक भी नाहक महो ।

सज्जन जनो का मार्ग है यह दुर्गसा इस पर चढो ॥
सब पर करो उपकार तुम पर गर्व से मन फुलना।
रहना कृतज्ञ, न अन्य के उपकार को तुम भूलना ॥
अरु दीन-विव्हल-दुखित-जन को तुम सहारा हो सही।
विद्वद्-जनो ने यह हमारे हेतु हित शित्ता कही ॥
खडित करो मत, पूर्ण कर दो दूसरों की प्रार्थना।
करना कभी मत तुम स्वय पर अन्य से अभ्यर्थना ॥
अरु वचन अपने दीनता-सूचक किसी से मत कहो।
अपनी प्रशंसा, कीजिओ मत, दूसरो से मत चहो ॥
दुर्जन जनो की व्यर्थ निन्दा भी कभी करना नहीं।
स्मरण रखिए, भूलकर प्रति समय, अति हँसना नहीं ॥
यदि चाहते हो प्राप्त करना मान एव नाम तुम।
जब तक रहो संसार में करते रहो यह काम तुम ॥
करना नहीं विश्वास रिपु का ध्यान में रक्खो सही।
विश्वास तुम पर हो किए करना निराश उसे नहीं ॥
गुण चोर, नमक हराम अथवा कृतघ्नी तुम मत बनो।
है न्याय का यह मार्ग सुन लो, ध्यान देकर सज्जनो ॥
सगुणी-जनों को देखकर के तुम सदा हर्षित रहो।
करना नहीं तुम स्नेह उससे जो खरा प्रेमी न हो ॥
पड़ताल करना पात्र की यह दक्ष नर का चिन्ह है।
जो इस कसौटी पै न उतरे, दक्षता से भिन्न है ॥
निज आत्मा को निदनीय प्रवृत्ति में पड़ने न दे।
कु अ-कार्य भी करने न दे, अन-साहसी बनने न दे ॥
तो सुनो वह जन जगत् में निज बाहु लम्बी कर सके।
फिर कौन भी हो सामने पर सामने दिख ना सके ॥
जो व्यसन अथवा दुःख में घबराय मोहित हो नहीं।
अरु मरण तक वृष के तरफ बहुमान भी त्यागे नहीं ॥

हो जाय वैभव नाश भी, पर दान देता ही रहे।
असिधार व्रत है यह, सुनो नर-धीर ही इसको गहे॥
अति स्नेह मे रमना नहीं प्रति क्षण न इसमें रत रहो।
निज प्रिय-जनों पर भूल कर भी प्रति दिवस क्रोधित न हो॥
यह और सुनलो, क्लेश-कलि भी यदि बढ़ाओगे न तुम।
तो अंजुलि जल दे सको दुःख को कभी पाओ न तुम॥
जो हैं कुसंगी, साथ में उन के कभी रहना नहीं।
हितकर वचन हो बाल जनके भी ग्रहण करना सही॥
अन्याय से भी दूर रहना निकट मे जाओ न तुम।
होगी प्रशसा सर्वदा निन्दा कभी पाओ न तुम॥
जब प्राप्त वैभव हो तुम्हें तल्लीन तब होना नहीं।
हो जाय वैभव नष्ट तो स-विषाद हो रोना नहीं॥
समभाव का इस भाँति तुमको लाभ यदि हो जायगा।
निश्चय समझ लो, फिर नहीं सन्ताप होने पायगा॥
निज-पुत्र के प्रत्यक्ष में अरु, भृत्य के जु परोक्ष में।
गुण गान तुम करना नहीं, यह बात रखना लक्ष्य में॥
इक और सुनलो, नारि के नहीं उभय में गुण-गान हो।
स्वीकृत करो यह निति चाहो, नाश प्रभुता का न हो॥
अति प्रिय वचन बोलो सभी से, विनययुत हो दान दो।
सत्पात्र को उत्थान दो नव भांति समुचित मान दो॥
पर-गुण ग्रहण करना न भूलो, मंत्र यह अनतोल है।
होजाय जग-वश, सिद्ध करलो, मंत्र यह अनमोल है॥
जब देखलो तुम, है समय उपयुक्त, तब बोला करो।
समुदाय-जन के बीच में खल का अनादर मत करो॥
यदि समझलो यह भी कि है क्या स्वपर में सविशेषता।
शका नहीं इसमे जरा भी प्राप्त होगी सिद्धता॥
जो मंत्र के अरु तन्त्र के झग डएड मे पड़ता नहीं।

जाना अकेला दूसरों के घर, जिसे भाता नहीं ॥
स्वीकृत प्रतिज्ञा-पालने मे पूर्ण जो तत्पर रहे।
फिर क्यों नहीं इस बात पर सुकुलीनता उसको चहे ॥
आदान और प्रदान स-उचित वस्तु का होता रहे।
सुनलो, परस्पर जीमने का काम भी पड़ता रहे ॥
मन मे छुपे सुविचार का विनिमय सदा होता रहे।
सच जानलो, इन बात पर ही मित्रता सुस्थिर रहे ॥
करना न तुम को उचित है अपमान पर-जन का कभी।
करना न तुमको उचित है अपने गुणों का मान भी ॥
यदि नही करो विस्मय-वहन तो भू भली लगने लगे।
फिर तो अनेकों रत्न वाली दृष्टि मे आने लगे।
सबसे प्र म लघु रूप मे आरम्भ करना चाहिये—
हो काम कोई, एक दम विस्तृत न करना चाहिए ॥
इस भांति से उत्कर्ष जो तुम काम का यदि कर सको।
तो बात यह अन चूक है तुम सफलता को वर सको ॥
यदि ध्यान तुम परमातमा का जो सदा धरते रहो।
निज आतमा सम दूसरों की आतमा गिनते रहो .
यदि द्वेष राग विनाशकर सम-भाव पैदा कर लिया।
पहिचान लो बस है यही संसार-छेदन की क्रिया ॥
इस भांति जो नर उक्त सद् उपदेश का पालन करे।
उपदेश रूपी रत्नमाला कंठ मे धारण करे ॥
वह करेगा चिर-रमण शिव सुख लक्ष्मी के संग मे।
स्वाधीनता पूर्वक करेगा-रमण वह वक्षांग में ॥
हो भव्यजन हो, फिर सुनो, दो इस तरफ टुक ध्यान दो
उपदेश माला कंठ में धर कर इसे तुम मान दो ॥
है अति मनोहर और अति विस्तीर्ण वह चिर-सुखकरी।
है नाम शुभ 'श्रीमन् जिनेश्वर सूरि' ने यह उच्चरी ॥